।। राधास्वामी ।।

बचन महाराज साहब

राधास्वामी दयाल की दया

राधास्वामी सहाय

बचन

परम पुरुष पूरन धनी

महाराज साहब

जिनका सतसंग में नोट लिया गया और जहाँ तक हो सका महाराज साहब के लफ़्ज़ों में लिखे गये

प्रकाशक

राधास्वामी ट्रस्ट,

स्वामी बाग़, आगरा 282005

All rights reserved

कोई साहब बिना इजाज़त इस पोथी को नहीं छाप सकते

पहली बार	सन् 1908	1000 प्रतियाँ
बारहवीं बार	सन् 2000	10000 प्रतियाँ

eEdition 2020

संगणक लेखक :
कोमल डेस्क टॉप प्रिंटिंग,
रामकृष्ण नगर, तुमसर 441912

।। राधास्वामी सहाय ।।

सूचीपत्र महाराज साहब के बचनों का

नम्बर	*मज़मून बचन*	*पृष्ठ*

भाग १ - चितावनी

१	तन का बन्धन -- -- --	१
२	परमार्थी चाह -- -- --	३
३	उपासना की महिमा -- --	७
४	सुरत की चढ़ाई सहज नहीं है और अभ्यास यानी भजन से सुमिरन ध्यान में ज़्यादा आसानी है --	१०
५	तजरुबा जो शुरू में होता है वह काफ़ी नहीं है	१४
६	जो कोइ समझे सैन में,ता सों कहिये बैन सैन बैन समझे नहीं,ता सों कुछ नहिं कहन --	१६
७	जब तक चैतन्य शक्ति नहीं जागी हुई है तब तक नींद में ख़्वाह अभ्यास में ग़फ़लत रहती है। --	२१
८	चितावनी -- --	२२
९	सुरत चैतन्य में रस और आनन्द है और चलने का रास्ता घट में है। -- --	२५
१०	तवज्जह -- -- --	२६

नम्बर	मज़मून बचन	पृष्ठ
११	चाह -- -- --	२८
१२	जिसको सच्ची चाह मालिक से मिलने की है, उसको देर सबेर वह ज़रूर दरशन देता है। -- --	३६
१३	सुरत की धार की कार्रवाई -- --	३९
१४	अभ्यास का मतलब क्या है -- --	४३
१५	धीरज और गम्भीरता -- --	४५
१६	परमार्थ में दुख तकलीफ़ और उलटी सुलटी हालत का होना निहायत ज़रूरी है और इसमें दया है।	५०
१७	जीवों की कुछ भी हैसियत नहीं है कि मालिक का गुप्त भेद जान सकें। यह सिर्फ़ संतों की ताक़त है। और जो कि सच्चे मालिक का खोज नहीं करते हैं, वह नादान हैं। -- -- --	५३
१८	घट में नाम रूपी धन हासिल करने के लिये जतन करना चाहिये। संसारी धन हुकूमत की कुछ भी हैसियत नहीं है। मौत के वक़्त सब यहाँ ही छोड़ना पड़ता है, और पूरे गुरू के संग और सेवा से चैतन्य रूपी दौलत मुयस्सर होती है। -- --	५८
१९	संस्कार का असर स्वार्थ ख़्वाह परमार्थ में और वर्णन भूल भर्म संसारियों का -- --	६२
२०	भक्त जन की उलटी बात भी सुलटी हो जाती है और उसमें से परमार्थी फ़ायदा निकल आता है --	६६
२१	संसारियों की कार्रवाई कर्मानुसार होती है और जो परमार्थी हैं, उनकी कार्रवाई में मौज की धार भी शामिल होती है और जिस पर दया है, उसकी गढ़त होती है। -- -- --	६८

नम्बर	*मज़मून बचन*	*पृष्ठ*
२२	दुख का होना ऐन मालिक की दया है। दुख से जीव चेतता है। -- --	७२
२३	जब कि संहार शक्ति का भी कुछ हाल नहीं मालूम होता है तो मालिक का हाल क्या मालूम हो सकता है?	७४
२४	बाहर के हुनर, तमाशे, नज़ारे देखने का शौक़ जैसा लोगों को होता है, वैसा अंतर में मालिक का दर्शन पाने व अंतरी सैर देखने का शौक़ होना चाहिये। --	७६
२५	संत मत में एक दम चढ़ाई होने की महिमा नहीं है। -- -- --	७९
२६	संत मत के ब-मूजिब ज़रूरी परहेज़ --	८१
२७	सतसंग में आपा ठानना या मान बड़ाई चाहना ना-मुनासिब है -- -- --	८३
२८	काल सतसंग में अक्सर विघ्न डालता रहता है	८४
२९	मन को साफ़ व निश्चल करने का जतन --	८४
३०	जितनी खोज व मेहनत के बाद संत मत मिला है, उतनी ही उसकी क़दर होगी -- --	८६
३१	असल में जीव को परमार्थ की चाह नहीं है	९०
३२	काल तीन लोक में चाहे जिसे तकलीफ़ दे सकता है लेकिन जो राधास्वामी दयाल की सरन में आया है उसका वह नुक़सान नहीं कर सकता है	९२
३३	परमार्थ में अंतरी हालतों का हासिल होना मुश्किल समझ कर निराश न होना चाहिये --	९३

नम्बर *मज़मून बचन* *पृष्ठ*

भाग २ - निर्णय व भेद मत का

३४ चैतन्य शक्ति की अपार प्रबलता का अनुमान और एक शख़्स के सवालों के जवाब -- ९७

३५ जोग -- -- -- १०३

३६ जिस्म में सुरत की मुख्यता। औतार, जिस मुक़ाम तक कि उसके पट खुले हैं, वहाँ तक और जीवों को पहुँचा सकता है। -- -- -- १०६

३७ ज़रूरत परमार्थ कमाने की और इल्मी तौर पर सबूत संत मत के .कुदरती और सच्चे होने का -- ११०

३८ जिस शक्ति से कि दरख़्त के फूल और फल पैदा होते व बाहर फैलते हैं उसके इस ख़वास को झाड़ कर उसके जौहर को अंतर में ऊपर की तरफ़ ले जाना, यह राधास्वामी मत है -- -- ११४

३९ किसी सेन्टर यानी नुक़ते की ताक़त को जगाना अभ्यास है -- -- -- ११५

४० राधास्वामी मत में प्रत्यक्ष सबूत जो अक़्ल में आ सके, दिया जाता है -- -- -- ११६

४१ चौरासी के अर्थ -- -- -- ११८

४२ प्राणायाम व मुद्रा के अभ्यास वाले यह नहीं जानते कि हमारा मक़सद क्या है -- -- ११९

भाग ३ - सतगुरू व सतसंग महिमा

४३ राधास्वामी दयाल का अवतार -- -- १२१

नम्बर	मज़मून बचन	पृष्ठ
४४	सतसंग की महिमा --	-- १२३
४५	सतगुरु की पहिचान करना ज़रूरी है	-- १२५
४६	संग का असर --	-- १२८
४७	दया का वर्णन --	-- १३०
४८	बग़ैर परचे के प्रतीत नहीं होती और बग़ैर मदद पूरे गुरु के अन्तर में हरगिज़ कोई चल नहीं सकता। साध संग की महिमा अपार है। --	-- १३३
४९	संस्कार का वर्णन --	-- १३६
५०	जो सतगुरु होयँ सहाई। तो सभी बात बन आई -- --	-- १३८

भाग ४ - मन का रोग और उसकी संभाल और गढ़त

५१	मन का रोग --	-- १४०
५२	उलटी हालत की मसलहत और उसको मुफ़ीद मतलब जानना --	-- १४१
५३	गढ़त की ज़रूरत और उसका फ़ायदा	-- १४३
५४	नज़र और नीयत का असर और उसका इलाज -- --	-- १४५
५५	मन के विघ्न अैर उनके दूर करने का इलाज -- --	-- १४९
५६	सेवा में स्वामी को भूलना, यह भी एक क़िस्म का मन का विघ्न है --	-- १५१

नम्बर *मज़मून बचन* *पृष्ठ*

५७ आदत का असर और उसके बदलने का जतन -- -- -- १५६

५८ दाब और दबाव में दया है -- १६०

५९ मन इन्द्रियों का दमन करना और आपे को छोड़ना -- -- -- १६२

६० मन का अंग -- -- १६३

६१ सुरत के तन मन से न्यारे होने के लिये दुख तकलीफ और रोग सोग की ज़रूरत है -- १६६

६२ मन का फ़रेब और उसका इलाज। दुख तकलीफ़ में दया है और मौज से मालिक बरदाश्त भी देता है -- -- -- १६९

६३ भक्त जन के लिये उलटी सुलटी हालत और ज़िल्लत इज़्ज़त जो कुछ होती है, मौज से होती है और इसमें उसकी गढ़त मं.जूर है -- -- १७४

६४ मन परमार्थ में भी यह चाहता है कि दुनिया के भी सब सुख ब-दस्तूर बने रहें, मगर यह मुमकिन नहीं है। -- -- -- १७८

६५ प्रेमियों की सोहबत में संसारी मक़रूह मालूम होता है -- -- -- १७९

६६ संत चैतन्य का अंग बढ़ा कर नाक़िस माद्दा ख़ारिज कराके स्वभाव बदलते हैं -- १८०

६७ बल किसी तरह का इसको न रहे, यह भारी दया मालिक की है -- -- १८१

६८ परमार्थी को हमेशा विचार रखना चाहिये -- १८३

नम्बर *मज़मून बचन* *पृष्ठ*

६९ परमार्थी को चाहिये कि मालिक की मौज के साथ मुवाफ़क़त करे -- -- १८५

७० जब बन्धन टूट जाते हैं तो बड़ा आनन्द और मगनता और निःचिंताई हो जाती है -- १८९

भाग ५ - दीनता, सरन व प्रेम

७१ प्रेम की महिमा -- -- १९१

७२ दीनता का स्वरूप -- -- १९६

७३ सच्ची प्रीति का निशान क्या है -- -- २०१

७४ भक्ति और सरन की महिमा -- -- २०३

७५ प्रीति का इज़हार क्या है -- २०६

७६ प्रेम की महिमा -- -- २११

७७ जौहर यानी प्रेम और आपे की कार्रवाई का फ़र्क़ -- -- -- २१६

७८ अर्थ शब्द ''आज आई बहार बसन्त'' -- २१९

७९ सरन की महिमा -- -- २२०

८० पतिव्रत यानी गुरुमुखता का वर्णन -- २२३

८१ गुरु चरन धूर हम हुइयाँ।तुम सुनो हमारी गुइयाँ। क्या क्या सुख कहूँ गुसइयाँ।बिन भाग नहीं कोई पइयाँ -- -- -- २२९

८२ जिस घट में मालिक के दर्शन और दीदार की विरह व प्रेम नहीं है, वह मसान है -- -- २३४

नम्बर	मज़मून बचन	पृष्ठ
८३	भक्ति का बीज -- --	२४४
८४	भक्ति की अवस्थाएँ -- --	२४६
८५	भोला भक्त किस को कहते हैं --	२५०
८६	प्रेम की महिमा -- --	२५१
८७	भक्ति किस को कहते हैं और भक्ति का फल क्या है -- -- --	२५४
८८	सरन कब ली जाती है? -- --	२५८
८९	प्रीतम की याद का नाम प्रेम है और यही सुमिरन ध्यान है। जब तक घट में धार की आमद नहीं है, तब तक याद नहीं आती है। और इसके जतन से कुछ नहीं होता है। -- -- --	२६३
९०	जैसे कि कोई स्त्री अपने पति के .खुश करने को अपना सिंगार करती है, इसी तरह परमार्थी को मालिक को राज़ी करने के लिये अपना सिंगार बनाना चाहिये। -- -- --	२६८
९१	सतसंग और भजन वग़ैरा से मतलब और नतीजा यह है कि मालिक के चरनों का प्रेम हिरदे में बस जावे और उसके चरन एक छिन को जुदा न हों --	२६९
९२	दीनता सुरत का अंग है और अहंकार मन का -- -- --	२७०
९३	प्रेम से सब रचना हुई और क़ायम है और प्रेम से ही प्रकाश है -- --	२७२

नम्बर *मज़मून बचन* *पृष्ठ*

भाग ६ - मिश्रित

९४ आम तौर पर संत मत प्रकट किये जाने की ख़्वाहिश -- -- -- २७४

९५ सार बचन बार्तिक के बचन नं. २५० की शरह -- -- -- २७६

९६ निर्मल बुद्धि और जहल मुरक्कब -- २७९

९७ अन्तरी स्वरूप का दर्शन -- -- २८१

९८ पूरे संस्कार का लखाव -- -- २८३

९९ मौज से मुवाफ़क़त करना किस को कहते हैं -- २८५

१०० अभ्यास का असर और संजम -- -- २८७

१०१ कर्मफल -- -- २९०

१०२ मौज की परख पहिचान तब आती है जब आपा दूर होता है -- -- २९२

१०३ सार बचन बार्तिक के बचन नम्बर ७४ पर शरह -- -- -- २९३

१०४ पहिले परमार्थी चाह होनी चाहिये, फिर अभ्यास करने से जो रस आनन्द आता है, वह इसका आधार हो जाता है, फिर नशे और सरूर की जो हालत है, वह होती है, बाद इस के जब मेला होता है, तब प्रेम यानी इश्क़ पैदा होता है और बंधन सब दूर हो जाते हैं। -- २९५

१०५ भजन का आसन -- -- २९९

१०६ जैसे कि आज कल विद्या वग़ैरा के मदर्से हैं, इसी तरह संतों ने फ़क़ीरी का स्कूल भी जारी किया है -- ३००

नम्बर	*मज़मून बचन*	*पृष्ठ*
१०७	अभ्यास से फ़ायदा बराबर होता है गो कि अभ्यासी को कभी २ मालूम न हो -- --	३०२
१०८	दया के दर्जे -- --	३०३
१०९	सतगुरु के गुप्त होने में भी मसलहत है। सतसंगी हो के भी ना-जायज़ कार्रवाई करना या करम भरम में अटकना निहायत अफ़सोस की बात है। -- --	३०४
११०	जहाँ आपा यानी ख़्याल और चाह है वहाँ मौज की गुंजाइश नहीं है -- --	३०७
१११	मौज -- -- --	३०९

भाग ७ - सवाल व जवाब

सवाल व जवाब -- -- ३१२

बचन महाराज साहब

राधास्वामी दयाल की दया

राधास्वामी सहाय

बचन

परम पुरुष पूरन धनी महाराज साहब के

भाग पहला

चितावनी

बचन १

तन का बन्धन

१ — तन का बन्धन बड़ा भारी है। बड़ी गिरफ़्तारी है। अजब पर्दा है। द्वारे जो इसमें हैं, वह भी बहिर-मुख हैं और जो अन्तर-मुख द्वारे हैं, उनके पट बन्द हैं। बज्र किवाड़ लगे हैं। इनका खोलना मुश्किल है। बड़ी भारी क़ैद है। सुर्त जो कि कुल मालिक की अंश है, वह इसमें आ के फँसी है और तन मन का रूप हो रही है। मन जो कि जुगान जुग से सोया हुआ है, वह जब जागे तब अलबत्ता उसका निरवार हो सकता है।

दे मदद बढ़ावें आगे। मन जुग जुग सोया जागे।।
चढ़ बंक चले त्रिकुटी में। फिर सुन्न तके सरवर में।।
जहाँ शोभा हंसन भारी। वह भूमि लगे अति प्यारी।।

२ — क़ैद में एक दो सुरत नहीं पड़ी हैं, अनन्त सुरतें आकर फँसी हैं, बल्कि मण्डल का मण्डल क़ैद में पड़ा है। काल ने यह क़ैद लगाई है। जितनी इसकी रचना है, सब गिरफ़्तार है। सत्त देश का बासी जब यहाँ

आवे और वहाँ का पता बतावे और साथ ले चले, तब अलबत्ता इस क़ैद से छुटकारा हो सकता है। वरना किसी की ताक़त नहीं है कि अपने बल पौरुष से इस बन्दीख़ाने से बरी हो यानी रिहाई पावे।

३ — ऐसा जो सत्त देश का बासी है, उसको संत अवतार कहते हैं। जब यह पृथ्वी सत्तलोक के सनमुख आती है तब संत औतार होते हैं। तब ही जीवों का उद्धार होता है। यह देश परदेश है। काल का थाना है। यहाँ से हटो। चित्त अन्तर में जोड़ो। विरह और प्रेम बल से तिल को फोड़ो। चरनों से मेल करो। शब्द को सुनो। अमृत रस पान करो। इस देश को छोड़ो। उस देश में पहुँचो। यह संत मत है। और सब काल मत हैं। मन मत हैं।

४ — काल की अंश और वकील यानी मन इसके साथ है। इससे पीछा छुड़ाना आसान बात नहीं है। जब तक संत सरन नहीं लेगा, तब तक काम नहीं होगा। और जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए। धीरे धीरे तरक़्क़ी होती है। असल में तरक़्क़ी होती बड़ी तेज़ी से है, मगर इसका जो ख़्याल है कि फ़िलफ़ौर काम हो जावे, इस से समझता है कि देरी होती है। चाहिए कि धीरज से सतसंग और अभ्यास करे। संसार की आसा बासा जब दूर होगी ओर वहाँ की चाह पैदा होगी तब भौसागर से छुटकारा हो सकता है।

५ — काल ने अजब तरह से जीवों को भरमा रक्खा है। बहिरमुख कार्रवाई में सब को फँसा रक्खा है। और जो कहीं अन्तर का भेद बतलाया तो वह भी अपनी हद्द के अन्दर। इसके परे सत्तदेश का पता थोड़ा बहुत जो इसको था, वह छिपा के रक्खा। तीर्थ व्रत मूर्ति पूजा और विद्या बुद्धि में सब जीव अटक रहे हैं और पच रहे हैं और

निज देश कहाँ है और कैसे वहाँ पहुँचना होगा, उसकी किसी को ख़बर नहीं है। ऐसी हालत जीवों की देख कर राधास्वामी दयाल परम संत औतार धारन करके आये और अपना भेद आप खोल कर गाया।

काल ने जगत अजब भरमाया। मैं क्या क्या करूँ बखान।।

बचन २

परमार्थी चाह

१ — परमार्थी कार्रवाई दुरुस्ती से बनने के लिये किस अंग की ज़रूरत है, इसका जवाब ज़ाहिर है और वह यह है कि परमार्थी चाह इसके अंतर में होवे। संसार में भी रहे, तन मन की कार्रवाई भी करे, मगर कैफ़ियत परमार्थी चाह की बनी रहे, ऐसा न हो कि संसारी चाह ग़ालिब हो जावे। महज़ समझौती से कुछ नहीं होगा। दर-हक़ीक़त इसकी ज़रूरत समझे। मसलन स्त्री की प्रीति पति से है, मगर घर में सास है, ससुर है, जेठ और ननद है, तो उनसे भी उसका ख़िदमत, ख़ातिरदारी और मुहब्बत का रिश्ता है। लेकिन मुख्य प्रीति पति की है। उनसे जो प्रीति है, वह ब-दौलत पति की प्रीति के है। अगर पति कहे कि परदेश चलो तो फ़ौरन तैयार हो जाती है और सब का ताल्लुक़ छोड़ देती है। इसी तरह भक्त जन गो संसार में रहता है, मगर चित्त में मुख्यता मालिक की प्रीति की रखता है। और किसी चीज़ की लाग या बंधन नहीं रखता है।

अन धन और संतान भोग रस। जगत भोग और मिला जोग रस।।
पर किरपा सतगुरु अस रहई। मोह न व्यापे जग नहिं फँसई।।
रहे सुरत निर्मल गुरु साथा। शब्द मिले रहे चरनन माथा।।
अपनी दया से गुरु दियो दाना। सेवक तो कुछ माँग न जाना।।

२ — संसारी चाह और बासना के सबब सुरत देह में फँसी है। फिर परमार्थी चाह जब इसमें ग़ालिब होगी तब निरबंध निरलेप और देही से रहित होगी और विदेह हो कर अरूप में जा समायगी। बहुतेरे यहाँ सतसंग में भी संसारी चाह लेकर आते हैं कि बेटा होवे, ब्याह होवे। मत्था टेकते हैं तो अन्तर में यही कहते हैं कि बेटा होवे। भेट करते हैं तो भी ऐसी ही मन में माँग होती है यानी धन संतान वृद्धि की चाह अंतर में समाई हुई है तो फिर बतलाओ ऐसे जीवों को सतसंग से क्या फ़ायदा होगा?

ऐसी दिवानी दुनिया, भक्ति भाव नहिं बूझे जी।
कोई आवे तो बेटा माँगे, यही गुसाईं दीजे जी।।
कोई आवे दुख का मारा, हम पर किरपा कीजे जी।।
कोई आवे तो दौलत माँगे, भेंट रुपइया लीजे जी।।
कोइ करावे ब्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझे जी।।
साँचे का कोई गाहक नाहीं, झूठे जगत पतीजे जी।।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, अंधों को क्या कीजे जी।।

३ — अगर किसी से न भजन दुरुस्ती से बनता है, न ध्यान बनता है और न सुमिरन होता है, मगर चित्त में चाह परमार्थ की लगी हुई है तो बस वह मालिक का हो गया और वही अपनाया हुआ है, दया और हिफ़ाज़त हमेशा उसके संग है। राजपूताने में बाज़ औरतों का ब्याह पति की कटारी या दुपट्टे से हो जाता है और हरचन्द कि पति को देखा भी नहीं है, तो भी वह पतिव्रता का प्रण पूरा और प्रबल धारन करती है, ऐसे ही भक्त जन का अगर भगवन्त से मेला नहीं हुआ है तो भी उसको सिवाय अपने प्रीतम से मिलने के और कोई चाह नहीं रहनी चाहिये। अगर और चाह है तो पतिव्रत पूरा नहीं है। विभचार का अंग मौजूद है।।

पतिव्रता के एक है, विभचारिन के दोय।
पतिव्रता विभचारिनी, कहो क्यों मेला होय।।

पतिव्रता पति को भजे, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तो भी घास न खाय।।
पतिव्रता के एक तू, तुझ बिन और न कोय।
आठ पहर निरखत रहे, सोइ सुहागिन होय।।
पतिव्रता पति को भजे, पति भज धरे विश्वास।
आन दिशा चितवे नहीं, सदा जो पिव की आस।।

४ — संसारी लोगों का इष्ट क्या है? धन सन्तान वृद्धि! जिन को कि देवता व औतारों का इष्ट है, उनको यह सिखलाया जाता है कि जिसके बेटा नहीं है, उसकी गति नहीं होगी। मुए पीछे भी यहाँ की आसा बासा बँधवाते हैं और बेटा होने के लिये अपने इष्ट से इक़रार करते हैं कि पाँच रुपया भेंट करूँगा, जो बेटा होगा। आज कल जितने मत मतान्तर हैं, निपट स्वार्थी और फँसाने वाले हैं।

५ — कौन कौन संसारी अंग अन्तर में मौजूद हैं, उनकी परख भजन व ख़्वाब में होती है, मसलन मोह की परख करनी है, अगर स्त्री से प्रीति है तो अक्सर ख़्वाब या भजन में ज़रूर याद आवेगी और जब सफ़ाई होगी तब किसी की याद न आवेगी और न किसी के हर्ज मर्ज़ में रंज होगा। इस तरह चाह की परख हो सकती है। बिलकुल ला-परवाही भी अच्छी नहीं है क्योंकि संसारी कारोबार भी करना है। जैसे तराज़ू में तौल करते हैं, वैसे एक पलड़े में परमार्थी चाह और दूसरे में संसारी चाह की तौल करनी चाहिये। अगर दोनों पलड़े ऊपर नीचे डगमगाते हैं तो वह ठीक हो जायेंगे और जो कहीं संसारी चाह का पलड़ा नीचे हो गया तो वह धोखा खायगा। उसका अन्तर चाह से भरा हुआ है। जिसके अन्तर में संसारी चाह धरी हुई है, दिन रात भजन और सतसंग करे तो भी दीदार से ख़ाली और महरूम है। अगर लड़ाका है या

और कोई ऐब है तो भी कुछ मुज़ायक़ा नहीं है। जैसे बहुतेरी औरतें हैं, अनाप शनाप उनकी कार्रवाई होती है और बड़ी लड़ाकी होती हैं, लेकिन पतिव्रत में बड़ी ज़बर हैं, ऐसे ही अगर कोई लड़ाका है, मगर चाह परमार्थ की सच्ची है यानी सिवाय मालिक से मिलने के और कोई चाह नहीं है तो पतिव्रत पूरा है और वही प्यारी नार है यानी मालिक का प्यारा भक्त है।

पतिव्रता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारूँ कोटि सरूप।।
पतिव्रता मैली भली, गले कांच की पोत।
सब सखियन में यों दिपे, ज्यों रवि शशि की जोत।।
विभचारिन विभचार में, आठ पहर हुशियार।
कहें कबीर पतिवर्त बिन, क्यों रीझे भरतार।।

६ — भूल चूक सब से होती है। किससे नहीं होती? अगर इस जन्म में कोई बुरा काम नहीं किया है, तो अगले जन्म में किया होगा। इसलिये भूल चूक सब माफ़ है। बाल्मीकि देखो बहेलिया थे। बहेलियापन से बढ़ कर और कोई पाप कर्म नहीं है तो भी क्या दर्जा उन्होंने पाया, हर कोई जानता है। रामायन उन्होंने बनाई। कहने का मुद्दा यह है कि अगर चाह परमार्थी है, और कोई ऐब है, तो भी अपनाया हुआ है और जो चाह परमार्थी नहीं है, कोई और ही चाह अन्तर में है, वह चाहे दिन रात सतसंग में रहे और सेवा करे यानी सनमुख रहे तो भी दरबार से ख़ारिज है। वहाँ उसका दख़ल नहीं है।।

पुरुष सेव वह नित्त करती रही।
वले मन में कुछ चाह धरती रही।।
किया उसने इस तरह इज़हार हाल।
कि हे सतपुरुष मेरे दाता दयाल।।
जुदे दीप में राज दीजे मुझे।
सुरत अंश का बीज दीजे मुझे।।

मुझे यहाँ का रहना सुहाता नहीं।
तुम्हारा मुझे देश भाता नहीं।।
यह सुन कर दिया पुर्ष ने अस जवाब।
निकल जाव तू यहाँ से ख़ाना ख़राब।।

बचन ३

उपासना की महिमा

१ — उपासना का दर्जा बड़ा भारी है। प्रीति के साथ अपने इष्ट का ध्यान करना इसको उपासना कहते हैं। अगर सुरत मन का सिमटाव भी है, रस आनन्द भी आता है, पर भक्ति यानी प्रेम नहीं है, तो सब कार्रवाई कर्म में दाख़िल है, उपासना नहीं है। शुरू में कर्म की ज़रूरत है। कर्म यानी करतूत मूल है। मगर नतीजा उसका उपासना होना चाहिये। इसमें दर्जे हैं। पहले कर्म, बाद उसके उपासना। हर कोई अपनी परख पहिचान कर सकता है कि परमार्थी कार्रवाई जो वह करता है, वह आया कर्म है या उपासना। अगर इश्क़ है तो उपासना का दर्जा है। नहीं तो कर्म है। मौज की परख पहिचान भी पूरे तौर से तब ही आती है, जब कि उपासना शुरू होती है। भक्त जन हमेशा ऐसी कार्रवाई करता है, जिसमें कि मालिक की प्रसन्नता होवे।

२ — जतन करना ज़रूरी और लाज़िमी है। सीपी का काम मुँह खोलना है और मालिक का काम बरखा करना है। अगर मुँह ही न खोलेगा यानी जतन नहीं करेगा तो दया कैसे आवेगी? जब चरन धार से मेला होता है तब जैसे मीन जल में केल करती है, वैसे ही भक्त की सुरत अमृत की धार में कलोल करती है। कहने

का मुद्दा यह है कि सिवाय प्रेम के जितनी परमार्थी कार्रवाई हैं, सब रूखी फीकी हैं।

प्रेम बिना सब करनी फीकी। नेकहु मोहिं न लागे नीकी।
घट धुन रस दीजे।

३ — मालिक जिस पर निज बख़्शिश फ़रमाते हैं उसको प्रेम का किनका दान देते हैं। यह दात मालिक ने अपने हाथ में रक्खी है। सिवाय राधास्वामी दयाल के किसी की ताक़त नहीं है कि प्रेम की दौलत बख़्शिश करे। प्रेम में रस और आनन्द है। जिसको कि प्रेम का सरूर आता है, उसको कुछ ख़याल करनी वग़ैरा का नहीं रहता है। उसकी करनी क्या है? मुन्तज़िर रहना, जैसे सीपी स्वाँत बून्द के लिये मुन्तज़िर रहती है। ग़रज़ कि मुन्तज़िर रहना, यही भक्त जन की करनी है।

४ — जब प्रेम प्रकट होता है, काम क्रोध वग़ैरा सब अंगों पर पटरा पड़ जाता है। एक प्रीतम ही रह जाता है। और बाक़ी सब भस्म हो जाता है। जब तक कि प्रेम नहीं है, तब तक बाँबी का ठोकना है। साँप बिल में बैठा हुआ है, उसको मारना चाहिये। जब तक इश्क़ नहीं है, तब तक साँप यानी मन नहीं मरता। जब इश्क़ आता है, तब घट के सब दूत नाश हो जाते हैं।

इश्क़ वह शोला है, जिस घट में वो रोशन हो गया।
एक प्रीतम रह गया, और बाक़ी सब जल भुन गया।।
प्रेम जब आया सभी को रद किया।
एक प्रीतम रह के बाक़ी बह गया।।
वाह वाह हे प्रेम तू है निरमला।
ग़ैर को प्यारे सिवा दीना जला।।

५ — जब तक जिसके मन में मान है, तब तक उपासना नहीं है। वह गोया अभी प्रेम रूपी बाज़ के पंजे में आया ही नहीं है।

मन पंछी तब लग उड़े, विषय बासना माहिं।
प्रेम बाज़ की झपट में, जब लग आयो नाहिं।।
जहाँ बाज़ बासा करे, पंछी रहे न और।
जा घट प्रेम प्रकट भया, नहीं कर्म को ठौर।।

६ — मान अंग कई एक क़िस्म का होता है। ज़ात बिरादरी का, हसब नसब का, उहदे हुकूमत का, गुन जौहर और हुनर का और परमार्थी करनी का। तीन लोक तक किसी की ताक़त नहीं है, सिवाय राधास्वामी दयाल कुल मालिक के कि मान को मरदन कर सके।

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्षा, दुर्लभ तजनी येह।।
माया तजी तो क्या हुआ, मान तजा नहिं जाय।
मान बड़े मुनिवर गले, मान सबन को खाय।।
काला मुंह कर मान का, आदर लावे आग।
मान बड़ाई छाँड़ कर, रहे नाम लौ लाग।।
मान बड़ाई कूकरी, धर्म राय दरबार।
दीन लकुटिया बाहिरा, सब जग खाया झार।।

७ — भक्त जन में अगर गुन जौहर या बल पौरुष है तो अपने प्रीतम का है और जिस में कि आपा है, उसका आपा नदारद किया जाता है। जीव की ताक़त नहीं कि आपे को वह आप मार सके। राधास्वामी दयाल हर तरह लड़ा भिड़ा के हिला हिला के मार मार के इसका आपा खोसते चले जाते हैं।

सतगुरु तोहि छिन छिन पोसें। हँगता तेरी सब विधि खोसें।।
तू कर उन चरनन होशें। सतगुरु से मत कर रोसें।।

८ — जैसे जब तक दरख़्त की जड़ नहीं काटी जाती है, उसमें नई नई डालियाँ और पत्ते निकलते हैं, लेकिन जो पेड़ का नाश करना मंज़ूर है तो पहले जड़ काटनी चाहिये या जैसे माला का सुमेर निकाल दो तो सब दाने माला के आप गिर पड़ेंगे, ऐसे ही आपा जो

विकारों का मूल है, पहिले राधास्वामी दयाल उसको काटते हैं। उसी पर हमेशा नज़र उनकी रहती है क्योंकि और दूसरे विकारी अंगों में जब जीव का बर्ताव होता है, तब अंतर में वह पछताता है और अपने को नालायक़ समझता है, इससे मसाला ख़ारिज होता है, लेकिन जो कोई इसकी मान बड़ाई करता है तो फूलता है, इसमें उल्टा सुर्त का बाहर बिखेर होता है, और इसका कोई इलाज नहीं है सिवाय नज़र इनायत राधास्वामी दयाल के। अगर दूसरा इसको नालायक़ कहे तो लड़ने को तैयार होता है और आप अपने को जो वाक़ई नालायक़ समझता है तो उसे ग़ुस्सा न होना चाहिये। असल में पूरे गुरू जब इसको मिलते हैं तब मान मर्दन होता है और जो झूठा गुरू मिला, वह इसकी ख़ुशामद और ख़ातिरदारी करेगा। जो सच्चे गुरू हैं, वह कभी प्यार भी करते हैं और कभी भींचा भाँची करते हैं यानी फटकारते हैं। कहने का मुद्दा यह है कि जब भक्ति अंग जागता है तब यह नोच नोच के दोनों हाथों से मान अंग को दूर फेंकता है और धीरे धीरे उपासना का दर्जा हासिल करता है।

बचन ४

सुरत की चढ़ाई सहज नहीं है और अभ्यास यानी भजन से सुमिरन ध्यान में ज़्यादा आसानी है

१ — अक्सर सतसंगी समझते हैं कि जैसे और संसारी मामूली कारोबार करते हैं, वैसे ही परमार्थी कार्रवाई भी कर लेंगे मगर उनकी ग़लती है। ज़रा बुख़ार

में सुरत का खिंचाव होता है तो पटरा हो जाता है और अभी अंतःकरन से सुरत नहीं खिंची है और जब वहाँ से हटाव और खिंचाव होगा, वह तो ठीक मौत के रास्ते पर चलना है, उसमें क्या तकलीफ़ होगी उसकी अभी इसको ख़बर भी नहीं है। शब्द का सुनना या रस का मिलना या कभी कुछ झलक का नज़र आना अच्छा है मगर इससे यह न समझना चाहिये कि काम हो गया। ए बी सी सीखने से बड़ी किताब के पढ़ने में मदद मिलती है। ऐसा नहीं कि ए बी सी सीख लिया और काम बन गया और शांति आगई। ऐसे ही शब्द के सुनने वग़ैरा से मदद मिलती है, मगर काम वह ही करना है कि जैसे मौत के वक़्त सुरत मन का सिमटाव और खिंचाव अंग २ रग २ में से होता है, वैसे ही जीते जी करना होगा और एक रोज़ सब की ऐसी हालत होगी। और मौत के वक़्त क्या तकलीफ़ होती है, सिर्फ़ वही जानता है जो कि सच्चा परमार्थी है। वही हर तरह की ज़ेरबारी उठाता है बल्कि अपना तन छोड़ने के लिये भी तैयार रहता है।

२ — संसार में धन या हुकूमत हासिल करके शांति आवे तो कोई बात नहीं है, मगर परमार्थ में ज़रा सा रस आने या शब्द सुनने में शांति का आना बड़ा मुज़िर है। बड़ा विकट और बेड़ा रास्ता है। जीते जी मरना पड़ेगा तब साध बनेगा। अपना बल पौरुष जब छोड़ेगा और हारेगा, तब कहेगा कि हे मालिक! मेरे में कोई ताक़त नहीं है, अगर तू मेरी मदद नहीं करता तो मैं एक क़दम आगे नहीं चल सकता। यह जब आजिज़ होता है, तब तहे-दिल से पुकार प्रार्थना करता है और जैसे समुद्र में डूबता हुआ आदमी पुकारता है, वैसे ही यह भी मदद के लिये पुकारता है। अभ्यासी को जो तकलीफ़ होती है उससे वही बा-ख़बर है, और सब बे-ख़बर हैं।

शबे तारीको बीमे मौजो गिर्दाबे चुनीं हायल।
कुजा दानंद हाले मा सुबुक्साराने साहिलहा।।(हाफ़िज)

यानी रात अंधेरी और खौफ़ लहरों का और उस पर भँवरें पड़ रही है, यह कैफ़ियत हमारी, ऐसे लोग जो कि किनारे पर रहते हैं और ऐसी आफ़त नहीं झेली है, क्या जान सकते हैं?

३ — संसारी तो उस तकलीफ़ से बिलकुल बे-ख़बर हैं और जो कि सतसंगी हैं वह भी बहुतेरे नहीं जानते हैं कि सुरत की चढ़ाई में क्या तकलीफ़ होती है। मन ऐसा शरीर है कि अभ्यास में बैठना नहीं चाहता है। भजन के वक़्त कहीं खुजली होती है, कहीं मच्छड़ काटते हैं या और कोई काम सूझ पड़ता है। इसको चाहिए कि मन पर किसी क़दर सख़्ती करे और जिस रोज़ मन ज़्यादा शरारत करे आध घन्टे के बदले दो घन्टे अभ्यास में जम कर बैठे या सिर्फ़ आँखें बन्द करके बैठा रहे, सो न जावे, तो भी मन के इंजर पिंजर टूट जावेंगे।

४ — ध्यान में सीतलता, निर्मलता, निर्विघ्नता है और प्रेम अंग जागता है। गुरु स्वरूप गोया घट का ताला खोलने की कुँजी है।

गुरु कुंजी जो बिसरे नाहीं। घट ताला छिन में खुल जाहीं।।

ताते शब्द किवाड़, खोलो गुरु कुंजी पकड़

कहें कबीर निरभय हो हंसा। कुंजी बता दूँ ताला खुलन की।।

५ — बग़ैर प्रीति के ध्यान नहीं बन सकता है। इसलिये नाम के सुमिरन पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। नाम के संग नामी मौजूद है। नाम से नामी मिलता है।

जब देखा तेज मैंने जो मालिक के नाम का।
दिल और जान भेंट हुए गुरु के नाम का।।

प्यासों की प्यास बुझ गई धारा से नाम के।
ऐसा है आबे शीरीं अमी रूप नाम का।।
नामी व नाम में है नहीं फ़र्क़ देख ले।
छबि यार की दिखाता है वह तेज नाम का।।
हिरदे में तुझ को दीख पड़ेगा जमाले यार।
जो रगड़ा उस पै नित्त दिया जावे नाम का।।
मालिक का संग तुझको मिला यह सहीह जान।
जो दिल में तेरे लाग रहा ध्यान नाम का।।
कर संग नाम का जो तू दीदार को चहे।
मालिक का मेल है जो हुआ मेल नाम का।।
मालिक के लोक में तेरा हो जायगा गुज़र।
जो तू उड़ेगा ऊँचे को बल लेके नाम का।।
सुमिरन से नाम गुरु के तू ग़मगीं न हो कभी।
मालिक का प्यार आवे जो हो प्यार नाम का।।

६ — भक्त जन को चाहिये कि नाम को साँसों में जज़्ब कर ले और निरन्तर नाम की आराधना यानी जाप करता रहे। नाम का सुमिरन जब पक्का हो जावेगा, तब ध्यान भी अच्छी तरह से बन सकेगा। फिर इसको इख़्तियार है चाहे सुमिरन अलग करे, चाहे ध्यान सुमिरन दोनों मिला कर करे। सतगुरु शब्द स्वरूप हैं। इसलिये गुरु स्वरूप का ध्यान करने से गोया शब्द का भी संग साथ साथ हो जावेगा और स्थान-स्थान पर नाम रूप और शब्द तीनों एक हो जाते हैं और साफ़ साफ़ कह भी दिया है कि —

गुरु की मूरत बसी हिये में। आठ पहर गुरु संग रहाये।।
अस गुरु भक्ति करी जिन पूरी। ते ते नाम समाये।।
स्वाँत बूंद जस रटत पपीहा। अस धुन नाम लगाये।।
नाम प्रताप सुरत अब जागी। तब घट शब्द सुनाये।।

यानी पहले नाम का सुमिरन जब करेगा, तब गुरु की प्रीति जागेगी और फिर शब्द खुलेगा।।

७ — अक्सर लोग सुमिरन नहीं करते। शुरू ही में अभ्यास पर ज़ोर देते हैं। नतीजा यह होता है कि अहंकार के पुतले हो जाते हैं या आप बन बैठते हैं या रूखे फीके होकर छोड़ देते हैं। ग़रज़ यह है कि इसके जतन से कुछ नहीं होगा। शब्द भी गुरु की मेहर से खुलेगा और जब तक गुरुमुखता नहीं होगी, सुरत की चढ़ाई हर्गिज़ नहीं होगी।

गुरुमुखता बिन शब्द में पचते, सो भी मानुष मूरख जान।
शब्द खुलेगा गुरू मेहर से, खैंचें सुरत गुरू बलवान।
गुरुमुखता बिन सुरत न चढ़ती, फूटे गगन न पावे नाम।
गुरुमुखता है मूल सबन की, और साधन सब साखा जान।

बचन ५

तजरुबा जो शुरू में होता है वह काफ़ी नहीं है

१ — सुमिरन ध्यान और भजन के शुरू में जो तजरुबा होवे, उस को पूरा समझना नहीं चाहिये बल्कि और ज़्यादा तजरुबा हासिल करने की उम्मीद रखना चाहिये। अगर कुछ भी तजरुबा नहीं है तो बाचक ज्ञान है। इल्म है, अमल नहीं है। आलिम है, आमिल नहीं है। जिस क़दर अभ्यास बढ़ता जावेगा, नया २ तजरुबा होता जावेगा। बानी में जान बूझ के पूरा भेद नहीं खोला है। जिस क़दर तरक़्क़ी होगी, आप से आप सब भेद दर्जे-ब-दर्जे खुलता जावेगा। और जुज़बी तजरुबा काफ़ी नहीं है। ज़्यादा तजरुबे की चाह और उम्मीद रखनी चाहिए।

२ — और बानी में जो कुछ कहा गया है, वह कोई शायरी नहीं है। जिस क़दर हो सकता है, इख़्तिसार से

बयान किया गया है। विस्तार और मुबालिग़ा नहीं है। मुरीद जब होगा, तब ख़बर पड़ेगी। मुरीद नाम मुरदे का है। तीसरे तिल में जब सुरत की धार धसती है, तब मुरदा होता है। तन से और थोड़ा बहुत कर्मों से जब न्यारा होके तीसरे तिल में प्रवेश करेगा, तब मुरीद होगा। बाज़े संत मत के अभ्यासी मुख़्तलिफ़ धुनें सुन कर आप बन बैठते हैं, जैसे कई एक साधू अपने को पुजवाते हैं। संत मत में सिद्धि शक्ति की भी सख़्त मुमानियत है जैसे कि और मतों में बाज़ करते हैं। यह काल का अंग बड़ा झीना है। अभ्यासी को तजरुबा करके इससे क़तई बचना चाहिए।

३ — दूसरा फन्दा काल का यह है कि दो चार तारीफ़ करने वाले खड़े कर देता है और यह उस मान बड़ाई और तारीफ़ में कुप्पे के मुवाफ़िक़ फूल जाता है। इस से वृत्ति उसकी बहिरमुख और फैली हुई रहती है। इसी पर कहा है कि —

गुरु की ताड़ और मार सह धर कर पियार।
मूर्खों की अस्तुती पर ख़ाक डार।।

जो नज़र अपने क़सूरों पर करे।
जल्द पूरा होवे रस्ता तै करे।।
आप को जाने है पूरा जो अजान।
थक रहा रस्ते में हक़ के वह निदान।।

४ — कहने का मुद्दा यह है कि संत मत सत्त मार्ग है, निज मार्ग है, अटपट है, सटपट है, कोई लख नहीं सकता है। कहा है कि—

पिंड का सब भेद पोशीदा मुझे ज़ाहिर हुआ।
मेहर से पूरे गुरू के काम मेरा बन रहा।।
सुर्त ने जब धुन को पकड़ा आसमाँ पर चढ़ गई।
हो गई क़ाबिल वहाँ पर फिर न कोई ग़म रहा।।

यानी पहिले जब पिंड का पोशीदा भेद मालूम हुआ, तब सुरत आवाज़ को पकड़ के चली। अब पूछो उन लोगों से कि तुम को पिंड की क्या ख़बर है, किस तरह रचना हुई और कौन शक्तियाँ कारकुन हैं? कुछ भी ख़बर नहीं है। ज़रा सी सिद्धि शक्ति चट्टे बट्टे का खेल सीख के महात्मा बन जाते हैं। जैसे एक हज़रत ने किसी को कह दिया कि इम्तिहान में पास हो जावेगा और वह पास हो गया, बस उसको यक़ीन आ गया और यह सिद्ध बन बैठे। यह लोग सब नादान हैं। संत मत की ज़रा भी इन को ख़बर नहीं है।

बचन ६

जो कोइ समझे सैन में,ता सों कहिये बैन।
सैन बैन समझे नहीं,ता सों कुछ नहिं कहन।।

१ — जो कि स्याना है, वह इशारे में समझ लेता है। और जो गँवार है, उसको बहुतेरा समझाओ तो भी नहीं समझता है। ऐसे मूरखों के साथ मौन रहना बेहतर है। हाकिम के साथ जिस तरह बरताव करना चाहिये, उसके लिये मौक़ा और उसके मिज़ाज का ख़याल जिसको नहीं है, वह नादान है। हमेशा हाकिम का मिज़ाज और मौक़ा देख कर बोलना चाहिये।

दृष्टान्त — एक राजा था। उससे एक बार उसकी रानी ने कहा, यह क्या अन्धेर है कि बिचारा दरबान दिन रात पहरा देता है और काम करता है, उसको चार रुपया महीना तनख़्वाह मिलती है और जो वज़ीर है, कुछ काम नहीं करता है, एक आध घण्टे इधर उधर थोड़ा सा

काम कर लिया, उसको दो हज़ार रुपया मिलता है। इसका क्या सबब है? राजा ने कहा, अच्छा रानी हम तुमको इसका तमाशा दिखाते हैं। हुक्म हुआ कि दरबान को बुलाओ। दरबान हाज़िर हुआ। राजा ने कहा, हमने सुना है कि कुतिया जो दरवाज़े पर बैठी है, उसके बच्चा हुआ है। जाओ, देख आओ। दरबान देख के आया और कहा, हाँ बच्चा हुआ है। राजा ने पूछा, कै बच्चे हुए हैं? कहा, यह नहीं कह सकता। राजा ने कहा, अच्छा जाओ फिर देख आओ। उसने आ के कहा, चार बच्चे हैं। राजा ने पूछा, कै नर हैं और कै मादा? दरबान ने कहा, यह नहीं देखा। फिर भेजा गया। आ के जवाब दिया कि दो कुत्ते और दो कुतियाँ हैं। राजा ने पुछा, क्या रंग उनका है? कहा, यह नहीं देखा। फिर भेजा गया। आ के कहा सफ़ेद और काले हैं। राजा ने पूछा, कै सफ़ेद और कै काले हैं? कहा, यह नहीं गिना। फिर भेजा गया। आ के कहा, दो सफ़ेद और दो काले हैं। राजा ने पूछा, कुत्ते सफ़ेद हैं या काले? दरबान ने कहा, यह नहीं देखा। ग़रज़ कि इसी तरह कई बार वह आया गया। बाद इसके राजा ने वज़ीर को बुलाया और कहा, सुना है कि कुतिया के बच्चा हुआ है, जाके देख आओ। वज़ीर गया और आ के अर्ज़ किया, चार बच्चे हुए हैं, दो कुत्ते और दो कुतियाँ हैं, कुत्ते सफ़ेद और कुतिया काली हैं और इस इस तरह उनके पालन पोषण का इन्तिज़ाम कर दिया गया है। तब राजा ने रानी से कहा, देखा फ़र्क़। वह बैल के मुआफ़िक़ था, जैसे ठेला जाता था वैसे चलता था, और वज़ीर ने बिना कहे सब सवालों के जवाब दे दिये और बन्दोबस्त भी सब कर दिया। रानी बोली, बेशक सैन और बैन समझने का बड़ा फ़र्क़ है। स्याने के लिये सैन काफ़ी है, मूरख के लिये बैन भी बे-फ़ायदा है।

२ — चरचा जो की जाती है वह जिसके लिये है, अगर वह स्याना है तो सैन में समझ लेता है और जो अयाना (नादान) है तो औरों से पूछता है कि चरचा किसके लिये थी। वैसे तो चरचा की रोशनी हर जानिब फैलती है, मगर बाज़ दफ़े ख़ास किसी के मुताल्लिक़ की जाती है, पर बहुत कम लोग सैन में समझते हैं। असल में कुल कारख़ाना सैन का है। हम लोग कम-ज़र्फ़ हैं, इस वास्ते नहीं समझ सकते हैं। हुज़ूर साहब जब कोई बात सैन में कहते थे तो सुनने वाले पहिले कहते, यह ठीक है। फिर जब अलेहदा होते थे, तब मन उनका अनेक सूरतें पैदा करता था और फिर वही करते थे जो उनके मन में था। इसका नाम समझ नहीं है। और ऐसे जीवों पर दया कैसे नाज़िल हो सकती है?

गुरू की मरज़ी कभी न परखी।
मेहर कहो आवे कैसे धुर की।

३ — जब तक कतर ब्योंत है, तब तक यह मन के कहे में है। जो प्रेम धार जागे तो सब कार्रवाई ठीक होवे और तन मन की भी सुध भूल जावे, नहीं तो बिलकुल हालत रूखी फीकी रहती है।

दृष्टान्त — गुरू अमरदास को उनकी बेटी जो कि भक्त थी, एक रोज़ नहलाती थी। चौकी में कोई कील निकली हुई थी। लड़की के ऐसी चुभी कि नाली के मुआफ़िक़ ख़ून बहने लगा, पर लड़की इस क़दर सेवा में मशगूल थी कि उसको ख़बर भी न हुई। गुरू ने यह हाल देखा और निहायत प्रसन्न हुए और फ़रमाया कि जो तेरी ख़्वाहिश हो, माँग ले। लड़की ने कहा, गुरुवाई अपने ख़ानदान में रहे, कहीं दूसरे को न मिले। गुरू ने कहा, कम-बख़्त! क्या तूने माँगा? अच्छा तेरी ख़्वाहिश पूरी होगी। और उसके दामाद को गद्दी मिली। दृष्टान्त का

एक अंग लेना चाहिये। मतलब यह है कि गुरू की सेवा ऐसी करनी चाहिये कि तन मन की भी सुध बिसर जावे और गुरू राज़ी हो जावें।

४ — काल अनेक रीति से इसके अन्तर में विक्षेपता पैदा करता है, मसलन अगर कोई कुत्ते से डरता है तो काल के दूत कुत्ते का रूप धारन करके उसको डराते हैं। उस वक़्त उसको चाहिए कि गुरू स्वरूप का ध्यान करे और दृष्टि उसमें जमा दे तो काल के दूत भाग जायँगे।

दृष्टान्त — एक बहेलिया था। उसको एक वक़्त जंगल में तूफ़ान ने आकर घेर लिया। वहाँ एक साधू की कुटी थी और उस साधू की ब्रह्म लोक तक रसाई थी। वहाँ बहेलिया जाके दो घण्टे बैठा और दर्शन साधू के करता रहा। जब वह मरा, जमदूत उसको ले गये और कहा, तू ने दो घण्टे साधू के दर्शन किये हैं और बाक़ी सारी उमर पाप कर्म किया है, चाहे पहले पाप कर्म का दण्ड भुगत ले, चाहे दो घण्टे ब्रह्म का दर्शन करले। उसने जवाब दिया, पहले हम ब्रह्म का दरशन करेंगे, पीछे देखा जायगा। जमदूत उसको वहाँ ले गये। अन्तर में उस को प्रेरना हुई कि ख़ूब दृष्टि जोड़ कर दर्शन कर, तो यहाँ ही बैठा रहेगा और नरक के दुक्खों से बच जावेगा। उसने ऐसा ही किया। हरचन्द जमदूतों ने बाहर से बहुत कुछ शोर ग़ुल मचाया, पर उसने एक न सुनी आख़िर लाचार होकर वह सब भाग गये।

५ — जब कोई विघ्न पेश आवे, उस वक़्त नाम का सुमिरन और गुरू स्वरूप का ध्यान करना चाहिए, मगर हाल ऐसा है कि जो अभी यहाँ कोई भयंकर रूप आ जावे, सब पेशाब पाख़ाना कर देंगें और भाग जायँगे और गुरू का ज़रा भी भरोसा नही करेंगे। बानी में कहा है —

बिसारो मत उन्हें हर बार। दुक्ख और सुक्ख रहो उन धार।।

६ — मुनासिब यह है कि अपनी समझ बूझ और अक़्ल को ताक पर रख दे और गुरू की याद, लाग, सरन और प्रीति प्रतीत को दृढ़ करे, गुरू सब तरह सम्हालेंगे। अगर कोई चटोरा है तो जिस वक़्त उसके चाट की चीज़ सामने आवे, उस वक़्त नाम का सुमिरन करे तो बच जावेगा और जो आप चाह उठाता रहेगा और उसमें रस लेगा तो फिर क्या किया जावे?

खट्टा मीठा चरपरा जिह्वा सब रस ले।
चोर और कुतिया मिल गई पहरा किसका दे।।

जब यह ख़ुद हथियार छोड़ देता है, फिर लड़ाई कौन करेगा?

७ — फ्रांस का बादशाह (लुइ चौदहवाँ) बड़ा बुज़-दिल था। जब लड़ाई का मौक़ा आया, जनरल ने उससे कहा, लड़ाई करना चाहिए, सिर्फ़ हुक्म दरकार है। नहीं माना और अपने ऐश इशरत में मशगूल रहा। जब आधा लश्कर क़तल हो गया तब हुक्म दिया। नतीजा यह हुआ कि हार गया। जैसे कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि लड़ाई करुँगा मैं, मगर करानी तुम्हारे हाथ से है, ऐसे ही गुरू मन माया से लड़ाई करते हैं, मगर कराते इसके हाथ से हैं। जो यह ख़ुद हथियार छोड़ देगा और दुश्मन से मिल जायगा तो फिर गुरू कुछ नहीं करेंगे। गुरू सैन बैन में हर तरह समझाते हैं। जो किसी तरह भी नहीं समझता है, लाचारी है।

* * * * * *

बचन ७

जब तक चैतन्य शक्ति नहीं जागी हुई है तब तक नींद में ख़्वाह अभ्यास में ग़फ़लत रहती है

१ — गहरी नींद में जितने इसके अंग हैं, सब ग़ायब हो जाते हैं और ग़फ़लत छाई रहती है। इसी तरह अभ्यास में एक स्थान से जब उत्थान होता है, अगर इसकी चैतन्य शक्ति जागी हुई नहीं है तो ग़फ़लत आ जाती है और अन्तर में जो छिपी हुई चाह है, वह अयाँ और परघट हो जाती है। जैसे एक नीचे दरजे का अभ्यासी था, एक दफ़े वह सकते की हालत में हो गया। लोगों ने समझा कि मर गया और ज़मीन में उसको दफ़न कर दिया। दो बरस बाद वह ज़मीन खोदी गई। उसके सिर में चोट लगने से वह चेतन हो गया और "वही घोड़ा" पुकारने लगा क्योंकि किसी घोड़े की चाह उसके अंतर में धरी थी और उसी हालत में बेहोश हुआ था। गरज़ कि जब तक चैतन्य शक्ति नहीं जागेगी, चाल नहीं चलेगी, मार्ग में अटक जायगा। सहसदल कँवल के नीचे जो सुन्न है, वह भी चैतन्य है। वहाँ जब सुरत जाती है तब इसमें जो वासना धरी हुई है, वह नमूदार हो आती है और उसी अनुसार फिर देही धारन करनी पड़ती है और वहाँ पहुँचने से इस पर ग़फ़लत आजाती है, यहाँ की सुध बुध भूल जाती है और इसकी कुछ पेश नहीं चलती है, लय की हालत हो जाती है।

२ — पूरे गुरू की सरन जब लेगा और जब उनका सतसंग करेगा और सुर्तवन्त होगा यानी चैतन्य शक्ति

जब इसकी जागेगी, तब ग़फ़लत दूर होगी, बाहोश और बा-अख़्तियार घट में चल सकेगा। और जब तक पुरुषार्थ यानी अपना बल पौरुष है, तब तक झटके और झकोले खाने पड़ेंगे और मंज़िल तय नहीं होगी। दुनिया के जो और मज़हब हैं, सब बहिरमुख हैं। अन्तर का पूरा भेद कहीं नहीं बतलाया है और न किसी को उसकी ख़बर है। यह तन भाँडा है। इसमें रास्ता चलने का है। अन्तर इसके द्वारे हैं। जैसे यहाँ पिण्ड में बाहरी द्वारों पर जब धार आती है तब यहाँ का ज्ञान होता है, इसी तरह जब अन्तर के द्वारे में धसेगा, तब वहाँ का ज्ञान होगा। अन्तर ही से यह जीव पैदा होने के वक़्त आया है और अन्तर ही में मरने के वक़्त ख़्वाह अभ्यास के वक़्त चलना होता है। इन द्वारों को बन्द करो, उन द्वारों को खोलो। चलने वाला संग लो। काल कर्म का दल दलन करो। फिर जीते जी मुक्ति अपनी आँखों से देख लो।

जो तू घट में चालन हार। चलने वाला संग ले यार।।

गुरु बिन घट में राह न चलना। डर और विघन अनेकन मिलना।।
गुरु रक्षा जाके संग नाहीं। उसको काल करम भरमाहीं।।
या ते सतगुरु ओट पकड़ना। झूठे गुरु से काज न सरना।।

बचन ८

चितावनी

१ — यह देश परदेश है। कोई चीज़ यहाँ ठहराऊ नहीं है। जैसे पतझड़ के मौसम में पत्ते झड़ते जाते हैं, ऐसे ही जीव मरते चले जाते हैं। यहाँ का सामान कुछ भी

संग नहीं चलता। सब यहाँ ही रह जाता है। दुख और संताप छा रहा है। कोई भी सुखी नहीं है।

''तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो''

न जग में चैन और न स्वर्ग सुख है, न ब्रह्म पद में अमर अनन्दा।
जहाँ तलक हैगा माया घेरा, वहाँ तलक हैगा जम का फन्दा।।

२ — जो कि सच्चे भक्त जन हैं, वह इस परदेश में मिस्ल मुसाफ़िर के रहते हैं। ज़मीनी और आसमानी कैफ़ियत को मालूम करके इस बात का सोच विचार करते हैं कि वह कुल करतार जिसने कि यह रचना रची है, सूरज, चाँद और तारागन बनाये हैं, ब्रह्माँड और निर्मल चैतन्य देश और हंस रचे हैं जो कि नित्त अमी अहार और किलोल कर रहे हैं, वह कुल करतार कैसा मुनव्वर होगा, उसका दर्शन जिसने कि नर शरीर में आकर हासिल नहीं किया, वह जैसा दुनिया में आया, वैसा न आया, ऐसा समझ कर सच्चे परमार्थी के मन में दुनिया से बैराग और मालिक के चरनों में अनुराग पैदा होता है।

३ — पढ़ना गुनना सहज है मगर मन जो कामनाओं से भरा हुआ है, उसको बस करना और अन्तर में चलना और चढ़ना, यह निहायत ही कठिन काम है।

पढ़ना गुनना चातुरी यह तो बात सहल।
काम दहन मन बस करन गगन चढ़न मुश्किल।।

४ — जैसे लोहा चुम्बक के सन्मुख आता है तो जब तक पूरी तरह वह नज़दीक और सन्मुख नहीं है, तब तक चुम्बक की तरफ़ खिंचता भी है और हटता भी है। और चुम्बक में दो धारें हैं, एक तो पहले आकर बाहर लोहे से मिलती है, फिर दूसरी अपनी तरफ़ कशिश

करती है। ऐसे ही शब्द की धार में भी दो क़िस्म की ताक़त है, एक अन्तरमुख, दूसरी बहिरमुख जिसको सेनसरी करेंट (Sensory Current) और मोटर करेंट (Motor Current) कहते हैं। जब तक सुरत पूरे तौर से शब्द के सन्मुख नहीं आई है, तब तक यह अभ्यास में गिरता भी है, मगर जब कि पूरे तौर से शब्द के सन्मुख आ जाता है तब वह धार कशिश करके इसको ब-ख़ूबी खैंचती है।

५ — अभ्यास में खैंचातानी हरगिज़ नहीं करनी चाहिए, जैसे कोई आँखों को ज़ोर लगा के पुतलियों को तानते और खैंचते हैं, यह फ़िज़ूल है, इससे कुछ नहीं होगा। सुरत ख़ुद कशिश रूप है। वह जब कि मरकज़ के निकट आ जायगी, तब आप ही द्वारे में धसेगी। ज़ोर लगाने से अन्तर द्वारे में नहीं प्रवेश करेगी। इसको चाहिए कि सुरत और मन को तीसरे तिल में सहज सुभाव से जोड़े यानी जमा के चित्त को एकाग्र करे तो आप ही सिमटाव और खिंचाव होगा और सुरत अन्तर में धसेगी। जैसे चुम्बक लोहे को खैंचता है, ऐसे ही शब्द की धार आप ही सुरत को खैंचेगी। इसको सिर्फ़ उस धार के सन्मुख होना चाहिए, जैसा कि लोहा जब तक सन्मुख नहीं होगा, चुम्बक कैसे उसको खैंच सकता है।

६ — जब धार से मेला होगा तब प्रेम प्रकट होगा। प्रेम गोया भाप है। जैसे बग़ैर स्टीम के एंजिन नहीं काम करता है, ऐसे ही बग़ैर प्रेम के अन्तर में चाल नहीं चलती है। प्रेम मालिक की दात है। जिसे मालिक चाहे उसे बख़शे। सबको चाहिये कि उस दात के हासिल करने की चाह पैदा करे। जितनी परमार्थी कार्रवाई की जाती है, वह सब उस दात के हासिल करने के लिये की जाती है।

जब प्रेम रूपी पंख निकलेगा, तब इस मर देश को छोड़ के अमर अजर देश में उड़ जायगा।

बचन ९

सुरत चैतन्य में रस और आनन्द है और चलने का रास्ता घट में है।

१ —जड़ चैतन्य के मेल से दुख होता है। जहाँ तक जड़ता यानी माया है वहाँ तक दुख सन्ताप और जनम मरन है और जहाँ माया का लेश नहीं है, वहाँ अविनाशी सुख आनन्द और अमर अजर हर्ष हुलास है। जब तक बासना की जड़ मौजूद है, तब तक इस मर देश में आवागमन के चक्कर में घूमता फिरता है। जैसे कटे दरख़त में डाली पत्ते फिर निकल आते हैं, वैसे ही बासना का जब तक नाश नहीं होता, मन के विकार फिर जाग उठते हैं और बासना अनुसार फिर देह धारन करना पड़ता है और वही पापड़ बेलने पड़ते हैं।

२ — मन रसों का रसिया है। यहाँ संसारी रसों में फँसा हुआ है। फिर जब परमार्थी रस मिलेगा, तब यहाँ से हटेगा और उस तरफ़ मुख़ातिब होगा। असल में यहाँ का भी जो रस है वह संसारी चीज़ या पदार्थ में नहीं है। वह भी सुरत में है। मगर यह समझता है कि पदार्थ में है, जैसे कुत्ता हड्डी चूसता है और उसके दाँत से जो ख़ून निकल आता है उसे चाट कर समझता है कि हड्डी में रस है। सोते हुए आदमी को लड्डू खिलाओ या घर में कोई मरा हो या खाना खाते वक़्त किसी से बात चीत करता हो या चित्त कहीं दूसरी जगह हो तो कुछ भी मज़ा

नहीं आता है। इससे ज़ाहिर है कि रस चैतन्य में है। और किसी पदार्थ में नहीं है। और यहाँ का जो रस है, वह मिलौनी का है। निर्मल नहीं है। माया देश के परे यानी निर्मल चैतन्य देश में निर्मल रस और आनन्द है। उसके हासिल करने के लिये जतन और कोशिश करना चाहिए।

३ — जो कि जिज्ञासु और मुतलाशी है, वह ज़रूर खोज और तलाश करेगा कि निर्मल चैतन्य देश कहाँ है, कौन उसका रास्ता है, किस सवारी के ज़रिये से चलना होता है और कहाँ चलने वाला है। जिस मत में इसका निर्णय नहीं है, वह झूठा है। संत फ़रमाते हैं कि रास्ता घट में है। जैसे जागृति से स्वप्न और सुषुप्ति में जाते हैं, मगर वहाँ ग़ाफ़िल हो जाते हैं, ऐसे ही अभ्यास में बा-इख़्तियार और बा-होश उसी रास्ते चलना होता है। शब्द की धार को पकड़ो। गुरू स्वरूप का ध्यान करो। नाम का सुमिरन करो। यही संत मत की जुक्ति है। सहज योग है। हठ योग नहीं है। बेशक गृहस्थ आश्रम में रहो, अपना रोज़गार पेशा करो। जंगल में जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। सिर्फ़ चित्त की वृत्ति को मोड़ो और जक्त की बासना को छोड़ो।

बचन १०

तवज्जह

१ — जहाँ तवज्जह है, वहाँ रस है और जहाँ तवज्जह नहीं है, वहाँ रूखा फीकापन है।

२ — तवज्जह लगने से कार्रवाई प्यारी मालूम होती है और नहीं लगने से भारी हो जाती है, जैसे जुवारी

शराबी और तमाशबीन होते हैं, इस क़दर तवज्जह उनकी अपने काम में लग जाती है कि खाना पीना पेशाब पाख़ाना तक भूल जाते हैं और जब उस कार्रवाई के ख़तम होने का वक़्त आता है, तब यही चाहते हैं कि ख़तम न होवे, और भी ज़्यादा वक़्त तक चले और वाक़ई उसको छोड़ते रंज और अफ़सोस उनको होता है। परमार्थियों का क्या हाल है? अभ्यास में बैठते ही घड़ी सामने रख लेते हैं। तीन मिनट में आँख खोलते हैं और समझते हैं कि तीन घण्टे हुए और बड़ा बोझ मालूम होता है और तबीयत घबराने लगती है। सबब यह है कि तवज्जह नहीं लगती है। जैसे जुवारी शराबी और तमाशबीन को उनका काम ख़तम होने पर रंज और अफ़सोस होता है, वैसे परमार्थी को सतसंग और अभ्यास ख़तम होने पर जब रंज अफ़सोस होवे, तब समझना चाहिए कि मन इन्द्रियाँ जो बाहर भोगों में रस लेती थीं, वह अब उलट कर अन्तर में रस लेने लगीं।

३ — देखा देखी हिरसा हिरसी और ज़बरदस्ती का काम नहीं है। प्रेम, उमंग और उत्साह से परमार्थ बनता है। अगर भाव हो सेर भर, तो कार्रवाई पाव भर करनी चाहिए। और जो भाव है पाव भर और कार्रवाई करेगा सेर भर, तो जल्दी टूट जायगा और छोड़ देगा।

४ — तवज्जह जैसी जुवा खेलने में जुआरियों की लगती है, वैसी किसी की नहीं लगती है। जुआ खेलने के लिये जुआरी वाक़ई हाथ जोड़ते हैं, पाँव पड़ते हैं, अपना रुपया पैसा देते हैं कि कोई जुवा खेले। ऐसे ही चाट जब परमार्थ की लगे, तब यह मुस्तैदी के साथ कार्रवाई करेगा और कामयाब होगा।

सवाल — ख़याल और तवज्जह में क्या फ़र्क़ है?

जवाब — ख़याल मन का स्वरूप है और तवज्जह सुरत का स्वरूप है और वह ख़याल के परे है।

दृष्टान्त — अमेरीका में एक औरत खेत में काम करती थी। उसका बच्चा ज़मीन पर सोता था। इत्तिफ़ाक़ से उक़ाब आया, बच्चे को ले गया। औरत को मुहब्बत का ऐसा जोश आया कि बिना सोच विचार के उक़ाब के पीछे दौड़ी और इस क़दर बच्चे में उसकी तवज्जह लग गई कि उसको और कोई ख़्याल नहीं रहा और बे-तकल्लुफ़ ऊँची नीची जगहों पर हवा की तरह कोसों चली गई और आख़िर को एक ऊँचे पहाड़ पर चढ़ गई जहाँ कि बच्चे को उक़ाब ने जाकर रक्खा, वहाँ से उसको ले आई। जब ज़मीन पर उतरी तब कहने लगी, मेरा बच्चा, मेरा बच्चा कहाँ है। लोगों ने कहा बच्चा तो तेरी गोद में है। जब होश आया तब यक़ीन हुआ। मतलब यह है कि इस क़दर तवज्जह उसकी बच्चे में आगई थी कि ख़्याल भी नहीं गुज़रा कि क्या करती हूँ। इससे ज़ाहिर हुआ कि तवज्जह ख़्यालात के परे है।

बचन ११

चाह

१ — जब तक चाह की जड़ मौजूद है, तब तक आवागवन नहीं छूटता और वह किसी वक़्त ज़रूर अपना इज़हार करती है।

२ — जिस क़दर हो सके अपने चित्त की वृत्ति को संसार से हटाते रहना चाहिये। जनमान जन्म के कर्म फल और बासना इस के संग लगे हुए हैं। उसी अनुसार

भटकता और भरमता है और देह धारन करता है। यहाँ की आसा बासा जब दूर होगी और परमार्थ की तरफ़ चित्त मुख़ातिब होगा, तब इस जीव का गुज़ारा हो सकता है। नहीं तो जब तक चाह और बासना का तुख़्म मौजूद है, तब तक आवागमन नहीं छूटता और चाह ही के सबब से दुख सुख भोगता है।

तेरे मन में जो नहीं बासना तन संग भोग बिलास की।
तब कौन तुझको खेंचता कि तू जग की चोर सरा में आ।।
तेरी चाह दुख सुख रूप है तेरा मन ही काल और जाल है।
तेरी आस जग की पुकारे है कि तू फेर में तू व मैं के आ।।

३ — चाह की परख पहिचान स्वप्न में हो सकती है। वहाँ यह आज़ाद है। जो कुछ सच्ची हालत इस की है, स्वप्न में प्रकट होती है क्योंकि वहाँ कोई दाब यानी दबाव नहीं रहता। जब तक जाग्रत अवस्था में यहाँ समझ बूझ के साथ रोक टोक कर रहा है, तब तक इस की सचाई और सफ़ाई क़ाबिल ऐतबार नहीं है। स्वप्न में ज्यों की त्यों जो हालत है, उसका बे-तकल्लुफ़ इज़हार होता है। इसके सिवाय बीज रूप छिपी हुई चाहें अन्तर में धरी हुई हैं, जिनकी अभी इसको ख़बर भी नहीं है। मरने के बाद भी चाह और बासना इसके संग जाती है। जब कोई आदमी मरता है और उस वक़्त किसी खाने की चीज़ पर ख़्वाहिश करता है, वह ज़रूर उसको खिलाते हैं, इस ख़्याल से कि चाह उसकी संग न जावे, नहीं तो फिर जनम धरना पड़ेगा।

४ — मन रसों का रसिया है। यहाँ संसारी पदार्थों में इसको रस आता है, तब इस तरफ़ मुख़ातिब रहता है, ऐसे ही जब अन्तर में इसको चाट लगती है, तब परमार्थ की तरफ़ राग़िब होता है। जैसे यहाँ की चीज़ों से इन्द्रिय द्वारे जब सुरत की धार का मेला होता है, तब रस आता

है, इसी तरह अन्तर में जब सुरत का चैतन्य धार से संयोग होता है, तब अन्तर का रस आनन्द मिलता है। जुआरी और शराबी को जुए और शराब में इस क़दर रस आता है कि खाना पीना पेशाब पाखाना भी भूल जाता है। अगर परमार्थ में इस क़दर तवज्जह नहीं तो वह परमार्थ कैसा है? जिस में कि सरूर और आनन्द दिन दिन बढ़ता जावे, वही सच्चा परमार्थ है। तब रोज़-बरोज़ संसार से इसकी तवज्जह हटती जावेगी और परमार्थ में विशेष होती जावेगी। और फिर जैसे जुवारी या शराबी को जब ज़रूरत पड़ती है, तब अपना काम काज भी कर लेते हैं मगर चित्त उनका जुए या शराब में रहता है, ऐसे ही भक्त जन ज़रूरत के मुवाफ़िक़ अपना रोज़गार पेशा भी कर लेते हैं, मगर चित्त उनका अपने भगवंत में मशगूल रहता है।

५ — जैसे तन मन इन्द्रिय बुढ़ापे में शिथिल और ज़ईफ़ हो जाते हैं ऐसे ही भक्ति करने से चाह और बासना दुबली और कमज़ोर होती है, मगर जब तक जड़ उन की मौजूद है, तब तक क़ाबिल एतबार नहीं, फिर इसमें पत्ते और नई नई डालियाँ निकलती हैं और चाह हरी और सर-सब्ज़ हो जाती है, जैसे कि कितने ही ऋषि मुनियों का हाल हुआ था।

दृष्टान्त १ — श्रृंगी ऋषि अकेले बन में रहते थे। पवन का अहार करते थे और एक बार दरख़्त पर ज़बान मारते थे। राजा दशरथ के औलाद नहीं होती थी। वशिष्ठ जी जो कि उनके कुल के पुरोहित थे, उन्होंने कहा कि विधि पूर्वक यज्ञ क्रिया और हवन होगा, तब बेटा होने की उम्मीद हो सकती है और ऐसी क्रिया सिवाय श्रृंगी ऋषि के और कोई नहीं करा सकता है। राजा दशरथ का हुक्म हुआ कि जो कोई श्रृंगी ऋषि को

यहाँ लावेगा, उसको हीरे जवाहिर का थाल भर कर मिलेगा। एक वेश्या ने कहा, मैं ले आती हूँ। वह वहाँ गई, देखा कि ऋषि जी बड़ी समाधि में बैठे हैं। जिस दरख़्त पर कि ज़बान लगाते थे, वहाँ एक उँगली गुड़ की लगादी। ऋषि जी ने जब ज़बान लगाई, चाट लग गई। पहले एक दफ़ा ज़बान मारते थे, उस रोज़ दो दफ़ा मारी। दूसरे रोज़ तीन बार मारी। इसी तरह रस बढ़ता गया और ताक़त आने लगी। वह वेश्या जो छिपके बैठी थी, उसने हलुवा पेश किया, तब थोड़ा थोड़ा हलुवा खाने लगे, बदन जो दुबला था, वह पुष्ट होने लगा, ताक़त आई, माई पास थी, सब कार्रवाई जारी हो गई। दो तीन लड़के हुए। किसी बहाने श्रृंगी से वेश्या ने कहा, चलो राज दरबार में, यहाँ जंगल में लड़के भूखे मरते हैं। बिचारे उसके साथ हो लिये। दो लड़कों को दोनों कन्धों पर उठाया और एक का हाथ पकड़ा। पीछे वह माई साथ चली। इस दशा में राजा दशरथ के पास दरबार में पहुँचे और वहाँ क्रिया हवन वग़ैरा कराई। जब वहाँ किसी ने ताना मारा, तब होश आया। एक दम लड़कों को वहीं पटक के भागे और तब चेत आया कि माया ने लूट लिया।

रमैया की दुलहिन ने लूटा बज़ार।।टेक।।
सुर पुर लूटा नागपुर लूटा तीन लोक पड़ा हा हा कार।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे नारद मुनि के पड़ी पिछार।। १।।
श्रृंगी की मिंगी कर डाली पाराशर का उदर बिदार।
कनफूका चिदाकाशी लूटे योगीश्वर लूटे करत विचार।। २।।
हम तो बच गये स्वामी दया से शब्द डोर गह उतरे पार।
कहें कबीर सुनो भाई साधो इस ठगनी से रहो हुशियार।। ३।।

माया तो ठगनी भई ठगत फिरे सब देश।
जा ठग ने ठगनी ठगी ता ठग को आदेश।। १।।

माया ऐसी मोहनी मोहे जात सुजान।
भागे हूँ छोड़े नहीं भर भर मारे बान।। २।।
कबीर माया मोहनी जैसे मीठी खाँड़।
सतगुरु की किरपा भई नातर करती भाँड़।। ३।।
कबीर माया मोहनी भई अन्धियारी लोय।
जो सोते सो मूस लये रहे वस्तु को रोय।। ४।।
कबीर माया डाँकिनी सब काहू को खाय।
दाँत उखाड़े पापिनी जो संतों नेड़े जाय।। ५।।
नैनों काजल देय कर गाढ़े बाँधे केश।
हाथों मेंहदी लाय कर बाघिन खाया देश।। ६।।

दृष्टान्त २ — पाराशर ऋषि ने मछोदरी से नाव में भोग किया। उस गनिका ने कहा, अभी दिन है, लोग देखते हैं। उन्होंने अपनी सिद्धि शक्ति से रात का अँधेरा कर दिया। आकाश में बादल आ गये। फिर गनिका ने कहा, मेरे बदन से मच्छी की बदबू आती है। ऋषि ने बदबू को बदल कर ख़ुशबू कर दिया। नतीजा यह हुआ कि व्यास जी उस मछोदरी से पैदा हुए।

दृष्टान्त ३ — कोई महा ऋषि थे। वन में तपस्या करते थे। एक रोज़ माया स्त्री का रूप धारन करके उनके पास आई और कहा, मेरे पति को जंगल में शेर खा गया, अब मैं अकेली वन में डरती हूँ, दया करके रात को यहाँ रहने दो, सुबह को मैं चली जाऊँगी। उन्होंने कहा, अच्छा। और एक कोठरी में किवाड़ भीतर से बन्द कराके बैठा दिया और कह दिया कि अगर मैं भी आकर कहूँ खोलो तो भी किवाड़ मत खोलना। उसने कहा, अच्छा। ऋषि जी बैठे भजन करने तो ध्यान में वही माई सन्मुख आने लगी। उसका नक़्श हृदय पर पड़ गया था। बार बार उसी का रूप नज़राई पड़ने लगा। धार नीचे उतरी। भजन से उठ बैठे, आवाज़ दी, कुंडी खोलो। उसने कहा हम नहीं खोलेंगे, तुमने मना किया था, अपना बचन क्यों

तोड़ते हो। फिर बेचारे ऐसे काम बस हो गये कि छत तोड़ के कोठे में कूद पड़े। दूसरे रोज़ दरिया के पार उसको कंधे पर बैठा कर ले जाना पड़ा। उसने ख़ूब एड़ लगाई और कहा, बड़ा टर्रा घोड़ा था, इसके लिये मैंने लोहे की लगाम बनवाई थी, यह तो हाथ नहीं आता था, अब देखो मैं उसके सिर पर सवार हूँ। सुनते ही होश आया, तब माया रूपी माई को छोड़ के भागे।

दृष्टान्त ४ — मुछन्दरनाथ का ज़िक्र है कि एक रोज़ किसी ने कहा कि राज्य का रस और आनन्द बड़ा मीठा है। मुछन्दरनाथ ने कहा, अच्छा तजुरबा करना चाहिए। जोगी गति तो थी ही; दूसरे क़ालिब में अपनी रूह को प्रवेश करने की ताक़त रखते थे। एक राजा मरता था, उसकी देह में अपनी रूह को प्रवेश किया और अपने चेले गोरखनाथ को कह दिया कि भोग विलास में अगर हम भूल जावें तो तुम यह मन्त्र आके पढ़ना। ग़रज़ कि राजा जो मरता था, उठ खड़ा हुआ। रानी सब ख़ुश हुईं। एक बरस उनके संग भोग बिलास किया, मगर ख़ौफ़ था कि किसी वक़्त गोरखनाथ आ जायगा। इसलिये हुक्म दिया कि कोई कनफटा जोगी शहर में न आने पावे। राग सुनने का उनको बड़ा शौक़ था। गोरखनाथ गाना बजाना सीख कर गाने वालों के संग दरबार में गये और जब मंत्र पढ़ा, तब मुछन्दरनाथ को होश आया। फिर अपने पुराने चोले में आगये। ग़रज़ यह है कि भोग बिलास की चाह अन्तर में धरी थी, उसने अपना इज़हार किया।

दृष्टान्त ५ — गौतम की स्त्री पर राजा इन्द्र मोहित हुए। वह उनके हाथ नहीं आती थी। इन्द्र ने सोचा कि गौतम पिछली रात नदी में नहाने जाते हैं। चाँद को एक रोज़ हुक्म दिया कि तुम रात को बारह बजे के वक़्त जहाँ

कि तीन बजे निकलते हो निकलना। और मुर्गे को कहा कि तू बारह बजे रात को आवाज़ देना। दोनों ने ऐसा ही किया। गौतम धोखा खाकर बारह बजे उठे और माफ़िक़ दस्तूर के नदी को चले गये। इन्द्र बिल्ली का रूप धारन करके भीतर गौतम के घर में गए। जब गौतम लौट के आये तब सब हाल मालूम हो गया। चाँद को श्राप दिया कि तुमको कलंक लगेगा और अपनी स्त्री अहिल्या को श्राप दिया कि तू पत्थर हो जायगी। मुर्ग़े को कहा कि हिन्दू तुझ को अपने घर में नहीं रक्खेंगे और इन्द्र को श्राप दिया कि एक काम इन्द्री के बस तूने ऐसा अत्याचार किया, तेरे शरीर में हज़ार वैसी ही इन्द्रियाँ हो जायँगी।

दृष्टान्त ६ — इसी तरह नारद मुनि का हाल हुआ। उनको अहंकार हुआ कि हम इन्द्रीजीत हैं। विष्णु जी के पास जाकर कहा। विष्णु बोले, हम बड़े ख़ुश हुए। नारद जी लौटे तो देखा कि एक स्वयम्बर रचा है। उसमें शरीक हुए। ख़याल गुज़रा कि राज कन्या हमारे गले में हार डालेगी। कहने लगे कि हमारी तरफ़ तो देख। मगर उसने दूसरे के गले में हार डाला और उन पर तवज्जह भी न की। नारद जी को अपने सुन्दर स्वरूप का फ़ख़्र था। किसी ने वहाँ उनको आईना दिखलाया। देखा तो सुअर का मुँह हो गया है। बड़े शरमिन्दा हुए और नाराज़ हो के भाग गये।

दृष्टान्त ७ — शिवजी का भी यही हाल हुआ था। पार्वती ऐसी सुन्दर और मोहनी स्त्री थी। उनको छोड़ के मोहिनी स्वरूप माया का देखा, उसके पीछे दौड़े। जब देखा माया का चरित्र है, तब अपने इष्ट देव को श्राप दिया कि जैसे हम स्त्री के पीछे दौड़े हैं, वैसे ही तुम भी दौड़ोगे। इसी से त्रेता युग में राम अवतार हुआ। सीता के

पीछे बन बन दौड़ना पड़ा। ब्रह्मा का भी यही हाल हुआ। सावित्री उनकी बेटी थी। वह पीछे स्त्री हुई। इसीलिये ब्रह्मा की पूजा नहीं होती है।

६ — बाज़ वक़्त अभ्यास में अजीबोग़रीब तरंगें और चाहें नमूदार होती हैं और यह घबराता है कि क्या मामला है, पेश्तर तो मेरे में ऐसी चाह और बासना नहीं थी, अब कैसे नज़राई पड़ती है, लेकिन घबराना नहीं चाहिये, अन्तर में जो छिपी हुई चाहें धरी हुई हैं, वह प्रकट करके ख़ारिज की जाती हैं। जिस क़दर अभ्यास और गुरु स्वरूप का ध्यान करता है, उतनी ही मलीनता दूर होती है। जैसे छाज में नाज फटकने से कूड़ा करकट झाड़ा जाता है, ऐसे ही गुरू का ध्यान करने से गोया गुरू रूपी सूप से चाह और बासना रूपी कूड़ा करकट निकाला जाता है। जब तक चाह और बासना का बीज अन्तर में मौजूद है, तब तक वह ख़तरनाक और ख़लल-अंदाज़ है, क़ाबिल इतमीनान नहीं है। कहने का मुद्दा यह है कि चाह की जड़ जो अन्तर में मौजूद है, किसी वक़्त ज़रूर सर-सब्ज़ होती है।

चमरिया चाह बसी घट माहिं। गुरू अब कैसे धारें पायँ।।१।।
दुक्ख सुख नितही आवें जायँ।कर्म फल भोगत मन के माहिं।।२।।
शुद्धता सब ही भागी जायँ। प्रेम और भक्ति नहीं ठहरायँ।।३।।
विरह अनुराग निकासे जायँ। करूँ क्या कोई जतन अब नाहिं।। ४।।
बहुर फिर गुरुही लेहिं बचाय। नाम बिन करे न कोई सहाय।।५।।
करूँ अब सतसँग सरन समाय। शब्द में निस दिन लगन लगाय।।६।।
राधास्वामी कीन्ही दृष्टि झुमाय। चमरिया घट से भागी जाय।।७।।

चाह चमारी चूहरी, अति नीचन की नीच।
तू तो पूरन ब्रह्म था, जो चाह न होती बीच।।

काहू न मन बस कीना जग में काहू न मन बस कीना।। टेक।।
श्रृंगी ऋषि से बन में लूटे विषय विकार न जाने।
पठई नारि भूप दशरथ ने पकड़ि अयोध्या आने।। १।।
सूखे पत्र पवन भखि रहते पाराशर से ज्ञानी।
भरमें रूप देख गनिका को काम कन्दला बानी।। २।।
सोई सुरपति जा की नार शुची सी निस दिन ही सँग राखी।
गौतम के घर नार उरबसी निगम कहत है साखी।। ३।।
पारबती सी पतनी जाके ता का मन क्यों डोले।
खिलत भये छबि देख मोहिनी हा हा करके बोले।। ४।।
एकै नाल कँवलसुत ब्रह्मा जग उपराज कहावे।
कहें कबीर इक मन जीते बिन जिव आराम न पावे।। ५।।

बचन १२

जिसको सच्ची चाह मालिक से मिलने की है, उसको देर सबेर वह ज़रूर दरशन देता है।

१ — जो कोई भोला भाला है और हृदय में सच्ची चाह मालिक से मिलने की रखता है, उस के सामने कितने ही झगड़े बखेड़े उलझेड़े आवें, कोई भी उसको रोक नहीं सकता है, फ़ौरन दया की धार उसकी रक्षा और सम्हाल के लिये नाज़िल होती है। अगर कोई सच्चा मालिक है तो जो कोई सचौटी के साथ हृदय से पुकारेगा, वह उसको एक रोज़ ज़रूर सुनेगा। जैसे बच्चा अपनी मैया को पुकारता है, तो मैया फ़ौरन उसको दूध पिलाती है, वैसे ही चरन धार अपने बच्चे को अमृत पिलाने के लिये हर दम तैयार है। सिर्फ़ सच्ची चाह से पुकारने की देर है।

खोज री पिया को निज घट में।
जो तुम पिया से मिलना चाहो, तो भटको मत जग में।।

२ — जहाँ भक्ति है, वहाँ भगवन्त हैं। भक्त जन उलटी सुलटी हालत में मालिक की मौज पर राज़ी रहता है और समझता है कि जो कुछ होता है, मालिक की मौज से होता है, मुझ में कुछ ताक़त नहीं है और अपने को नीच और निबल समझता है। इस तौर से कार्रवाई करने के लिये संस्कार की ज़रूरत है। संस्कार से यह मतलब है कि जैसे भूसा तैयार है, सिर्फ़ चिनगी लगाने की देर है। बीज धरा है, सिर्फ़ बोने की देर है। और जो हृदय पत्थर सा कड़ा है यानी असंस्कारी है तो उसको मुलायम करना, बीज डालना, इसमें अलबत्ता अरसा लगता है और गुरू के संग की भी ज़रूरत है।

जो मन करड़ा पत्थर होवे। गुरु से मिलत जवाहिर होवे।।

जो मालिक का चहे दीदार। जा तू बैठ गुरू दरबार।।

३ — सतगुरु की मौजूदगी में जो कुछ उनकी सेवा की जाती है वह निज सेवा राधास्वामी दयाल की है और जब देह स्वरूप में सतगुरु न मिलें, तब उनके साधू और प्रेमी जनों की सेवा करना, यह भी राधास्वामी दयाल की सेवा में दाख़िल है।

४ — सतगुरु के गुप्त होने में भी फ़ायदा है क्योंकि प्रेमी जन आपस में मिलकर नये नये नुक़ते निर्णय करते हैं और प्रेमी जन के संग से प्रेम भी पैदा होता है। जब तन मन धन अर्पण करेंगे, तब मालिक का दर्शन होगा।

दृष्टान्त — एक भक्त था। उसको मालिक के दर्शन की बड़ी अभिलाषा थी। उसने प्रण किया कि जो कोई मुझको मालिक का दर्शन करावेगा, उसको तन मन धन सब अर्पण करूँगा। एक चोर था। उसने आकर उससे कहा, मैं तुमको मालिक का दीदार कराऊँगा। वह बेचारा सुन कर बहुत ख़ुश हुआ। अपना असबाब वग़ैरा जो कुछ

उसके पास था, बेच कर रुपया इकट्ठा किया। चोर ने कहा सब रुपयों की एक पोटली बाँध कर, उठाके बाहर एक खुले मैदान में ले चलो। जब शहर के बाहर एक कुएँ पर पहुँचे, तब चोर ने उस से कहा, इस कुएँ के अन्दर झाँको तो तुमको दर्शन मिलेगा। भक्त जन बड़ी ख़ुशी और उमंग के साथ कुएँ में झाँकने लगा तो चोर ने धक्का देकर उसको गिरा दिया, पर मालिक की दया ऐसी हुई कि झटका लगने से उसकी सुरत खिंच गई और अन्तर में दर्शन मिला। चोर उसका धन लेकर चलने लगा। मालिक अन्तरजामी उसी वक़्त घोड़े पर सवार का रूप धर कर प्रकट हुआ और उस चोर को पकड़ के कुएँ के पास ले गया और कहा कि जिसको तूने गिराया है, उसे आवाज़ देकर पुकार। भक्त जन उसकी आवाज़ पहिचान कर निहायत मगन हुआ और हाथ जोड़ कर प्रणाम करने लगा। मालिक ने कहा, यह तो चोर है तुमको कुएँ में गिराके तुम्हारा धन इसने छीन लिया है, इसको तुम प्रणाम करते हो। भक्त जन बोला, यह मेरा गुरू है। अगर यह न मिलता तो मालिक का दर्शन भी न होता। ग़रज़ कि भक्त जन बाहर निकाला गया और दोनों के अन्तर में प्रेरणा हुई कि मालिक सवार का रूप धारन करके आया है। और दोनों को हुक्म हुआ कि फ़लाँ जगह जाकर पूरे गुरू का सतसंग करो, तब उद्धार होगा। कहने का मुद्दा यह है कि जिसको सच्ची चाह मालिक से मिलने की है, उसको देर सबेर ज़रूर दर्शन होता है और जो कर्म बाक़ी रह जाते हैं, वह सतसंग और अभ्यास कराके साफ़ कर दिये जाते हैं, बाद इसके मालिक अपने देश यानी निरमल चैतन्य धाम में बासा देता है।

* * * * * *

बचन १३

सुरत की धार की कार्रवाई

१ — सुरत की धार किस तरह देह में कार्रवाई करती है और गुप्त तौर पर धीरे धीरे उसकी चैतन्यता विशेष होती जाती है, इसकी ख़बर नहीं पड़ती है। इस वास्ते धीरज के साथ सतसंग और अभ्यास करते रहना चाहिये और उल्टी सुलटी हालत में मौज से मुवाफ़क़त करनी चाहिये। एक रोज़ सब का कारज बन जावेगा यानी उद्धार हो जावेगा।

२ — सुरत मन की तीन धारें देह में फैल रही हैं, दो आँखों में, उनमें समझ बूझ और ज्ञान है, और तीसरी पीठ में जहाँ कि रीढ़ की हड्डी है, वहाँ से आती है। इन तीनों धारों को इंगला पिंगला और सुखमना कहते हैं। दो धारें जो आँखों में आ रही हैं, वह गोया दोनों कर यानी हाथ हैं। इनको उलटा कर तीसरे तिल के परे जो चैतन्य धार आ रही है, उसको स्पर्श करना, यही चरन को छूना है और यही सच्ची बिनती या बन्दगी है।

करूँ बीनती दोउ कर जोरी, अर्ज़ सुनो राधास्वामी मोरी।।

सिर्फ़ बाहर से हाथ जोड़ने से मतलब नहीं है। बीच की जो मुख्य धार है, उसने पिंड की रचना की है और चक्र बनाये हैं और पिंड की कार्रवाई इसी धार के वसीले से होती है। देह में किस तरह उसकी कार्रवाई होती है, इसकी ख़बर अभी नहीं पड़ती। जब छठे चक्र में रसाई होती है, तब ख़बर पड़ती है।

३ — जैसे कोई बीमारी होती है तो पहिले से आहिस्ता आहिस्ता गुप्त मसाला इकट्ठा होता जाता है,

जिसकी इसको ख़बर नहीं पड़ती, जब मौक़ा आता है तब फ़ौरन वह बीमारी प्रकट हो जाती है, मसलन तपेदिक़ की बीमारी है कि आहिस्ता आहिस्ता बदन और ख़ून सूखता जाता है और सुरत सिमटती जाती है, जिसकी बीमार को ख़बर नहीं पड़ती, वैसे ही गुप्त तौर पर सुरत की ताक़त विशेष होती जाती है, जब मौक़ा आता है, तब मालूम होता है। यहाँ नीचे घाट पर अगर प्रकट की जावे तो यह उसको यहाँ ही बाहरमुखी करतूत में ख़र्च कर डाले, इसलिये इसको ख़बर भी नहीं पड़ती और अपने को बिल्कुल ख़ाली और रूखा फीका देखता है, मगर जब सुरत के घाट पर इसकी पहुँच होती है, तब विशेष चैतन्यता की और राधास्वामी दयाल के चरनों में प्रीति प्रतीत की ख़बर पड़ती है और तब पिंड की भी कैफ़ियत इस को मालूम होती है कि किस तरह मध्य की धार कार्रवाई करती है।

४ — जैसे बच्चा है कि दिन दिन यहाँ की ख़ुराक पाकर पुष्ट होता है और बढ़ता जाता है और काम अंग भी जागता जाता है, जिसकी इसको ख़बर नहीं पड़ती, जब जवानी आती है, तब काम अंग प्रकट होता है, वैसे ही सतसंग और अभ्यास करने से इसकी चैतन्यता विशेष होती जाती है। जब भक्ति की तरुण अवस्था आती है, तब वह ज़ाहिर होती है। जो कि राधास्वामी दयाल की सरन में आये हैं, सब पर ऐसी बख़शिश होगी और हो रही है। गुप्त तौर पर सबकी तरक़्क़ी और सम्हाल बराबर जारी है। कर्म का चक्कर अलबत्ता भोगना पड़ता है सो इसमें भी दया और रक्षा शामिल है। किसी को घबराना नहीं चाहिए। मालिक आप निज रूप से सब की सम्हाल कर रहा है।

५ — परदों के भीतर जब सुरत धसेगी, तब चैतन्य धार से मेला होगा और प्रेम प्रतीत जागेगी व बढ़ेगी। अभ्यास से यह परदे तोड़े जायँगे। बिला नाग़ा अभ्यास और सतसंग करते रहना चाहिये और दया मेहर का भरोसा रखना चाहिये। धीरे धीरे काम होता है। सुरत की चाल निहायत ही तेज़ है। जो सूरज चाँद तारागन यहाँ नज़राई पड़ते हैं, सब तीसरे तिल के नीचे हैं। ज्योतिषी कहते हैं कि ऐसे भी तारे हैं, जिनकी रोशनी तीन सौ बरस में यहाँ पृथ्वी पर आती है और रोशनी की चाल ऐसी तेज़ है कि एक सेकंड में एक लाख पचासी हज़ार मील तै करती है और जितनी कि मायक शक्तियाँ हैं, उन सब से बिजली की चाल ज़्यादा तेज़ है, फिर सुरत की चाल तो अंधाधुन्ध है, जिस का कोई हद व हिसाब नहीं है, मगर उस की ख़बर नहीं पड़ती है।

६ — जैसे रेल गाड़ी पर सवार हो और सब दरवाज़े बंद हों तो सिर्फ़ गाड़ी की घनघनाहट सुनाई देती है और चाल की ख़बर नहीं पड़ती, वैसे ही अभ्यासी की चाल चलती है। सूरज चाँद अगर नहीं दिखलाई दें तो कुछ हर्ज नहीं है, बल्कि बड़ी दया है कि कुछ नहीं दिखाई देता। जो कि सच्चे भक्त और ऊँची सुरतें हैं, उनकी ऐसी हालत होती है यानी दर परदे चढ़ाई होती है। जब माया देश के परे सत्तलोक में रसाई होती है, तब सब पट खुल जाते हैं। जो कुछ रचना की कैफ़ियत है, वह कुल नज़राई पड़ती है और एक दम भक्काटा हो जाता है।

७ — अकसर सतसंगी शिकायत करते हैं कि तरक़्क़ी नहीं होती है। उन को चाहिये कि औरों की हालत देखें कि किस क़दर बदली हुई है। तरक़्क़ी बराबर होती रहती

है और मसाला जैसे इकट्ठा होता है, वैसे चैतन्यता इकट्ठी होती जाती है, जब वक़्त आता है तब अन्तर में चढ़ाई होती है। आँखों में जो धार आ रही है, वह अभ्यास में सिमटती है। मध्य की जो धार है, वह नहीं सिमटती। सर्व अंग करके जब चढ़ाई होती है या जब मौत होती है, तब बीच की धार में हलचल होती है। यानी जब वह सिमटती और खिंचती है, तब मौत हो जाती है। जब अभ्यास पूरा होगा यानी चैतन्य विशेष होगा और बीच की भी धार सिमटेगी और सुरत के घाट पर इस की रसाई होगी, तब पिंड का सब भेद ज़ाहिर होगा और सब चक्रों की कैफ़ियत मालूम होगी।

पिंड का सब भेद पोशीदा मुझे ज़ाहिर हुआ।
मेहर से पूरे गुरू के काम मेरा बन रहा।।
सुर्त ने जब धुन को पकड़ा आसमाँ पर चढ़ गई।
हो गई क़ाबिल वहाँ पर फिर न कोई ग़म रहा।।

८ — जब इस को मालूम होगा कि करता धरता राधास्वामी दयाल हैं और जिस तरह चाहते हैं, नाच नचा रहे हैं और जो कुछ हो रहा है, उन्हीं की मौज से हो रहा है, बिना उनकी मौज के कुछ नहीं होता है, तब उलटी सुलटी हालत जो कुछ होगी, उस में मौज से मुआफ़क़त करेगा और राज़ी रहेगा बल्कि शुकराना अदा करेगा और अपना बल पौरुष और बुद्धि को छोड़ कर सर्व अंग से सरन लेगा। जब बल हारेगा, तब बलिहार होगा। बलिहार से मतलब ही यह है कि बल का हारना। जतन करते रहना चाहिये। जैसे संसार में जतन करते हैं, वैसे ही परमार्थ में जतन ज़रूर करना चाहिये। दुखी रक्खें, चाहे सुखी रक्खें, जिस तरह और जिस हालत में रक्खें, वही ठीक और दुरुस्त है और उसीमें नफ़ा है। उलटी सुलटी हालत जो कुछ होवे उसमें राज़ी रहना चाहिये। जल्दी का काम नहीं है। अगर जल्दी में यह वहाँ पहुँचाया भी

जावे तो फिर नीचे गिर पड़ेगा क्योंकि मसाला धरा हुआ है। इस लिये धीरज के साथ कार्रवाई करते रहो। राधास्वामी दयाल हैं, एक रोज़ सब का बेड़ा पार करेंगे।।

बचन १४

अभ्यास का मतलब क्या है

१ — सुमिरन ध्यान भजन और पोथी का पाठ इन चारों युक्तियों का मतलब एक ही है और वह यह है कि सुरत जो देह में फैली हुई है, उस को समेट कर तीसरे तिल में प्रवेश करना और ऊपर से जो विशेष चैतन्य धार आ रही है, उस को पकड़ के अंतर में चलना। सुरत से सुमिरन करने से जिस वक़्त कि सिमटाव होगा, फ़ौरन सुरत तीसरे तिल में धसेगी। शब्द आप से आप गाजने लगेगा और रूप दरसेगा। यह सहज जुक्ति है और राधास्वामी परम मन्त्र है।

२ — स्वरूप का ध्यान बे ठिकाने न होवे। गुरु स्वरूप को एक ठिकाने यानी तीसरे तिल पर जमा कर ध्यान करना चाहिये। जिस वक़्त सिमटाव होगा, फ़ौरन शब्द गाजेगा और स्वरूप दरसने लगेगा।

३ — शब्द को इस तरह सुनना चाहिये जैसे कोई दूर से आवाज़ आती है तो कान लगा के यानी चित्त देकर उसको सुनते हैं, ऐसे ही अंतर में शब्द को सुनना चाहिये। शब्द अभ्यास के वक़्त स्वरूप का भी ध्यान करने से चित्त एकाग्र नहीं रहेगा। इसलिये स्वरूप का ध्यान उस वक़्त मुल्तवी करना चाहिये। लेकिन अगर स्वरूप का ध्यान पक गया हो तो फिर अभ्यास के वक़्त

गुरु स्वरूप का ध्यान करने में हर्ज नहीं है बल्कि मदद मिलेगी। जब तरंगें उठें, तब ध्यान और सुमिरन करना चाहिये।

४ — सतगुरू के सन्मुख चित्त लगा के पाठ सुनने या किसी ऊँचे मुक़ाम पर चित्त लगा के पाठ सुनने से भी वही फ़ायदा होता है जैसा कि सुमिरन ध्यान या शब्द के अभ्यास से होता है। सुरत की धार यानी तवज्जह की धार जो कि अंतरगत है, उसको संकल्प विकल्प वाली धार में यानी काल की धार में बहने नहीं देना चाहिये। सुमिरन ध्यान से तरंगों को दूर करना चाहिये। जब संकल्प विकल्प वाली धार का ज़ोर कम होगा, तब तवज्जह एकाग्र होगी।

५ — इस का इलाज यह है, कम खाना और दुख तकलीफ़ बीमारी तंगी वग़ैरा का होना। जैसे गरमी में रोशनी है, पर बग़ैर रगड़ने के रोशनी प्रकट नहीं होती, वैसे ही तवज्जह की धार मन की धार के अन्तरगत है, पर जब तक दुख तकलीफ़ भींचा भाँची कूटा पीसी और आधे पेट रहने का रगड़ा इस पर नहीं दिया जायगा, तब तक वह तवज्जह की धार इस से न्यारी नहीं होगी यानी तब तक मन जो सुरत को निगल गया है, उसे नहीं उगलेगा।

६ — तीसरा तिल गोया जंतरी है। उसमें पैठना तब होगा, जब तन तोड़ा जायगा और मन पीस कर महीन हो जावेगा —

तन तोड़त मन अकुलाना। क्या बरन बताऊँ जंतरी।।

७ — अगर कोई चाहे कि परमार्थ भी करता रहूँ और स्वार्थ भी अच्छी तरह से बनता रहे, तो यह नहीं हो सकता :—

दुनिया को चाहे तू और दीदार को।
यह है मुशकिल अन-समझ है यार तू।।

हम ख़ुदा ख़्वाही व हम दुनिया ए दूँ।ई ख़यालस्तो मुहालस्तो जुनूँ।।

८ — अगर कोई दिन रात अभ्यास करे और कुछ दुनिया का काम काज न करे तो उसमें भी ज़रूर हर्ज और नुक़सान होगा क्योंकि सुरत की जब चढ़ाई होती है, तब उसके संग ख़ून वग़ैरा फ़ासिद मसाला भी जाता है, उस को अगर बाहर का स्थूल काम काज करके नहीं झाड़ेंगे तो वह अन्तर में ऊपर रह कर ज़रूर फ़िसाद मचावेगा। इसी सबब से संतों ने तन की सेवा क़ायम की है और गृहस्थ आश्रम में रहना रवा रक्खा है। सिर्फ़ संसार की तरक़्क़ी की चाह अन्तर में न होनी चाहिये बल्कि चित्त में सच्चा बैराग और चरनों का अनुराग होना चाहिये।

बचन १५

धीरज और गम्भीरता

१ — जिसकी सुरत जागी हुई है, वही सकारी अंगों में बरताव कर सकता है।

२ — धीरज और गम्भीरता की परमार्थ में बड़ी ज़रूरत है। लड़कपन, चोचलापन, नख़रेबाज़ी, परमार्थ में मुज़िर और हारिज हैं। बाहर में जो चंचल है, वह अन्तर में कैसे थिर हो सकता है? चाहिये कि तन मन दोनों थिर होवें। तब यह घट में पैठ सकता है।

तन थिर मन थिर बचन थिर सुरत निरत थिर होय।
कहें कबीर इस पलक को कल्प न पावे कोय।।

३ — बाज़ी क़ौम की क़ौम चंचल होती है, जैसे अंगरेज़ हैं कि ज़रा भी उन से चुप करके बैठा नहीं जाता, कुछ न कुछ अंग हिलाते रहते हैं। ऐसे लोगों से संत मत का अभ्यास भला किस तरह बन सकता है? जब तक चंचलता और चपलता चित्त में है, तब तक भटकता और भरमता रहता है। बहिरमुख धार की कार्रवाई जब कम होगी, तब अन्तरमुख वृत्ति और सतोगुनी सुभाव होगा और सबर और धीरज के साथ उसका बरताव होगा।

४ — बाज़े ऐसे तुनुक-मिज़ाज होते हैं कि ज़रा सा मिज़ाज के ख़िलाफ़ होता है तो बिगड़ जाते हैं और भड़क उठते हैं। चाहिये था कि सब्र और धीरज के साथ बरदाश्त करते और मालिक की मौज समझ कर उस से मुआफ़क़त करते, मुफ़्त अपने को ज़ेरबारी और तकलीफ़ में डालते हैं, मगर बहुतेरा समझाओ बुझाओ, कभी मानते ही नहीं, ख़ून में उन के फ़िसाद भरा हुआ है। कहने का मुद्दा यह है कि चंचलता और चपलता, स्थूल और सूक्ष्म, दोनों मसले और रगड़े जायँगे, उलटी सुलटी हालत करके और अभ्यास करा के इस का मन निर्मल और निश्चल किया जायगा, वरना अन्तर में ज़रा भी नहीं ठहर सकता और इन्द्रिय द्वारे भटकता और भरमता रहेगा। सम दम का घाटा असल में है। तन और इन्द्रियों का रोकना इस को सम कहते हैं और मन के रोकने को दम कहते हैं।

चंचल चित चपल मन नित जग में भरमावत।।

५ — बुर्दबारी और गंभीरता भक्त जन का ज़ेवर है। अकसर जो कि बड़े ख़ानदान के हैं, उनके लड़कों में भी बचपन से बुर्दबारी और गंभीरता नज़राई पड़ती है। इसी तरह सुरत भी सत्तपुरुष की अंस है, चाहिये कि अपने

कुल की लाज करे, मन के संग न भरमे और न भटके। अगर कोई बड़े ख़ानदान का लड़का चण्डूबाज़, जुआरी और शराबियों के संग जाकर बैठे तो किस क़दर बुरी बात समझी जाती है, वैसे ही सुरत तन मन और इन्द्रियों के संग ख़राब हो रही है। जब तक उन से अलेहदगी नहीं होगी, तब तक उलटी सुलटी हालत में दुखी होगी और उसका रूप हो जावेगी।

६ — जिसका संस्कार यानी भाग नहीं है, वह चाहे सतसंग में हो, ख़्वाह पास रहता हो, कुछ नहीं होता है। जहाँ हुज़ूर साहब रहते थे, उस गली में बहुतेरे रहते थे। भाग नहीं था, ख़ाली रह गये। और जो कि सतसंग में रहते हैं, वह सतसंग की झटक नहीं झेल सकते। तुलसी साहब ने कहा है —

सतसँग करना मन तोड़ सरन संतन की।
अन्तर अभिलाषा लगी रहे चरनन की।।

ज़बर जेठ की रीति करे कोई किंकर जब होवे।
मन के विषम विकार काढ़ के तुलसी सब खोवे।।
भर्म तज भक्ति भजन करना।
मन मूरख को बाँध पकड़ कर जीवित ही मरना।।
निकल घट न्यारी होय फटके।
हर दम पिया की पीर दरस बिन मन मोरा भटके।।

मगर करिये क्या, जेठ की तपन कोई तपने नहीं देते हैं। जब तोड़ फोड़ की जाती है, तब संसारी सहारा और मदद का आसरा और ओट लेते हैं और भागने को तैयार हो जाते हैं।

७ — उलटी सुलटी हालत में उलझन का आना और मुख़ालिफ़त करना परमार्थ के ख़िलाफ़ है। इस से ज़ाहिर होता है कि अभी विरोध के घाट पर बैठा हुआ है।

जिस क़दर बन पड़े, उलझन के एवज़ सुलझन करनी चाहिये।

अपने उरझे उरझियाँ दीखे सब संसार।
अपने सुरझे सुरझियाँ यह गुरु ज्ञान विचार।।

८ — बंधन भारी है। इसलिये उलटी हालत में घबराता है। जो कहीं बरदाश्त करने की आदत डाले, धीरज और गंभीरता के साथ झेले और समझौती ले लेवे कि इस में फ़ायदा है, तो बंधन ढीले होंगे, आपा दूर होता जायगा और जिस जानिब से कि उलटी हालत पैदा होती है या जो इस के ऐब ज़ाहिर करता है, उसका शुकरगुज़ार होगा और उसको अपना हितकारी जानेगा।

मेरी प्यारी सहेली हो, दया कर कसर जता दो री।

९ — जब धीरज के साथ बरदाश्त करने की आदत पड़ती है, तब अगर कोई तान और तंज़ के साथ कहता है तो भी प्यारा लगता है और इससे दीनता चित्त में आती है। लेकिन ऐसा न होना चाहिये कि बाहर बरदाश्त करे और अन्तर में ज्वाला की आग जलती रहे। पर जो कि सच्चे हैं, वे अन्तर और बाहर यकसाँ होते हैं।

१० — अपनी तारीफ़ को यह मन बहुत ही पसन्द करता है। संसारी लोग कुप्पे जैसे फूल जाते हैं और जो भक्त हैं मगर कच्चे हैं, वह रो देते हैं यानी डरते हैं और अपने को बचाते हैं और जो साध महात्मा हैं, वह सावधान रहते हैं यानी उनमें न रग़बत है, न नफ़रत है। तारीफ़ ख़्वाह निन्दा का उन पर असर नहीं होता। मन पर दाब होना मुफ़ीद है। स्त्रियाँ जो स्वतंत्र यानी ख़ुद-मुख़्तार हैं और लड़के जो कि परतंत्र नहीं हैं, वह अक्सर मुजस्सिम बद-तमीज़ और मिस्ल बन्दर के होते

हैं। चाहिये कि उन पर ताड़ मार होती रहे। इससे मन ढीला होता है और चंचलता छोड़ता है।

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, यह सब ताड़न के अधिकारी

११ — जैसे नाना प्रकार के लोग होते हैं, ऐसे भाँति २ के मन हैं यानी सब का मन अलेहदा है और वक़्तन फ़वक़्तन पृथक पृथक सूरतें नज़राई पड़ती हैं, मसलन किसी में काम, किसी में क्रोध वग़ैरा अंग ज़बर होता है और मौक़े पर नमूदार होता है। क्रोधी के चेहरे और दिमाग़ पर ख़ून का ग़लबा होता है, इसलिये चेहरा लाल नज़राई पड़ता है और जिस में सतोगुनी अंग मौजूद है, उसके चेहरे पर मालिक का नूर झलकता है।

१२ — कहने का मुद्दा यह है कि जिसकी सुरत जागी हुई है, उसकी बोली कोमल, हिरदा सीतल, दयावान धीरजवान और गहिर गंभीर होता है, किसी से बैर बिरोध नहीं रखता क्योंकि उसकी निगाह और रुख़ सुरत पर है, मन माया यानी ख़ोल पर नहीं है। कुमत उसकी दूर होती है और सुमत जागती है, और पहिले जैसे संसारी अंगों में वृत्ति उठती थी यानी चाह होती थी, वैसे अब सुमत रूपी अंगों में बरताव करने की हृदय में चाह उठती है। पहिले तो समझौती से सील, छिमा, संतोष, दया, दीनता, बरदाश्त, धीरज और गंभीरता के साथ बरताव करता है। मगर जब सुरत जागती है, तब न सिर्फ़ समझौती याद करके सकारी अंगों में बर्तता है, बल्कि उसके अन्तर में यही चाह उठती है कि सील छिमा और धीरज से बरताव करूँ।

तन नगरी बिच बजत ढँढोरा। भागे चोर ज़ोर भया थोड़ा।।
सील छिमा आय थाना गाड़ा। काम क्रोध पर पड़ गया धाड़ा।।

* * * * * *

बचन १६

परमार्थ में दुख तकलीफ़ और उलटी सुलटी हालत का होना निहायत ज़रूरी है और इसमें दया है

१ — मुसीबत में निज दया है। इससे निर्णय करने की शक्ति जागती है और दुनिया की जो असली कैफ़ियत है, वह मालूम होती है और उस का दुखदाई हाल देख कर नफ़रत आती है और मालिक के देश में चलने की सच्ची चाह हिरदे में पैदा होती है, तो जिस पर मालिक दया फ़रमाता है, उस पर उलटी सुलटी हालत पैदा करके उसके मन को ज़िच बिच करता है और यहाँ की चीज़ों और भोगों से हटाता है। अगर कोई अभ्यास भी करता है और उलटी सुलटी हालत उस पर नहीं गुज़री है तो वह अभ्यास कूड़ा है, उससे जो असल मतलब इसको दुनिया से नफ़रत पैदा कराने का है, वह नहीं होता, बल्कि अभ्यास में थोड़ा बहुत रस और आनन्द हासिल करके और कुछ शान्ति पाकर जहाँ का तहाँ रह जाता है। इससे मालूम हुआ कि दुख मुसीबत और उलटी सुलटी हालत का होना निहायत ही ज़रूरी है।

२ — जब जब मालिक दया फ़रमाता है, तब दुख और तकलीफ़ देता है। इस से उसको अपने अभ्यास का नतीजा भी मालूम होता है कि किस क़दर बंधन ढीले हुए हैं और आया दुख तकलीफ़ के वक़्त मुस्तैद होता है या नहीं, इसकी परख होती है। बग़ैर उलटी सुलटी हालत और दुख तकलीफ़ के न अभ्यास दुरुस्ती से बनेगा और न मन की गढ़त और सफ़ाई होगी। जब तक मन पर भींचा भाँची नहीं होगी तब तक इसमें जो छिपी हुई

मलीनता धरी हुई है, वह दूर नहीं होगी। जब यह मन दुखी होगा, तब संसार से उपराम होगा और मालिक के देश में चलने की सच्ची चाह पैदा होगी। इसलिये मालिक दया करके उमूमन जीवों को दुख और मुसीबत देता है और जो कि बड़भागी हैं, उन को विरह और तड़प देता है। पर ऐसे कोई बिरले संस्कारी होते हैं, जिन को विरह की बख़्शिश होती है, उन का तो गोया काम बन गया।

३ — असल में जो दुख होता है, वह अक्सर मानन का है। जब इस को समझौती आ जाती है कि दुख तकलीफ़ में फ़ायदा है, तब जो क़ुदरती चोट लगती है, मसलन तन में जिस में कि इसका बन्धन है तो उस को ब-दरजे लाचारी झेलता है। और तकलीफ़ मानन की है। जैसे दुनिया के सामान का न होना, जिसको यह सहज में हटा सकता है, इस तरह की समझौती लेने से कि जो कुछ यहाँ का सामान है, सब नाशमान है, सिवाय मामूली खाने पीने के और कुछ काम का नहीं है, यह समझ कर ज़रूरत के मुआफ़िक़ कारोबार और जतन करता है और सब मौज पर छोड़ देता है, इससे भक्त जन बहुत से दुक्खों से बच जाता है और उस पर उन का असर नहीं होता। ऐसा नहीं है कि हमेशा इस को दुख और तकलीफ़ होती रहे और दुनिया का सामान कुछ न मिले, जो ज़रूरी सामान है वह तो देते हैं, मगर जो सामान कि परमार्थ में हारिज है, वह खोस लेते हैं या असल में नहीं देते हैं। भक्त जन कहता है:—

साहिब एता माँगहूँ जा में कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साध न भूखा जाय।।

४ — कहने का मुद्दा यह है कि जिन चीज़ों में इसका बंधन यानी पकड़ है, वहीं से इसको छुड़ाने के

लिये राधास्वामी दयाल दुख और तकलीफ़ देते हैं सो इसी को निज दया समझना चाहिये।

५ — तजरुबा मुक़द्दम है और जो और कार्रवाई है, वह लवाज़मा और जतन है। अगर समझौती है और अभ्यास नहीं है या बात चीत सुन ली है और तजरुबा नहीं है तो कुछ नहीं है यानी ज़बानी कहना या बात चीत सुन कर समझौती लेना कि दुख तकलीफ़ में फ़ायदा है, यह गोया ऐसा है जैसा बही में जमा खर्च का होना और हाथ में कुछ नहीं, मगर वाक़ई दुख तकलीफ़ की हालत जो इस पर गुज़रे, उस को झेल कर जो तजरुबा हासिल होवे, वह और बात है। असल फ़ायदा तजरुबे में है। जब इसको तजरुबा होगा, तब यह ख़ुशी से चाहेगा कि दुख तकलीफ़ होवे और दुनिया के सामान के हर्ज मर्ज होने में दुखी नहीं होगा।

६ — ऐसा न चाहिये कि दुनिया का सामान जब मुयस्सर न आवे या संसार से दुखी होवे तो कहे कि इसको गोली मारो, राधास्वामी दयाल आप ही सँभाल करेंगे, यह तो अन-मिलते का त्याग है और यही मन की चोरी है क्योंकि अंतर में आसा धरी हुई है। चाहिये कि आसा बासा यहाँ की न रहे और बिलकुल यहाँ की चीज़ों और पदार्थों से चित्त उपराम हो जावे। अपना घर तो उजाड़ करे ही, पर और भी जो इसका संग करें, उनको भी उजाड़ दे।

घर फूँका मैं आपना, लूका लीना हाथ।
वाहू का घर फूँक दूँ जो चले हमारे साथ।।

७ — मन जब दुखी होता है, तब कहता है, चलो जमना में डूब मरें, यह करें और वह करें, यह सब मन की चतुराई है। असल में बरदाश्त की कमी है, सो इस

में मसलहत है। राधास्वामी दयाल ख़ूब जानते हैं कि कहाँ कहाँ इसके बंधन और पकड़ हैं, आहिस्ता आहिस्ता सब बंधन तोड़ते जायँगे, जल्दी का काम नहीं है, इस मन को खिला खिला के तरसा तरसा के धीरे २ मारेंगे, मगर मारेंगे ज़रूर।

८ — कहने का मुद्दा यह है कि दुख तकलीफ़ में फ़ायदा है इसका तजरुबा होना, यह भी अभ्यास का एक अंग और ज़रूरी अंग है।

बचन १७

जीवों की कुछ भी हैसियत नहीं है कि मालिक का गुप्त भेद जान सकें। यह सिर्फ़ संतों की ताक़त है। और जो कि सच्चे मालिक का खोज नहीं करते हैं, वह नादान हैं।

१ — राधास्वामी दयाल जीवों के उद्धार के लिये परम संत सतगुरू रूप धारन करके इस संसार में आये और रचना का गुप्त भेद आप प्रकट किया और बिना करनी अपनी मेहर दया से उद्धार करते हैं। सिवाय संत मत के और जितने मत हैं, वह सब उसके आगे हँसी और खेल मालूम होते हैं।

२ — मालिक ने सूरज चाँद और तारों को इतनी दूर रक्खा है कि इनसान की ताक़त नहीं कि वहाँ का भेद पूरे तौर से मालूम कर सके। असल में मौज ऐसी थी कि मालिक ने अपने भेद को गुप्त रक्खा। लोगों ने हरचंद

कोशिश की कि आकाशी रचना का भेद मालूम करें मगर जैसा चाहिये, नहीं कर सके। इसी सूरज चाँद तारागन को देख कर निहायत ही अचरज मालूम होता है तो जो इन सबका करतार है यानी जिसने इनको रचा है, वह कैसा होगा और जहाँ कि उसका देश है यानी निर्मल चैतन्य देश, वह कैसा होगा और कैसा वहाँ का रस और आनंद होगा। ऐसे करतार के दरशन की जिस को चाह नहीं उठती, वह पशु है। वह जैसा दुनिया में आया, वैसा न आया। जो कि ऐसे पुरुष के दरशन के लिये जतन और कोशिश कर रहे हैं और अभ्यास करके जिन्होंने कुछ रास्ता तय किया है और जिनके हिरदे में उस करतार से मिलने की चाह और प्रेम है, वेही सच्चे साध और प्रेमी जन हैं। जो लोग कि दुनिया में कोशिश और तलाश करके कोई नई बात मालूम करते हैं, उनकी किस क़दर ताज़ीम होती है तो जो कि मालिक की तलाश और खोज में दिन रात मेहनत और जतन कर रहे हैं और जो कि साध महात्मा हैं, जिन को कि ज़ाती और क़ुदरती ताक़त रचना के भेद जानने की है, उनकी किस क़दर ताज़ीम और महिमा होनी चाहिये!

३ — मगर हम लोग गँवार हैं। परमार्थ की ख़बर कुछ नहीं है। जैसे गँवार को जब कोई दिन सिखलाते हैं, तब उसको थोड़ी बहुत क़ायदे क़ानून की वाक़फ़ियत होती है, इसी तरह जब कोई दिन सतसंग और अभ्यास करें, तब भक्ति की रीति मालूम होवे। बहुतेरे भील और जंगली लोग हैं जिनको कपड़ा पहिनने ओढ़ने की भी ख़बर नहीं है और हरचन्द बुला बुलाके उनको कपड़ा देते हैं, पर नहीं पहिनते हैं और भाग जाते हैं, ऐसे ही परमार्थ में मालिक दया करके जीवों को लगाता, समझाता और बुझाता है और सतसंग में शरीक करता है, तो भी

यह नहीं मानते और बार बार भाग जाते हैं और हैवान-पना नहीं छोड़ते हैं, तो मालूम हुआ कि जीव निहायत ही अभागी और गँवार हैं। जो कि साध महात्मा हैं, उनकी नज़र में सब जीव एकसाँ हैं और सब पर उनकी दया दृष्टि बराबर होती है।

कोई आवे भाव ले, कोई आवे अभाव।
साध दोऊ को पोखते, भाव गिनें न अभाव।।

और जिसको कि यहाँ दर्शन हासिल हुआ है, उस को वहाँ मालिक का दरशन होता है —

जाको दर्शन इत्त हैं, वाको दर्शन उत्त।
जाको दरशन इत्त नहीं, वाको इत्त न उत्त।।

४ — मालिक जब जीवों पर निज दया फ़रमाता है, तब संत औतार धारन करता है। बड़े भाग उनके हैं जिन्होंने कि एक मरतबे भी सतगुरु का दरशन किया है। उनकी बड़ भागता का वार पार नहीं है। दरशन जो उन्होंने किया है, वह कभी उन को माया देश में रहने नहीं देगा, ज़रूर एक रोज़ सत्त देश में पहुँचावेगा। जो कि सोये हुए यानी ग़ाफ़िल हैं, उनको ख़बर नहीं है, इसलिये क़दर नहीं करते हैं। मगर जिनकी सुरत जागी हुई है, उन के सुरत मन दरशन करते ही सिमटते हैं, रस और आनन्द आता है, अपने भाग सराहते हैं, संसार से नफ़रत आती है और मालिक के चरनों का प्रेम प्रकट होता है।

५ — कहने का मुद्दा यह है कि जिन्होंने परम संत सतगुरु राधास्वामी दयाल का या उनके निज अंश का दरशन किया है और जो उन के संग रहे हैं, उनके भागों की अपार महिमा है, उनका गोया काम बन गया, काल कर्म की ताक़त नहीं कि उन को रोक सकें, उन का

उद्धार होगया। अपनी दया से राधास्वामी दयाल उन को अपने चरनों की प्रीति प्रतीत गहरी बख़्शते हैं और बिना करनी के उनको सत्तदेश पहुँचाते हैं। करनी, जीवों से कुछ नहीं बन सकती है। हम लोग कुछ करनी नहीं करते हैं, थोड़ा बहुत सतसंग किया, पाठ सुन लिया, जैसा तैसा अभ्यास किया, उसमें भी तरंगें उठाते रहे, यह कोई करनी नहीं है। असल में राधास्वामी दयाल अपनी दया से जीवों का उद्धार करते हैं और जिस क़दर मुनासिब होता है, करनी भी आप कराते हैं। नहीं तो हम लोगों की क्या ताक़त है कि कुछ भी कर सकें।

६ — परम संत सतगुरु जो राधास्वामी दयाल का अवतार हैं और उनके निज अंश यानी मुसाहब, जिनमें कि राधास्वामी दयाल आप विराजमान हैं, वे दोनों एक ही हैं। वे अगर इस रचना में न आते तो रचना का गुप्त भेद इस तरह कभी प्रकट न होता। ख़ुद ब्रह्मा विष्णु महेश को भी रचना का भेद मालूम न हुआ और न पुरुष का दरशन हुआ। निरंजन ने आद्या से कहा था कि इन तीनों को हमारा और सत्तपुरुष का पता न देना, क्योंकि इनसे रचना का काम लेना है।

आप निरंजन हुए नियारे। भार सृष्टि सब इन पर डारे।।
दीप रचा इक अपना न्यारा। ता में कीन्हा बहु विस्तारा।।

दरस निरंजन ना मिला, किया ज्ञान अनुमान।
फिर आगे सतपुर्ष का, क्यों कर करें प्रमान।।
ता ते वह मत संत का, रहा गुप्त जग माहिं।
गुन तीनों मानें नहिं, जीवहु माने नाहिं।।

७ — सच्ची सच्ची बात तो यह है कि काम तब बनेगा जब मोहनी स्वरूप सतगुरु का इसके हृदय में प्रकट होगा। इतने में कभी कभी शब्द भी सुनाई देगा

और रस भी आवेगा। मगर ऐन करके अंतर द्वारे में प्रवेश तब करेगा, जब सतगुरु का मोहनी रूप प्रकट होगा। सतगुरु स्वरूप गोया घट का ताला खोलने की कुंजी है।

गुरु कुंजी जो बिसरे नाहीं। घट ताला छिन में खुल जाहीं।।

८ — राधास्वामी दयाल ने दया करके सब जीवों के उद्धार के लिये नर शरीर धारन किया है, बल्कि नीचे के चक्रों तक में भी अपने रूप का अक्स पहुँचाया है।

रूप निरंजन धारा श्यामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी।।
मन के घाट हुए अब कामी। अस मेरे प्यारे राधास्वामी।।
इन्द्री घाट विकार घटामी। सो मेरे प्यारे राधास्वामी।।

सवाल — सतगुरू रूप कैसा होता है और संतों के रूप की पहिचान कैसे होती है?

जवाब — संत सतगुरु का रूप महा प्रकाशवान और विशाल होता है।

शोभा देखूँ मैं अब गुरु की। नैन निहारूँ खिड़की धुर की।।

संत सभी एकही घर से आते हैं। उनके अंतरी स्वरूप में कोई फ़र्क़ नहीं है।

संत सभी धुर घर से आवें। भेद कुल्ल मालिक का गावें।।

अंधा सुझाके को क्या पकड़ेगा? यह जीव तो अन्धा है। इसलिये वह मालिक आप इस को अपनी पहिचान कराता है। इसकी कोई ताक़त नहीं है।

९ — दुनिया के जो और मत हैं, कुछ भी उनकी हैसियत नहीं है, मसलन ईसाई जो कहते हैं कि इस पृथ्वी को पैदा हुए छःहज़ार बरस हुए हैं, सो कैसी हँसी की बात है, या तौरेत में जो लिखा है कि मूसा ने लड़ाई के वक़्त जब हाथ अपना ख़ुदा की तरफ़ उठाया, तब लड़ाई में फ़तह हुई, पर जब हाथ थक गया तब उसे

नीचा किया और तब से लड़ाई में हार होने लगी। इसलिये लोगों ने कहा, उठाओ बुड्ढे के हाथ, और ख़ुदा के सामने उनका जब हाथ किया गया तब फिर फ़तह होने लगी। क्या मज़े की बात है? हिन्दू कहते हैं, सत्तनारायन की कथा नहीं सुनने से नाव डूब गई और जब सुनी तब तिर आई। इस तरह का डर है तो अच्छा, मगर इसी को परमार्थ समझना निहायत ही ग़लती है।

बचन १८

घट में नाम रूपी धन हासिल करने के लिये जतन करना चाहिये। संसारी धन हुकूमत की कुछ भी हैसियत नहीं है। मौत के वक़्त सब यहाँ ही छोड़ना पड़ता है, और पूरे गुरू के संग और सेवा से चैतन्य रूपी दौलत मुयस्सर होती है।

१ — जिसको कि चैतन्य जौहर की ख़बर है और उसको घट में हासिल करता है, उसके सामने संसार का धन, हुकूमत, मान, बड़ाई, तुच्छ नज़राई पड़ती है, बल्कि वह उनकी तरफ़ तवज्जह भी नहीं करता है। और जैसे मछली जल में केल करती है और बिना उसके तड़पती है और एक छिन भी नहीं रह सकती, वैसे ही यह निस दिन अंतर में अमी रस में किलोल करता है और उस को पान करके निहायत ही मगन होता है, अपना भाग सराहता है और मालिक का शुकराना अदा करता है। और जब ऊँचे देश का रस और आनंद आता है, तब

संसार इसको उजाड़ और जाल सा नज़राई पड़ता है और भोगों और पदार्थों से इस को नफ़रत होती है। जब गहरा प्रेम आता है, तब ऐसी हालत होती है। यह सब रूहानी ताक़त का काम है।

२ — संग की बड़ी ज़रूरत है और ऐसी हालत बिना पूरे गुरू के संग के हासिल नहीं होती है।

यह तन विष की बेलडी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान।।

३ — भक्त जन को संसार के जीव निहायत ही हक़ीर नज़राई पड़ते हैं और बिलकुल पशु मालूम होते हैं। अगर किसी को गधा कहो तो वह लड़ने को तैयार होगा, यह नहीं जानता कि वाक़ई काल इस से दिल्लगी कर रहा है कि कभी गधा, कभी कुत्ता और कभी घोड़ा बनाता है।

४ — भक्त जन चैतन्य रूपी दौलत हासिल करने के लिये जतन करता है और जो संसारी जीव हैं, वे माया के पीछे पड़े हैं और दिन रात मेहनत और मशक़्क़त करते हैं। जैसे सिपाही हैं कि वह धन और मान बड़ाई के लिये अपनी जान दे देते हैं और वेश्या झूठे धन के लिये अपना तन दे देती है तो सच्चा धन यानी परमार्थी दौलत हासिल करने के लिये किस क़दर जतन और कोशिश करना चाहिये? जो कि सच्चा भक्त जन है, उसको सिवाय मालिक के प्रेम और चरन रस के कोई संसारी पदार्थ नहीं भाता यानी बग़ैर प्रेम के जो कि मालिक का अंग है, और कोई दूसरा अंग यानी संसारी पदार्थ पसंद नहीं आता है।

५ — जब कोई दिन अभ्यास करेगा तब संसारी बन्धन ढीले होंगे, प्रेम आवेगा और संसार से नफ़रत

होगी। कहाँ का बादशाह ? भक्त जन के सामने कुछ भी हैसियत उसकी नहीं है। मौत जब आती है तब धन दौलत हुकूमत सब यहाँ ही छोड़ना पड़ता है।

६ — जब प्रेम पैदा होवे और रस आनन्द आवे, तब समझना चाहिये कि दया की शुरूआत है। वैसे दया तो हमेशा है और हो रही है मगर वह जो ऊँची हालत होने वाली है, उस की गोया शुरूआत है। बढ़की दौलत जब इसको हासिल होगी, तब संसार से चित्त उपराम होगा। कहने का मुद्दा यह है कि परमार्थ में इस क़दर इसको रस आनन्द आवे जो संसारी सुख और आनन्द पर हावी होवे, तब यह सच्चा होकर परमार्थ की तरफ़ मुख़ातिब होगा।

७ — क़ुदरत का जो कारख़ाना है, उसको देख कर निहायत ही अचरज मालूम होता है। जैसे यह पृथ्वी है, उसके नीचे और ऊपर और लोक हैं, अनंत ऐसी पृथ्वियाँ और लोक हैं। सिर्फ़ यहाँ ही जो कैफ़ियत नज़राई पड़ती है, उसको देख कर अक़्ल दंग हो जाती है तो ऊपर की रचना की क्या कैफ़ियत होगी ! दम मारने की गुँजाइश नहीं है। और कैसा वह मालिक होगा, जिसने इस कुल कारख़ाने को रचा है ! उसके दरशन के लिये कोई चाह नहीं करता। लोग बावले हैं। संसारी धन जो कि कौड़ी से भी कम है, कुछ भी जिस की हैसियत नहीं है, उस के हासिल करने में मस्त और मगन हो रहे हैं और परमार्थी धन जो कि हीरा है, उसका कुछ भी ख़्याल नहीं करते। लाख दो लाख रुपया इकट्ठा करके मस्त हो कर बैठते हैं। पर यह धन यहाँ ही छोड़ना पड़ेगा। अन्त समय जैसे जुआरी हाथ झाड़ के उठता है, वैसे यह भी दोनों कर रीते करके जायगा। इसका कभी सोच विचार भी नहीं करते।

८ — भक्त जन को मालिक थोड़ी बहुत रचना की कैफ़ियत भी दिखाता है। जब पिंड के परे ब्रह्मांड में इसका मेराज होता है, तब जो मालिक का गुप्त भेद यानी राज़ और मुअम्मे हैं, वह मालूम होते हैं।

भेद मोहिं गुप्त दिया जब ही। हरे मेरे मन बुद्धी तब ही।।

९ — विद्या वालों ने अभी एक नये उन्सर की तलाश की है जिसको रेडियम कहते हैं। कुल चौरासी तत्त्व हैं। इन में से साइन्सदानों (विज्ञान वेत्ताओं) ने पचहत्तर दरयाफ़्त किये हैं। अब यह रेडियम छिहत्तरवाँ है। इसमें से हमेशा और हर वक़्त गरमी और रोशनी निकलती रहती है।

१० — जैसे रेडियम से हर वक़्त गरमी और रोशनी बाहर निकलती रहती है वैसे ही जो कि साध और संत हैं, उनमें से हर वक़्त प्रेम और चैतन्य की धारें निकलती रहती हैं। और जैसे जो कोई आग के निकट जाता है तो उस पर आग का असर होता है यानी गरमी होती है, वैसे ही जो कोई कि संत महात्मा के पास जाता है तो उस में भी ज़रूर प्रेम आता है और चेतनता बढ़ती है।

११ — भाग से जब पूरे गुरु मिल जावें, तब तन मन धन से उनकी सेवा करनी चाहिये। वह जब दया करेंगे, तब नाम रूपी धन की बख़्शिश होगी।

क्या सेवा कर गुरू रिझाऊँ। भक्ति भाव क्या क्या दिखलाऊँ।।

१२ — सबसे बड़ी सेवा राधास्वामी दयाल की यह है कि प्रीति सहित सुरत से बारम्बार उनके नाम का रटन यानी सुमिरन करता रहे।

स्वाँति बूँद जस रटत पपीहा। अस धुन नाम लगाये।।
नाम प्रताप सुरत अब जागी। तब घट शब्द सुनाये।।

१३ — राधास्वामी नाम का सुमिरन करना, इससे बढ़ कर और कोई सेवा नहीं है। जिसको कि हर वक़्त राधास्वामी नाम याद है, उसके हिरदे में गोया मालिक के चरण बस गये और यही चैतन्य जौहर यानी नाम रूपी धन है।

नाम रतन धन पाय कर, गाँठी बाँध न खोल।
नाहीं पन नहिं पारखू, नहिं गाहक नहिं मोल।।
सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरे, सब तन कंचन होय।।
जभी नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की, पड़ी पुरानी घास।।

सुरत को मिला ख़ज़ाना नाम।।

गुरु नाम रसायन दीना। दारिद्र हुआ सब छीना।।

बचन १९

संस्कार का असर स्वार्थ ख़्वाह परमार्थ में और वर्णन भूल भर्म संसारियों का

१ — संसारियों की कुल कार्रवाई स्वार्थ ख़्वाह परमार्थ की कर्म फल अनुसार होती है। जैसा जिस का अगला पिछला संस्कार है, उसी अनुसार उसका सुभाव होता है। मसलन कोई बचपन से चोर होते हैं या बाज़े बड़े समझदार और नेक और रोशन-ज़मीर नज़राई पड़ते हैं या कोई ऐसे गँवार होते हैं कि कितना ही उनको समझाओ बुझाओ, कुछ नहीं समझते, कभी अपना हठ अंग नहीं छोड़ते, तो इससे मालूम हुआ कि अगले पिछले कर्मों का यानी संस्कार का असर बड़ा भारी होता है।

२ — लोग संसारी कारोबार में अपने नफ़े नुक़सान की जाँच करते हैं। जिस में नुक़सान होता है, वह काम नहीं करते हैं और जिस में नफ़ा होता है, वही काम करते हैं और उसकी तरक़्क़ी के लिये जतन और कोशिश दिन रात करते हैं। परमार्थ में इस क़दर भी सोच विचार न करना कि जो परमार्थ हम कमा रहे हैं, उससे आया हमको नफ़ा है या नुक़सान इससे बढ़ कर और अभागता क्या है ?

३ — जो कि संस्कारी हैं, वे हमेशा अपनी निरख परख करते रहते हैं और जो असंस्कारी हैं, उनको कितना ही कोई समझावे तो भी नहीं समझते और अपनी टेक पक्ष नहीं छोड़ते। जैसे नीम का पेड़ कि उसे कितना ही चाहे कोई घी से या दूध से सींचे तो भी फल उसका हरगिज़ मीठा नहीं होगा, इसी तरह अन अधिकारी को चाहे कितना समझाओ हरगिज़ उस पर असर नहीं होगा।

विषयी संसारी और रागी। उनको टेक न चहिये त्यागी।। १।।
उनको टेक सहारा भारी। टेक बिना कुछ नाहिं अधारी।। २।।
उनको नहिं उपदेश हमारा। उनको जक्त कामना मारा।। ३।।
कोइ कुटुम्ब कोइ धन आधीना। कोइ कोइ मान प्रतिष्ठा लीन्हा।।४।।
मारे डर के टेक न छोड़ें। वक़्त गुरू में मन नहिं जोड़ें।। ५।।

४ — संसार के जीव निहायत ही असंस्कारी हैं। जब जब संत आते हैं, तब जो ऐसे जीव उनके सनमुख आते हैं तो उनके भाग का गोया बीज बोया जाता है और वह एक रोज़ ज़रूर अंकुर निकलेगा।

सन्त डारिया बीज, घट धरती जेहि जीव के।
को अस समरथ होय, जो जारे उस बीज को।।१।।
कोई काल के माहिं, वह बीजा अंकुर गहे।
जब जब आवें संत, अंकूरी उन सँग रहे।।२।।
वह सींचें निज पौद, होय भक्त वह पेड़ सम।
फल लागें अति से सरस, भोगे सतगुरु मेहर से।।३।।

कारज कीना पूर, संत धूर हिरदे धरी।
सूर हुआ मन चूर, नूर तूर घट में प्रकट।।४।।

५ — कोई कहते हैं, राम कृष्ण ख़ुदा और भगवान सब एक ही हैं। क्या मज़े की बात है? अब इनसे पूछो, गुदा इन्द्री नाभि चक्र क्या सब एक ही हैं? ईश्वर परमेश्वर ब्रह्म और पार-ब्रह्म क्यों कहा? ब्रह्म और पार ब्रह्म में क्या फ़र्क़ है? ब्रह्म के परे जो है उसे पार-ब्रह्म कहा है। और तेंतीस करोड़ देवता कहे हैं और लक्ष्मीनारायण कहा है तो जैसा देवता वैसा नारायण हुआ। इस क़िस्म की ग़लत फ़हमी अक्सर लोगों पर ग़ालिब है। इसका भेद संत मत में साफ़ खोल कर कहा गया है।

६ — संत फ़रमाते हैं कि रास्ता घट में है। जिस रास्ते कि स्वप्न में जाग्रत से जाते हैं, उसी रास्ते चलना होता है। नींद में बे होश और बे इख़्तियार जाते हैं, अभ्यास में बा होश और बा इख़्तियार जाना होता है। रास्ते में कितने ही ठेके और मंज़िलें हैं। हर एक स्थान की ताक़त जुदा है। कुल अठारह दर्जे हैं और तीन बड़े मंडल हैं यानी पिंड ब्रह्मांड और दयाल देश। हर एक में छः छः चक्र हैं और एक दूसरे का प्रतिबिम्ब है। सबके परे का जो स्थान है, वह राधास्वामी धाम है और यही कुल मालिक का नाम है। घट घट में शब्द हो रहा है। इस चैतन्य धार को पकड़ के अन्तर में चलो। नाम का सुमिरन करो। गुरु स्वरूप का ध्यान धरो। अंतर में शब्द का श्रवण करो। और गुरू की सेवा करो। यह संत मत है, और सब कर्म भर्म है।

मेरे गुरु दयाल उदार की। गत मत नहीं कोई जानता।।
का से कहूँ यह भेद मैं। चित से नहीं कोइ मानता।। १ ।।
जग में अन्धेरा घोर है। माया का भारी शोर है।।
काल और करम भर ज़ोर है। भरमों में जिव भरमावता।। २ ।।

तीरथ बरत में भर्मते। मन्दिर में मूरत पूजते।।
पोथी किताबें ढूंढ़ते। निज भेद नहिं कोई पावता।। ३ ।।
कोइ मौन साधें जप करें। कोइ पंच अगिन धूनी तपें।।
कोइ पाठ होम और जप करें। कोइ ब्रह्म ज्ञान सुनावता।। ४ ।।
कोइ देवी देवा गावते। कोइ राम कृष्ण धियावते।।
कोई प्रेत भूत मनावते। कोइ गंगा जमुना न्हावता।। ५ ।।
कोइ दान पुण्य करावते। ब्रह्मन्न भेख खिलावते।।
कोइ भजन गाय सुनावते।कोइ ध्यान मन में लावता।। ६ ।।
यह सब जो पिछली चाल हैं।काल और करम के जाल हैं।।
इनमें पड़े बे हाल हैं। सब जीव धोखा खावता।। ७ ।।
जो चाहे तू उद्धार को। सच्चे गुरू को खोज ले।।
कर प्रीति और परतीत तू। फिर चरन सरन समावता।। ८ ।।
राधास्वामी नाम सम्हार ले। गुरू रूप हिरदे धार ले।।
सुर्त शब्द मारग सार ले। गुरु महिमा निसदिन गावता।। ९ ।।
सतसंग कर चित चेत कर। गुरु प्रीति कर हिये हेत कर।।
मन काल मारो रेत कर। सुर्त शब्द माहिं लगावता।। १० ।।
गुरु तुझ पै मेहर दया करें। पल पल तेरी रक्षा करें।।
मन उलट कर सीधा करें। फिर गगन माहीं धावता।। ११ ।।
नभ माहिं दरशन जोत कर। त्रिकुटी चरन गुरु परस कर।।
सुन माहिं सारंग साज कर। बेनी में जाय अन्हावता।। १२ ।।
व्हाँ से सुरत आगे चली। सोहंग मुरली धुन सुनी।।
सत पुरुष के चरनन रली। धुन सार शब्द सुनावता।। १३ ।।
मन थाल लीन्ह सजाय कर। और सुरत बाती बनाय कर।।
फिर शब्द जोत जगाय कर। भर प्रेम आरत गावता।। १४ ।।
दृढ़ प्रीति बस्तर साज कर। और भाव भक्ती भोग धर।।
मन चित से आज्ञा मान कर। प्यारे सतगुरु को रिझावता।। १५।।
फिर अलख अगम को धाइया। घर आदि अन्त जो पाइया।।
राधास्वामी चरन समाइया। धुर धाम संत कहावता।। १६ ।।
गुरु महिमा क्योंकर गाइया। राधास्वामी मेहर कराइया।।
निज देश अपना पाइया। धन धन्य भाग सरावता।। १७ ।।

* * * * * *

बचन २०

भक्त जन की उलटी बात भी सुलटी हो जाती है और उसमें से परमार्थी फ़ायदा निकल आता है

१ — जो लोग कि संत मत में शामिल हुए हैं और सच्चे हैं यानी सिवाय अपने जीव के कल्याण और उपकार के और कोई मतलब नहीं रखते, वे मालिक के अपनाये हुये हैं और उनके लिये जो कुछ कार्रवाई होती है, वह मालिक की मौज से होती है। ऐसे संस्कारी के लिये बाज़ी संसारी बात जो कि उलटी नज़र आती है, वह सुलटी हो जाती है और उसमें से परमार्थी फ़ायदा निकलता है। जिस पर ऐसी मालिक की दया है, उससे बढ़ कर भाग्यवान और कोई नहीं है।

दृष्टान्त — सूरदास जिनकी साध गति थी उनको अपनी स्त्री से प्रीति ज़्यादा थी। एक दफ़े उनकी स्त्री अपने मायके गई और वह घर दरिया के पार था, सूरदास को बड़ी बेताबी हुई और मुहब्बत के जोश में परली पार जाने का इरादा किया। रात का वक़्त था, दरिया में उनको एक मुर्दा नज़र आया, जिस को नाव समझ कर चढ़ बैठे। जब उस मकान के पास पहुँचे, तब दीवार पर एक साँप उनको नज़र आया जिसको रस्सी समझ कर उसके सहारे ऊपर चढ़ गये और मकान में अपनी स्त्री से जाकर मिले। जब उनकी स्त्री को इस बात की ख़बर पड़ी, तब उसने कहा कि ऐसी प्रीति अगर मालिक से करते तो सच्चा और हमेशा का लाभ होता। इन्सान के साथ मुहब्बत करने से क्या फ़ायदा होगा? यह सुन कर सूरदास के जिगर में गोया तीर लग गया और

स्त्री से कहा कि तू अब मेरी गुरू है और उसी वक़्त सब छोड़ छाड़ के मालिक की तलाश में निकल खड़े हुए, स्त्री और और लोगों ने बहुतेरा उनको समझाया लेकिन किसी का कहना नहीं माना। चलते चलते एक जगह कुआँ देखा, जिसमें से मर्द और औरतें पानी भरते थे। एक स्त्री पर उनकी नज़र पड़ गई और उस पर आशिक़ हो गये। उस से पानी पिलाने के लिये कहा और उसने पिलाया लेकिन तो भी उन्होंने उस स्त्री का पीछा नहीं छोड़ा। वह स्त्री और उसका मर्द दोनों भक्त थे और उनको पूरे गुरू मिले थे जिनकी भक्ति करते थे। स्त्री ने अपने पति को सब हाल सुनाया। पति ने कहा कि यह बेचारा ग़रीब है, मालिक की तलाश में निकला है, तुम हर तरह से इसकी सेवा और ख़ातिरदारी करो। पति की आज्ञा पाकर स्त्री सूरदास की सेवा करने लगी। सूरदास इसकी सचाई और भक्ति अंग देख कर निहायत शरमिन्दा हुए और अपनी कुदृष्टि पर ऐसी ग्लानि आई कि स्त्री से एक चूड़ी माँग कर और दो टुकड़े करके अपनी दोनों आँखों में चुभा कर अन्धे हो गये और स्त्री से कहा कि पहिले मैंने अपनी स्त्री को गुरू किया था, अब तुझ को भी अपना गुरू करता हूँ, तूने मुझ को मालिक से इश्क़ करने का सबक़ सिखाया है। फिर उस स्त्री और उसके मर्द ने कहा कि हमने पूरे गुरु के प्रताप से ऐसी भक्ति पाई है, तुम भी उनकी सरन लो तो कुल विकार दूर हो जायँगे और एक रोज़ मालिक से मेला हो जायगा। सूरदास ने ऐसा ही किया और साध गति को प्राप्त हुए।

२ — इस तौर से जब किसी को सच्ची नफ़रत आवेगी और भोगों से उपराम यानी उदास होगा, तब वह सच्चा होकर परमार्थ में लगेगा। मगर मन ऐसा ढीठ, निडर, निलज्ज है कि बहुतेरा पछतावे और शरमावे और

क़सम खावे कि ऐसा काम फिर कभी नहीं करूँगा तो भी जैसे कि कुत्ते की दुम होती है कि उसको बहुतेरा सीधा करो, फिर टेढ़ी की टेढ़ी रहती है। पहले किसी बात से नफ़रत करता है, मगर घंटे दो घंटे बाद बे-हया वही काम करने को तैयार हो जाता है। यह सच्ची नफ़रत नहीं है। पछताना झुरना और अफ़सोस करना, इससे मन की सफ़ाई होती है और जिसको पछतावा करने से भी नफ़रत नहीं आती है, वह निहायत मलीन है। जहाँ राधास्वामी दयाल की हुकूमत यानी सतसंग है, वहाँ उलटी बात भी सुलटी हो जाती है यानी उसमें से परमार्थी फ़ायदा निकलता है, पर इससे ऐसा समझना नहीं चाहिये कि अगर कोई सतसंग में जाकर बुरा काम करेगा तो सुलटा हो जायगा। जो जान बूझ कर ऐसा काम करेगा, वह फटकारा जायेगा। इस वक़्त जीवों पर मालिक की भारी दया है कि जा-ब-जा सतसंग जारी हैं और निज रूप से राधास्वामी दयाल आप निगरानी और सम्हाल कर रहे हैं। असल में परमार्थ का मतलब यह है कि सुरत मन सिमटें और बंधन टूटें। और जितने काम हैं, सब लवाज़मे हैं। जिसका प्रेम अंग जागा है, वह जब संत मत में शरीक होता है, तब उसकी तरक़्क़ी तेज़ होती है। रोज़ाना सतसंग और अभ्यास करने से सफ़ाई होती जायगी और एक दिन मालिक के चरनों में पहुँच जायगा।

बचन २१

संसारियों की कार्रवाई कर्मानुसार होती है और जो परमार्थी हैं, उनकी कार्रवाई में

मौज की धार भी शामिल होती है और जिस पर दया है, उसकी गढ़त होती है।

१ — दुनियादारों की कार्रवाई कर्म फल अनुसार होती है और जो सतसंगी हैं, उनके कारोबार में कर्म फल के साथ मौज शामिल रहती है। चैतन्य धार जो ऊँचे देश से आ रही है, उसको मौज की धार कहते हैं। जो कि सुरत शब्द का अभ्यास करते हैं, उनका थोड़ा बहुत सिलसिला उस मौज की धार के साथ लगा हुआ होता है और उपदेश लेने से उनका सूत सत्तपुरुष के चरनों से लगा दिया जाता है यानी राधास्वामी दयाल का पल्ला पकड़ा दिया जाता है। जिस क़दर जिसका उस धार से मेला होता है, उसी क़दर गुप्त या प्रकट मौज की धार उसके कारोबार में शामिल होती है। जहाँ तक माया है, वहाँ तक कर्म फल ज़रूर थोड़ा बहुत चढ़ा रहता है। निरमाया देश में कर्म नहीं है। वहाँ जब इसकी रसाई होगी, तब कुल कार्रवाई मौज से होगी और वहाँ मौज प्रकट नज़राई पड़ेगी। कर्म फल त्रिकुटी में ख़तम होता है। वहाँ जब यह पहुँचेगा, तब निःकर्म होगा।

२ — अगर मौज शामिल है तो हरचन्द बाहर का सामान मौजूद नहीं है और कोई उम्मेद भी नहीं है तो भी ऐसी सूरत होती है कि उलटी से सुलटी कार्रवाई हो जाती है। और अगर मौज शामिल नहीं है और बाहर का सामान भी मौजूद है तो भी सुलटी से उलटी कार्रवाई हो जाती है, यानी बन्दे से राजा और राजा से बन्दा हो जाता है। देखो नेपोलियन एक अदना लेफ़्टेनेन्ट था पर अगला पिछला संस्कार था, किस क़दर दरजा हासिल हुआ। ऐसी बहुतेरी मिसालें हैं।

३ — सुरत शब्द अभ्यास करने से सख़्त से सख़्त कर्म कटते हैं और क्रियमान कर्मों का असर नहीं होता है, अगर होता है तो बिलकुल ख़फ़ीफ़। जैसे खेत में बीज बोया और बरसात बराबर न पड़ी तो छोटे छोटे पौदे निकलते हैं और फिर जल्दी नाश हो जाते हैं, वैसे ही क्रियमान कर्म अगर ज़ाहिर होते भी हैं तो उनका असर ज़्यादा नहीं होता है। जहाँ २ इसका बंधन है, वह जब तोड़ा जाता है तो वहाँ से जब सुरत हटती है, तब इसको झटका लगता है। इससे तकलीफ़ होती है और यह घबराता है। चाहिये कि उस वक़्त समझौती याद करके मालिक का शुकराना अदा करे कि नाक़िस कर्म कट रहे हैं और बन्धन से रिहाई हो रही है।

४ — जिस पर मालिक की दया है, उसको अगर अगले पिछले कर्मों के सबब बाहरी, दुनिया का, सामान, नामवरी या मान बड़ाई मिलने वाली है, तो इसके साथ बचाव के लिये मौज की धार शामिल रहती है और किसी न किसी क़िस्म की मन को ज़िच बिच लगी रहती है, ताकि वह फूलने न पावे। संसारी जीव जिन पर कि दया है और रहनी गहनी जिनकी अच्छी है, उनके कारोबार में भी थोड़ी बहुत मौज की धार शामिल होती है, मगर जो निपट संसारी हैं और दिन रात दुनिया के कामों में पिल रहे हैं, वे तो अपना कर्म फल भोगते हैं और कर्मों में बह जाते हैं।

५ — मुक़द्दम परमार्थ है। और स्वार्थ दूसरे दर्जे में है। मालिक हमेशा इस की परमार्थी तरक़्क़ी पर पहले नज़र करता है। बाद इसके स्वार्थ का ख़्याल करता है। परमार्थ की तरक़्क़ी हो और इससे अगर स्वार्थ का हर्ज होवे तो कोई मुज़ायक़ा नहीं है। जिस क़दर बन पड़े, उतना परमार्थी तरक़्क़ी के लिये जतन और कोशिश

करना चाहिये। संसारी सामान भी कर्मानुसार मालिक देता है। इसलिये चाहिये कि स्वार्थ का कुछ ख़्याल न करे। अगर इसके घर में आग लगे, चाहिये कि चुप करके अंतर में ढोल बजावे। असल में सच्ची २ बात तो यही है। मगर संसार में इसका बन्धन है, इसलिये तकलीफ़ होती है। हरचंद मुसम्मिम इरादा भी करता है कि आइन्दा किसी हर्ज मर्ज़ में दुखी नहीं होऊँगा, मगर फिर भी भूल जाता है। अगर इसको यक़ीन है कि कोई सच्चा करतार है और वह सर्व समर्थ और हाज़िर नाज़िर है तो दिल में ढारस होनी चाहिए कि जो कुछ वह करेगा, बग़ैर परमार्थी मसलहत और मुनफ़अ्त[1] के लिहाज़ के हरगिज़ नहीं करेगा, ज़रूर उसमें नफ़ा होगा। ऐसी समझौती धारन करने से भी शान्ति आती है और मौज से मुवाफ़क़त होती है और दुख तकलीफ़ कम व्यापते हैं।

६ — भक्त जन को तो जो मुनासिब है, मालिक आप से आप देता है। पर ज़्यादा नहीं देता है, ताकि फँसने न पावे। जहाँ अनाज बोया जाता है, वहाँ भूसा आपसे आप होता है, भूसे के लिए अनाज नहीं बोया जाता है। यानी जहाँ परमार्थ है, वहाँ स्वार्थ का बन्दोबस्त मालिक आप से आप कर देता है। और स्वार्थ के लिए परमार्थ नहीं कमाया जाता है। स्वार्थ गोया भूसा है और परमार्थ अनाज है। भूसा बैलों का आहार है और अनाज आदमी का। अगर सिर्फ़ भूसा यानी स्वार्थ है तो मन रूपी बैल को तो खाजा मिला, मगर सुरत भूखी रह जाती है।

७ — जो कि राधास्वामी दयाल की सरन में आये हैं, उन सब की गढ़त यानी सफ़ाई होती है और होगी। गो

१ - फ़ायदे

कि यह नहीं चाहता है कि कोई दुख तकलीफ़ होवे और कहता है कि सतसंग अभ्यास करूँगा पर गढ़त न होवे, मगर जैसे सुनार नहीं छोड़ता है, वह तो अपनी कार्रवाई शुरू कर ही देता है यानी कूट और पीट के सोने को सीधा करता है तब गहना बनता है, इसी तरह वक़्त पर सब की गढ़त होती है और जिसकी गढ़त होती है वह बड़भागी है। गढ़त में भी दरजे हैं। मसलन कोई सोना मिट्टी में मिला होता है और कोई साफ़ है तो उसी अनुसार सफ़ाई की ज़रूरत होती है, पर एक रोज़ सब की दुरुस्ती होगी। अगर प्रकट मालिक गढ़त करता तो सब लड़ने और गाली देने को तैयार हो जाते, बल्कि उसको बैरी समझते, इस वास्ते गुप्त रूप से मालिक गढ़त करता है।

बचन २२

दुख का होना ऐन मालिक की दया है। दुख से जीव चेतता है।

१ — इस लोक में दुख सुख मिला हुआ है। और सब जीव सुख की चाह रखते हैं मगर दुख का होना ऐन मालिक की दया है। क्योंकि दुख से जीव चेतता है। इस ज़माने में मालिक की ख़ास दया हो रही है कि इधर परमार्थ में संत सतगुरु गुप्त हुए तो परमार्थियों के चित्त में जिन्होंने अपनी प्रीति बाहरी चोले से लगाई थी, उदासीनता छाई और सच्चे परमार्थियों को तड़प और बेकली ज़्यादा हुई जो कि बहुत काम बनाने वाली है। सच्चे परमार्थ का मतलब ही यह है कि परदे जो माया के

जीव के ऊपर पड़े हुए हैं, फाड़ दिये जावें। छिन भर की तड़प और बेकली सौ बरस के अभ्यास और भजन से बेहतर है, क्योंकि परदे इससे जल्दी फटते हैं। उधर संसार में कहीं लड़ाई, कहीं अकाल और मरी फैलाई। इस वक़्त छः लाख आदमी रिलीफ़ वर्क्स में लगे हैं और प्लेग भी फैलता ही जाता है, कुछ ठिकाना ही नहीं है, ग़रज़ कि इस समय में मालिक की अपार दया है कि तमाम लोक का कारज बना रहे हैं और बनाना मंज़ूर है। ऐसे दुख के वास्ते हज़ार शुकर करना चाहिये बल्कि सच्चे परमार्थी प्रार्थना किया करते हैं कि थोड़ा बहुत दुख बना रहे कि जिस से उनका मन मालिक से मिलने का जतन करता रहे। और संसारी भी तरह तरह के दुख देख कर घबराते हैं और तलाश करते हैं कि कोई ऐसा भी स्थान है जहाँ हमेशा का सुख मिले और इस लगातार दुख भुगतने से बचाव हो जावे।

२ — सवाल - हुज़ूर महाराज के गुप्त होने के बाद बाज़े सतसंगियों के मन में कोई तड़प या बेकली न हुई। साधारण रहे। न उनके सामने कुछ शौक़ निज रूप से मिलने का था, न बाद को हुआ। इसका क्या बाइस है?

जवाब - परमार्थियों के तीन दरजे हैं। अव्वल नम्बर के परमार्थी वह हैं कि जिनको हुज़ूर महाराज के चोला गुप्त होने पर तड़प और बेकली बहुत है और दिल से चाहते हैं और प्रार्थना करते हैं कि अगर बाहर से मौज नहीं तो अंतर में कुछ सहारा और मदद मिलती जावे, सो दया से उन को मिल रही है और कारज उनका बन रहा है। दूसरे वह कि जिन्होंने सच्चे मन से सरन ली है और समझ लिया है कि शब्द स्वरूप से हुज़ूर महाराज सबके

अंग संग हर वक़्त मौजूद हैं, कभी गुप्त नहीं होते, उनको शान्ति हासिल है और कोई ख़ास तड़प और बेकली दरशनों की नहीं है। तीसरे दर्जे पर निकृष्ट परमार्थी हैं कि जिनको न हुज़ूर साहब के वक़्त में कोई तड़प थी, न अब है। यह जीव भी धीरे धीरे सँभाले जावेंगे, मगर देर लगेगी।

बचन २३

जब कि संहार शक्ति का भी कुछ हाल नहीं मालूम होता है तो मालिक का हाल क्या मालूम हो सकता है?

१ — काल शिकारी जो हर दम तीर लिये मारने को तैयार खड़ा है, न मालूम छिन में क्या करदे। इस संहार शक्ति का भी कुछ हाल नहीं मालूम होता तो फिर उस समर्थ पुरुष कुल मालिक का जो बचाने वाला है, क्या हाल मालूम हो सकता है?

२ — सतसंगियों को हाथ पाँव की मेहनत करना ज़रूर है और बाज़ बाज़ सतसंगी जो शिकायत करते हैं कि इस क़दर दफ़्तर वग़ैरा का काम लिया जाता है कि फ़ुरसत परमार्थी कार्रवाई के लिये बहुत कम मिलती है, यह मसलहत से है क्योंकि जो कुछ आदमी खाता पीता है उसका ख़ुलासा मनाकाश तक पहुँचता है, वहाँ पहुँच कर उसका उतार होता है, जैसे कि बरफ़ पानी होकर फिर बुख़ार होकर बादल रूप हो जाती है, फिर वहाँ से पानी रूप होकर बरसती है और जम कर बरफ़ बन

जाती है, अब इस देह में चन्द मोरियाँ चौड़ी हैं और चंद तंग, मिस्ल हज़ारे फ़व्वारे के, और जिस वक़्त उस ख़ुलासे का उतार होगा, उसके साथ किसी क़दर चैतन्य भी उतरेगा और अगर वह ख़ुलासा किसी चौड़ी मोरी की तरफ़ रुजू हो तो उसमें चैतन्यता भी ज़ायल होगी और विकार भी पैदा होगा। इसलिये अभ्यासी को चाहिये कि कुछ मेहनत हाथ पाँव की करता रहे कि जिससे वह ख़ुलासा तंग मोरियों के ज़रिये से निकल जावे और चैतन्य कम ज़ाया हो। अलावा इसके बाद मेहनत करने के अभ्यासी जो परमार्थी काम करेगा तो उसमें उसका चित्त ज़्यादा लगेगा और दीनता रहेगी।

३ — सवाल - लेकिन दुनियावी कार्रवाई में, जिस क़दर वह ज़्यादा की जावेगी, बंधन ज़्यादा होगा।

जवाब - बंधन उस काम में होता है जिस में इस को किसी क़िस्म का रस आता है। लेकिन जो काम कि फ़र्ज़ समझ कर किया जावे और जिससे अलहेदा होने को झटपट दिल चाहे कि किसी तरह यह ख़तम हो जावे, उस में बंधन न होगा। इसलिये परमार्थी को चाहिये कि अपना काम फ़र्ज़ समझ कर मेहनत से करता रहे। उस में कोई हर्ज नहीं है। बल्कि थोड़ा बहुत हाथ पाँव का काम सब को करना चाहिये। अलबत्ते जो अभ्यास में ज़्यादा मेहनत कर सकते हैं, उनकी सफ़ाई अभ्यास के ज़रिए से होना मुमकिन है, मगर ऐसा अभ्यास बनना मुशकिल है। कोई ताक़त स्थूल रचना में स्थूल सरूप हुए बग़ैर सीधी कार्रवाई नहीं कर सकती, जैसे पीसने का काम पानी से, जब तक कि वह ताक़त चक्की पर न लाई जावे या मारने का काम हवा से, जब तक कि हाथ तलवार पर न लाया जावे, नहीं ले सकते, इसी तरह

सुरत भी सीधे कार्रवाई नहीं कर सकती, जब तक वह मनाकाश में न आवे। वहाँ से धारें नीचे उतरती हैं। इस क़दर एहतियात चाहिये कि चैतन्य धार, मोटे दहाने में होकर, जैसे काम क्रोध के द्वारा, ज़्यादा न बहे।

बचन २४

बाहर के हुनर, तमाशे, नज़ारे देखने का शौक़ जैसा लोगों को होता है, वैसा अंतर में मालिक का दर्शन पाने व अंतरी सैर देखने का शौक़ होना चाहिये।

इस संसार में जो कोई कि किसी गुण, फ़न या कारीगरी में मशहूर होता है, मसलन जो कोई कि नट विद्या में उस्ताद है या कोई बड़ा बोलने वाला है या कोई बहुत हसीन है या ग़ुब्बारे का उड़ने वाला है या जिसने कोई अजीब चिड़िया कि जिसकी आँखे फिरती हैं और चोंच से बोलती भी है या इंजन को जो किसी आले में बड़ी और छोटी रस्सियों पर होकर ताक़त पहुँचा रहा है, बनाया है, या जो कोई पोलर रीजन्स में जाने वाला है, इन सब को देखने और मिलने को हर शख़्स का दिल चाहता है और बड़ी उमंग और शौक़ उनसे मिलने का रखता है और ऐसे आदमी जो क़ुतुब का हाल वग़ैरा दरियाफ़्त करने का शौक़ रखते हैं, अगर कुछ ख़र्च भी पड़े तो करने को तैयार हैं, अपना घर बार बाल बच्चे छोड़ देते हैं, बल्कि जान की परवाह भी नहीं करते, जैसे यहाँ एक साहब सुपरिनटेंडेंट पुलिस ने हाल में लड़ाई में जाने की दरख़्वास्त की और दरख़्वास्त ना-मंज़ूर होने पर

फट से इस्तीफ़ा दे दिया और बतौर प्राइवेट सिपाही के लड़ाई पर गये। ऐसा गहरा शौक़ इस रचना को देख कर कि कैसी भारी और अजीब इसकी कारीगरी है, उस के करतार के दीदार का और जुस्तजू इस बात की कि वह कहाँ है और कैसा है, अगरचे मालूम है कि वह अन्तरजामी है और हाज़िर नाज़िर है, किसी के दिल में पैदा नहीं होता। हम लोगों में से जो परमार्थ में शामिल हुए हैं, कोई ऐसा सच्चा शौक़ रखता मालूम नहीं होता। ख़बर नहीं, किस पिछले संस्कार की वजह से और सन्त सतगुरु की दया से खींच लिये गये। इस में शक नहीं कि जो सतसंग में आये हैं, उनका कारज धीरे धीरे ज़रूर बनेगा और एक दिन धुर धाम में पहुँचाये जावेंगे मगर पूरा और गहरा शौक़ मालिक से मिलने और उसके दीदार का तो किसी बिरले ही जीव सुरतवंत को होगा और वही सच्चा भक्त और आशिक़ है। मगर जो थोड़ा भी ख़्याल कभी कभी उसके मिलने का आता रहे तो बहुत जल्द तरक़्क़ी परमार्थ की हो सकती है। इलाज इस शौक़ के पैदा होने का, यही संतों की जुगत की कमाई और सतसंग है। हम लोग तो परमार्थ में मिस्ल गँवारों और कुत्ते बिल्लियों के हैं, जैसे कि उनके सामने अगर कोई इल्म या कारीगरी का हाल बयान किया जावे या कोई अजीब कल रख दी जावे तो वह उसको क्या समझ सकते हैं, इसी तरह हम लोगों की समझ में यह अजीब कारख़ाना नहीं आता और न इसके चलाने वाले से मिलने का शौक़ पैदा होता है। वजह इस फ़र्क़ की कि मालिक के दीदार का इतना कम शौक़ बल्कि बिलकुल नहीं और संसार के तमाशों के देखने को ऐसी ज़बर चाह और शौक़ है, यह है कि यहाँ की रचना में यह जीव फ़ौरन लग जाता है, अगर्चे असल में कुछ इसको प्राप्त भी नहीं होता, मगर फ़ौरन रस आता है और परमार्थ में गो कि मालिक ने क़ुदरत की

किताब खोल रक्खी है और सब कुछ दिखा रक्खा है, मगर बाहरमुख होने से प्रतीत उसकी मौजूदगी और हाज़िर नाज़िर और आनन्द का भंडार होने की नहीं आती। अगर यह जीव इस दुनिया और सूरज और तारागन, नीज़ अपने आपे का, ख़्याल करे तो मालूम होगा कि कैसे क़ानून से सब कार्रवाई चल रही है और इस भारी कल यानी इंजिन के क्या क्या पुरज़े हैं और एक एक ज़र्रे में कैसी कैसी शक्ति और सुख मौजूद हैं, कैसा भारी इरादा और कारीगरी और मतलब समर्थ बनाने वाले का हर चीज़ में पाया जाता है। ख़ुद आदमी के जिस्म में किस किस तरह कार्रवाई हो रही है, किस तरह उसके हर हिस्से एक दूसरे के साथ काम करते हैं, कौन सी धार तमाम जिस्म को चला रही है, एक एक चक्र में कैसी बे-शुमार रचना है, इस जिस्म का हाल जानने में दुनिया के अक़लमन्द और डाक्टर लोग हैरान हो गये। सब कुछ लिखा पढ़ा और समझा मगर असल में कुछ नहीं मालूम हुआ। न उनके पास ऐसा औज़ार है कि भेद रचना का और इनसान के चोले का मालूम कर सके। वह तो जब तक अनुभव न जागे, किसी को मालूम नहीं हो सकता। संतों ने ही रचना का सब भेद बताया और जीवों के, उस वक़्त जब कि सुना, कुछ समझ में भी आया, मगर फिर भूल गये। अगर अनुभव जागे तो आप से आप सब हाल मालूम हो जावे। कुछ सिखाने समझाने की ज़रूरत न रहे। सतसंग करने से यह ताक़त धीरे धीरे हासिल हो सकती है और जब दृष्टि अन्तर की खोल दी जावेगी, छिन में सब हाल मालूम हो जावेगा। मगर जो कभी कभी ख़याल इस भारी रचना को देख कर और उस के क़ानून और कारीगरी को सोच कर उस के करता के दर्शन पाने का दिल में पैदा हो तो यह बहुत अच्छा है और इस से जल्द तरक़्क़ी परमार्थी हो सकती

है। इलाज इस शौक़ दीदार के पैदा होने और बढ़ने का यही संतों की जुगत का अभ्यास करना और सतसंग है, मगर पूरा २ शौक़ और चाह तो मालिक से मिलने की किसी बिरले परमार्थी में होती है। उस के दिल में सिवाय इस ख़्याल और चाह के दूसरे किसी क़िस्म के ख़्याल या चाह की गुंजाइश नहीं रहती है।

बचन २५

संत मत में एक दम चढ़ाई होने की महिमा नहीं है

१ — संत मत में एक दम चढ़ाई होने की महिमा नहीं है, क्योंकि इस में बेहोशी व ग़फ़लत रहती है। आहिस्ता आहिस्ता चढ़ाई होने में कि उसका नशा हज़म होता जावे और रास्ते की सब कैफ़ियत देखता जावे, बहुत फ़ायदा है। इस वास्ते जो लोग कि चढ़ाई के मुआमले में जल्दबाज़ी करते हैं, यह ठीक नहीं है। एक दम चढ़ाई होने में सुरत की डोरी नीचे लगी नहीं रहेगी। और महिमा इस बात की है कि दोनों काम जारी रहें यानी ऊँचे से ऊँचे मुक़ाम पर पहुँच कर भी उस का सिलसिला या ख़फ़ीफ़ डोरी नीचे के मुक़ाम से लगी रहे और जब चाहे, तब उसके ज़रिये से वापस आ सके। जो सुरत कि इस तरह जावेगी, वही सुरत कर्त्ता हो सकती है क्योंकि उसकी कार्रवाई कुल रचना में रहेगी।

राधास्वामी इधर उधर राधास्वामी

२ — लेकिन जो सुरत कि एक दम खिंच जावे और डोरी नीचे न लगी रहे, वह ऊँचे मुक़ाम पर पहुँच कर हंस

स्वरूप हो जावेगी, मगर करतार नहीं हो सकती, क्योंकि उसका सिलसिला नीचे की रचना से नहीं रहा। अक्सर लोग दुनिया में तारीफ़ करते हैं कि फ़लाँ शख़्स की सुरत एक दम खिंच गई, लेकिन संत मत में ऐसों की कुछ महिमा नहीं है। इसलिये राधास्वामी दयाल अपने बच्चों को जो उनकी सरन में आये हैं, आहिस्ता आहिस्ता चढ़ाते हैं और जिस क़दर उनके हाज़मे की ताक़त बढ़ती जाती है, उन को रस देते जाते हैं। अगर बाप लड़के को एक दम रुपया अशरफ़ी दे दे तो वह उसकी पतंग लाकर उड़ावेगा, इस वास्ते जब तक लड़के को तमीज़, क़दर और परख हीरे रुपये अशरफ़ी और पैसों की न आवे, तब तक उस को यह चीजें नहीं दी जाती हैं सो किसी को घबराना और जल्दबाज़ी न करना चाहिये।

३ — जो चीज़ कि हासिल की जाती है, उसमें जो सुख और आनन्द मिलता है वही बड़ी चीज़ है, मसलन जो इल्म हासिल किया जावे तो कुछ इल्म बड़ी चीज़ नहीं है, बल्कि उस इल्म का जो सरूर है, वह बड़ी चीज़ है, इसी तरह परमार्थ में किसी स्थान का खुलना या अंतरी सैर तमाशा कोई बड़ी चीज़ नहीं है, बल्कि सिमटाव और चढ़ाई का जो सरूर है, वह बड़ी चीज़ है और जो यह रस थोड़ा बहुत मिलता जावे तो यही नतीजा परमार्थ कमाने का है और इसको उससे तशफ़्फ़ी होनी चाहिये। अलावा इसके यह ख़याल करना चाहिये कि मालिक का क्या स्वरूप है। मालिक ऐन आनन्द स्वरूप, अपने में आप मगन, उन मुन दशा में है और यही दशा अभ्यासी की होती जाती है, तो फिर उसको शिकायत नहीं करना चाहिये और तसल्ली रखना चाहिये कि परमार्थ का जो नतीजा है, वह उस को मिलता जाता है। एक दम जो नहीं मिलता है, वह दया है। ज़रा से ही

रस में यह आपे से बाहर होने को तैयार होता है और जो एक दम ज़्यादा रस दिया जावे तो क्या हालत होगी?

४ — सवाल - अभ्यास में जो गुनावन उठती हैं, हरचन्द उनके रोकने की बहुत कोशिश की जाती है, लेकिन पूरी कामयाबी नहीं होती, इस का क्या सबब है?

जबाब - जो नक्ऱ्श अन्तर में मौजूद हैं, वह अभ्यास के समय गुनावन रूप होकर प्रकट होते हैं, सो जब तक यह नक्ऱ्श साफ़ न होंगे, गुनावन उठती रहेंगी। बड़ी दया है कि यह संचित कर्म गुनावन के ज़रिये से काटे जाते हैं। नहीं तो, प्रारब्ध कर्म होकर ज़्यादा तकलीफ़ देते। इलाज इसका यह है कि होशियारी के साथ अभ्यास और सतसंग करे और नाम के सुमिरन से गुनावन को काटे।

बचन २६

संत मत के ब-मूजिब ज़रूरी परहेज़

संत मत के ब-मूजिब परहेज़ यह दरकार है कि जो गृहस्थी हैं, वह सिवाय ज़रूरी सामान के जो कि उनके और कुटुम्ब के गुज़ारे के लिये काफ़ी हो, ज़्यादा ख़्वाहिश दुनिया के सामान की और प्राप्ती धन की न उठावें और अपने .फ़ुरसत के वक़्त को परमार्थी पोथी पढ़ने और दूसरी परमार्थी कार्रवाई में लगावें। और जो भेख हैं और उन्होंने घर बार मालिक से मिलने की ग़रज़ से त्याग दिया है, तो उन को अपना तमाम वक़्त परमार्थी कार्रवाई में ख़र्च करना चाहिये। जो रूखी सूखी रोटी मिल जावे, उसी को खाकर अपनी गुज़रान करें और कोई ख़्वाहिश संसार में मान बड़ाई और धन जोड़ने की न उठावें, नहीं

तो बहुत मार खायँगे क्योंकि ब-निस्बत गृहस्थियों के उन की ज़िम्मेदारी ज़्यादा है। जैसे किसी भेख का हाल है कि वह ख़ूब खाता पीता था और लोगों को दिक़ करता था यानी हर तरह की बदमाशी करता था। किसी महात्मा ने उसे समझाया कि ऐसा न कर, नहीं तो बहुत पछतायगा। मगर उसने न सुना। आख़िरकार उसका चोला छूट गया और फिर वह सांड़ होकर उसी जगह लोगों को सताने लगा और सुभाव ज़रा भी न बदला। लाचार लोगों ने इरादा किया कि उसको पकड़ें और खेत जोतने का काम लें। इस में भी उस ने हरम-ज़दगी की। हरचन्द मार पड़ती थी, मगर वह बैठ २ जाता था। आख़िर उन महात्मा को दया आई। वह आये और लोगों से कहा कि हम इस के कान में कुछ बात चीत करना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि अच्छा, कर लीजिये। तब महात्मा जी ने उसके कान में कहा कि क्यों बच्चा, इतनी हालत पर भी नहीं पछताते हो, हम तुमको समझाते थे, तुमने नहीं माना। यह सुन कर उसकी आँखों में आँसू भर आये और वह सीधा चलने लगा और कुछ दिनों में उसका चोला छूट गया और महात्मा की मेहर और दया से फिर उत्तम नर देह मिली और कुछ कारज उसके जीव का बन गया। जो भेख कि ग़ोल बाँधते हैं और रुपया ब्याज पर चलाते हैं या विद्या सीखने में कोशिश करते हैं और लोगों से ज़बरदस्ती रुपया लेते हैं और मुक़दमे-बाज़ी करते हैं, उन का ऐसा ही हाल होगा जैसा कि उस भेख का हुआ था।

भेख भेख को देख लजावे, सो भी कच्चा कर भक्ती।

कबीर जोगी जगत गुरु, तजे जगत की आस।
जो वह चाहे जगत को, तो जगत गुरू वह दास।।

* * * * * *

बचन २७

सतसंग में आपा ठानना या मान बड़ाई चाहना ना-मुनासिब है

जैसे कि कोई गहरी नींद में सो रहा है और कोई आकर उसे जगावे, जैसे कोई किसी वक़्त में उम्दा बाजा सुनने में मस्त हो रहा है और कोई उसे हटावे, जैसे कोई शख़्स ख़ूब ग़ौर से कोई चीज़ पढ़ रहा है और कोई उसे आकर छेड़े, जैसे मछली को कोई शख़्स पानी से निकाल कर ज़मीन पर डाल दे, जैसे बालक दूध पी रहा है और कोई उसे माता की छाती से हटादे, तो इन सब सूरतों में विघ्न कारक कैसा बुरा मालूम होता है और कैसे भारी पाप का भागी होता है? इसी तरह जहाँ सतसंग कुल मालिक का हो रहा है और जीव उमंग और शौक़ के साथ भक्ति में लगे हैं, वहाँ जो कोई अपनी मान बड़ाई की चाह लेकर जावे और आपा ठाने तो वह कैसा बुरा मालूम होगा? यह आपा सबसे बुरा ऐब है। और ऐब और क़सूर तो माफ़ भी हो सकते हैं, मगर अहंकार मालिक को मुतलक़ पसन्द नहीं है। इस को तो ज़रूर हटाना और घटाना चाहिये। इस को तो मालिक ने अपने देश से निकाला है, अब वह इस को कैसे दख़ल दे सकता है? और जहाँ कहीं यह प्रकट होता है तो मालिक ज़रूर इसको ठोकर लगाता है। अगरचे यह ऐब थोड़ा बहुत सब में है, मगर उसके लिये माफ़ी माँगना और झुरना और पछताना तो ज़रूर सब को चाहिये,नहीं तो दुरुस्ती कैसे होगी?

* * * * * *

बचन २८

काल सतसंग में अक्सर विघ्न डालता रहता है

काल अपना विघ्न डाले बग़ैर नहीं रहता। जब देखता है कि सतसंग निर्मल और निर्विघ्न हो रहा है, तब ही कोई झगड़ा बखेड़ा खड़ा कर देता है। हुज़ूर साहब के वक़्त में भी अक्सर ऐसे झगड़े बखेड़े आते रहते थे। मगर वह तो समर्थ थे। लेकिन हम लोगों को बहुत सँभल कर चलना चाहिये और हर एक झगड़े बखेड़े को रोकना चाहिये। अगर कोई दो गाली भी हम को दे जावे तो भी छिमा करनी चाहिये। अब जो है, वह साध संग है। इसमें बड़ी होशियारी करना लाज़िम है।।

बचन २९

मन को साफ़ व निश्चल करने का जतन

१ — सब मतों में कोई न कोई जतन या अभ्यास मन को साफ़ और निश्चल करने के लिये बताया है। किसी मत में प्राणायाम, किसी में मुद्रा का साधन और किसी में दिल पर ज़रब देना वग़ैरा बताया है और राधास्वामी मत में भी ऐसा अभ्यास बताया है कि जिससे मन की सफ़ाई हो और निश्चलता आवे, लेकिन असल में प्रीति का पैदा होना ज़रूरी काम है। और मतों में सफ़ाई थोड़ी बहुत हो जाती है, लेकिन प्रीति नहीं जागती। प्रीति बग़ैर सतसंग के नहीं पैदा होगी। और प्रीति का स्वरूप यह है कि दिल में चाह राधास्वामी

दयाल के दरशनों की, शब्द के सुनने और सतसंग करने की विशेष पैदा हो यानी बग़ैर इन बातों के उसको चैन न आवे। दुनिया में भी जब दो शख़्सों में प्रीति होती है तो एक दूसरे को देखे और उसके साथ बैठे उठे या बात चीत किये बग़ैर चैन नहीं पड़ता। प्रेम का दरजा प्रीति से बढ़ कर है। अव्वल बख़्शिश प्रीति की होगी और फिर प्रेम की। प्रीति जब तक नहीं जागेगी, तब तक जितनी कार्रवाई की जावे, कुछ ज़्यादा फ़ायदा नही दे सकती। अगर अभ्यास में भी सिमटाव होता है, लेकिन जो प्रीति नहीं जागी तो वह भी ज़्यादा कार-आमद नहीं है। मन में तड़प और पीर उठनी चाहिये। जब यह हालत हो जावेगी तो सब काम बन जावेगा और सारे विकारी अंग दूर हो जावेंगे और सकारी अंग ख़ुद-ब-ख़ुद जाग उठेंगे। वेदांतियों ने बड़ा धोखा खाया। उनके दिल में प्रीति नहीं जागती क्योंकि जब वह अपने आप ही को ब्रह्म बताते हैं तो फिर प्रीति किस से करें। मगर इनसे एक सवाल पूछा जावे कि तुमने किस प्रमाण से जाना कि हम ब्रह्म हैं और जगत मिथ्या है? जगत को नाशमान देख कर ही तो कहा कि यह मिथ्या है। इसमें मन और इन्द्रियाँ और बुद्धि के औज़ार काम में लाये गये और जो नतीजा निकाला गया, उसके प्रमाण मन और बुद्धि हैं लेकिन मन और बुद्धि अंतःकरन के अंग हैं और अन्तःकरन भी सुषुप्ति में नाश हो जाता है, इस वास्ते जिन औज़ारों से इस जगत को नाशमान या मिथ्या माना और अपने को ब्रह्म समझा, वह औज़ार ही नाशमान हैं, तो जो नतीजा कि उनसे निकाला गया, वह कैसे दुरुस्त हो सकता है?

२ — पुराने ज्ञानियों ने जो जगत को मिथ्या कहा है और ब्रह्म को सर्व-व्यापक बताया है, उन लोगों ने यह नतीजा इस मन और बुद्धि से नहीं निकाला, बल्कि

अभ्यास करके वह ऐसे मुक़ाम पर पहुँचे कि जहाँ से उनको ऐसा नज़र आया। बग़ैर अनुभव जागे, यह बात हरगिज़ नहीं मालूम हो सकती। आज कल के ज्ञानी बिलकुल बाचक हैं। अभ्यास वग़ैरा तो कुछ करते नहीं, ज्ञान के ग्रन्थ पढ़ कर ज्ञानी बन बैठते हैं। ग्रन्थों में लिखा है कि जगत भर्म है। बस भर्म के लफ़्ज़ ही ने उनको भर्म में डाल रक्खा है। लेकिन उन ग्रन्थों में यह भी लिखा है कि बग़ैर चार साधन किये कोई उन ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकारी नहीं है। इस बात पर कोई ख़याल नहीं करता। और जो विचार वग़ैरा करते हैं, वह भी सब इसी मन के घाट का है।

बचन ३०

जितनी खोज व मेहनत के बाद संत मत मिला है, उतनी ही उसकी क़दर होगी

१ — दुनिया में जब कोई शख़्स किसी चीज़ की तलाश करता है और उसमें तन मन धन को ख़र्च भी करता है और जब वह चीज़ उस को मिल जाती है, तो उसको किस क़दर उस की क़दर होती है और कैसी प्यारी वह चीज़ लगती है, इसी तरह परमार्थ में भी जिसने जिस क़दर खोज और मेहनत सत्य वस्तु के हासिल करने के लिये की है, उसी क़दर उस को क़दर संत मत की होगी या अगर जिसने कि अव्वल कुछ खोज और तन मन धन का सर्फ़ परमार्थ की तलाश में नहीं किया है और मौज से सतसंग में आन मिला है तो अगर सच्चा है, तो परमार्थ में शामिल होने के बाद ज़रूर उसके हासिल करने में और मत के समझने में मेहनत

और ख़र्च करेगा। ग़रज़ यह है कि बग़ैर तलाश और मेहनत के जो चीज़ हासिल भी हो जावे तो उसकी कुछ क़दर उस के चित्त में नहीं होती और जो चीज़ कि मेहनत और सर्फ़ से हासिल होती है, वह बड़ी प्यारी लगती है और उसमें भारी अटक इसकी हो जाती है। इस वास्ते परमार्थी लोगों को चाहिये कि परमार्थ के हासिल करने में हमेशा अपना तन मन धन लगाते रहें और कभी ख़ाली न बैठें क्योंकि जो ख़ाली या ख़ामोश बैठ गये तो उन में और दुनियादारों में कोई फ़र्क़ नहीं रहा क्योंकि दुनिया में भी तो लोग एक मत को बग़ैर सोचे समझे पकड़ कर ख़ामोश हो जाते हैं और फिर कोई खोज और मेहनत नहीं करते। यह लोग टेकी कहलाते हैं, लेकिन परमार्थी को टेकी नहीं बनना चाहिये। जब तक सच्चा परमार्थ मिला नहीं है तब तक तो उसकी खोज में मेहनत करे और जब पता उसका लग जावे तो उसके कमाने में तन मन से कोशिश करे यानी मत के समझने और निर्णय करने और अभ्यास करने और अपने मन और हाल चाल की निरख परख करने में बराबर कोशिश करता रहे। अगर ऐसा नहीं करता है तो समझना चाहिये कि उस का भाग बहुत ओछा है। लेकिन जो सतसंग बराबर करता रहा तो रफ़्ते रफ़्ते इस की ख़्वाहिश उस के दिल में पैदा होगी और तब सच्चे परमार्थियों की तरह वह भी काम करने लगेगा। इस बात की ख़्वाहिश पैदा होना, यह भी अव्वल दया है, क्योंकि जब चाह दिल में पैदा होगी, वह ज़रूरी करनी भी करावेगी।

२ — यह जीता जागता मत है। और मतों के मुवाफ़िक़ नहीं है। और मतों में टेक और नेम के मुवाफ़िक़ कार्रवाई होती है, लेकिन जो इस मत में भी

ऐसी ही कार्रवाई करता रहा तो चाहे जितने दिन इस मत में पड़ा रहे, कुछ फ़ायदा नहीं होगा। जब दर्द के साथ कार्रवाई करेगा, तब कुछ काम बनेगा यानी बग़ैर दर्द और असली चाह के कुछ काम नहीं बन सकेगा।

३ — जब सच्चे परमार्थ में जीव शरीक हो जावे तो उसको चाहिये कि मत के अच्छी तरह निर्णय करने में और मालिक के जलवा देखने और उसके दीदार के हासिल करने में दिलोजान से कोशिश करे। अपने मन की चाल की निरख परख करना और उसकी गढ़त करना बहुत ज़रूर है। जब तक मन की चौकीदारी नहीं करेगा और उसकी गढ़त के लिये हर एक बात की मसलन रोग सोग निरादर निर्धनता वग़ैरा की बरदाश्त करने को तैयार न होगा तब तक कैसे तरक़्क़ी हो सकती है? और गढ़त के लिये इस क़िस्म की हालतें ज़रूर बरदाश्त करनी पड़ेंगी, क्योंकि अच्छी हालत में तो सब ख़ुश रहते हैं और मालिक की तरफ़ भाव भी रहता है और उसके हुकम और मौज के साथ मुवाफ़क़त भी करता है, लेकिन जब कोई उलटी हालत आवे, उस वक़्त मालूम पड़ता है कि कहाँ तक उसकी सच्ची प्रीति मालिक के चरनों में आई है और कहाँ तक वह उसकी मौज के साथ मुवाफ़क़त कर सकता है और किस क़दर बंधन उसका अपने तन मन और धन में मौजूद है।

४ — बग़ैर बंधन टूटे कुछ काम नहीं हो सकता और जब बंधन मालिक तोड़ेगा तो इन चीज़ों पर चोट पड़ेगी। सच्चे परमार्थी को चाहिये कि वह आप ही अपने बंधनों को ढीला करता जावे यानी हमेशा सोच विचार से काम लेवे और देखता रहे कि किस चीज़ में उस का बंधन है। और सतसंग के बचनों की मदद से उन को ढीला करता रहे। क्योंकि एक दिन तो सब को छोड़ना ही पड़ेगा।

और जो वह अपने आप इस तरह सोच विचार नहीं रक्खेगा तो राधास्वामी दयाल जिन को उस के जीव के कल्यान का फ़िक्र है, उस का इलाज करेंगे और जिस रीति से मुनासिब समझेंगे, उस के बंधनों को ढीला करेंगे और उसके मन को गढ़ेंगे। इस मत में शामिल होकर कोई ख़ाली नहीं रह सकता। इसलिये जीव को चाहिये कि हमेशा अपने हाथ पाँव हिलाता रहे और जैसी उलटी सुलटी हालत आवे, उस को ऐन दया मालिक की समझ कर बरदाश्त करे। अलबत्ता जो बरदाश्त न होवे तो चरनों में प्रार्थना करे कि बरदाश्त की ताक़त दें लेकिन मौज के साथ मुवाफ़क़त करने को हर वक़्त तैयार रहे। मालिक जो कुछ करता है, पहले समझ लेता है कि उस की बर्दाश्त होगी या नहीं। भूल चूक अलबत्ते होगी, लेकिन उसके बाद झुरना पछताना और आइन्दा के लिये होशियार रहने का इरादा करना और चरनों में मुआफ़ी के लिये प्रार्थना करते रहना चाहिये। इस तरह रफ़्ते रफ़्ते सफ़ाई होगी और जीव का काम बन जावेगा।

५ — मरते वक़्त सुरत और मन को तमाम पिंड से खिंच कर एक दरवाज़े में हो कर गुज़र करना पड़ता है और उस वक़्त संसारियों को बड़ी तकलीफ़ और कष्ट होता है। अब देखो कि राधास्वामी मत में यही अभ्यास जीते जी कराया जाता है। अगर इस अभ्यास को शौक़ के साथ जीते जी नहीं करेगा तो फिर मरने के वक़्त उस को भी वैसी ही तकलीफ़ होगी। फिर इसमें और दुनियादार में क्या फ़र्क़ हुआ? इसलिये इस को चाहिये कि मरने से पहले इस रास्ते को जिस क़दर हो सके साफ़ करले और अपने मन को पतला करले जिससे मौत के वक़्त आनन्द के साथ उस द्वारे में जावे और फिर शब्द को सुन कर और स्वरूप का दरशन करके महा आनन्द को प्राप्त होवे।

* * * * * *

बचन ३१

असल में जीव को परमार्थ की चाह नहीं है

१ — असल में जीव को परमार्थ की चाह नहीं है। अगर चाह होती तो सच्चे परमार्थ का पता पाकर और कुल मालिक का भेद मालूम करके बड़े शौक़ के साथ परमार्थ की कमाई में लगता। दुनिया में देखो कि जो लोग इल्म पढ़ते हैं और उनको कोई नई बात मालूम होती है तो कैसे शौक़ के साथ उस के दरियाफ़्त करने में हमा-तन मसरूफ़ हो जाते हैं। नई नई बातें देखने की ख़ातिर और पोलर रीजन्स में जाने के वास्ते लोग कैसी कोशिश करते हैं और कैसे अपनी जान को ख़तरे में डालते हैं। दुनिया के कामों में तो ऐसा शौक़ नज़र आता है, मगर परमार्थ की ज़रा सी भी ख़्वाहिश पैदा नहीं होती। वजह इसकी यही है कि मन का अंग बिल्कुल बाहरमुखी है। जब किसी दुनिया के काम की चाह पैदा होती है तो उस में तो यह मदद देता है, लेकिन परमार्थ की चाह से मुख़ालिफ़त करता है और जहाँ तक मुमकिन होता है, उसमें ख़लल डालता है। जब दुनिया की ज़रा ज़रा सी चीज़ों के देखने के वास्ते इस क़दर शौक़ ज़ाहिर करता है तो सुरत की ताक़त जगाने के वास्ते किस क़दर कोशिश और मेहनत करनी चाहिये? क्योंकि सुरत की ताक़त सब में बड़ी है और सब पर इस की हुकूमत है और सब रचना इसी क़ुव्वत से हुई है और क़ायम है। जब तक कि तेज़ चाह और दर्द परमार्थ और मालिक के दर्शनों का दिल में पैदा न होगा, तब तक मालिक के दर्शन हरगिज़ प्राप्त नहीं होंगे और जो

कार्रवाई राधास्वामी मत की है, वह हरगिज़ दुरुस्ती के साथ नहीं हो सकती है। लेकिन ऐसे दर्दी और पूरी चाह वाले बिरले हैं। हम लोग तो कुछ भी चाह परमार्थ की नहीं रखते। मामूली अभ्यास कर लेना और टेक के मुवाफ़िक़ सतसंग में शरीक हो जाना काफ़ी नहीं है। मगर राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से हम लोगों का काम आहिस्ते आहिस्ते बना रहे हैं। अगर उन की निगाह न होवे तो हम लोग कुछ भी नहीं कर सकते हैं।

२ — काल पुरुष भी बड़ा ताक़तवर है और सब जीवों को खाता चला जाता है और माया भी बड़ी ज़बरदस्त है। बड़े बड़े जाल भोग विलास के जीवों के लिये रचे हैं, जिन से किसी को बचने की ताक़त नहीं है, क्योंकि पिछले महात्माओं के हाल से मालूम होता है कि छिन में उन की कमाई को लूट लिया। हम लोगों की क्या ताक़त है कि ऐसे ज़बरदस्त दुश्मनों से बचाव कर सकें? राधास्वामी दयाल ही अपने सेवकों को आप बचाते हैं और उन्होंने काल को हुक्म दे रक्खा है कि इस मत वालों को सिवाय औसत दरजे के गुज़रान के कोई चीज़ इस दुनिया की ज़्यादा न दी जावे, क्योंकि अगर ज़्यादा दौलत या हुकूमत वग़ैरा इन को मिल जावे तो इनके भी गुमराह होने का ख़ौफ़ है।

३ — पिछले अभ्यासी जो अपने पुरुषार्थ पर ज़्यादा भरोसा रखते थे और जिनका कि इष्ट पक्का नहीं था, उन को काल और माया ने ख़ूब धोखा दिया, क्योंकि वह ऐसे बच्चों के मुवाफ़िक़ थे जिन के माँ बाप न हों। जो इन सब बातों पर ग़ौर किया जाता है तो मालूम होता है कि किस तरह से राधास्वामी दयाल हम लोगों को सम्हालते रहे हैं और कैसे कैसे भारी दुश्मनों से बचाया

है और अब भी वही रक्षा और सँभाल करेंगे। उनकी मौज है कि सतसंग खड़ा हो और परमार्थ जीवों से करा कर उन का उद्धार किया जावे। इसलिये निरास नहीं होना चाहिये और कम अज़ कम दो दफ़े अभ्यास रोज़ाना और पोथी का पाठ करते रहना चाहिये। वह अपनी दया से आप हम लोगों का काम बनावेंगे और आहिस्ते आहिस्ते तरक़्क़ी देते जावेंगे।।

बचन ३२

काल तीन लोक में चाहे जिसे तकलीफ़ दे सकता है लेकिन जो राधास्वामी दयाल की सरन में आया है उसका वह नुक़सान नहीं कर सकता है

काल की हुकूमत तीन लोक में है। इन तीनों लोकों में जो वह चाहे, कर सकता है और छिन में जिस क़दर तकलीफ़ जिस को चाहे, दे सकता है और वह नहीं चाहता है कि कोई जीव उस की हद हुकूमत से बाहर जावे। लेकिन राधास्वामी दयाल से वह और माया डरते हैं और उनका हुक्म मानते हैं। जो कोई कि राधास्वामी दयाल की सरन में आया, वह उसका कोई नुक़सान नहीं कर सकते और न उसको रोक सकते हैं जैसे कि जिस के पास बादशाह का परवाना है, उस को कलेक्टर मजिस्ट्रेट गो कि वह उससे मुखालिफ़ हों, मगर रास्ते में अटका नहीं सकते। अलबत्ते इतना हुक्म है कि जो महसूली चीज़ सुरत शब्द अभ्यासी के पास हो, उसकी चुंगी यानी महसूल लेवें और महसूली चीज़ें दुनिया की

चाहें और बन्धन हैं। जो कोई इन को लेकर चलेगा, उस को काल ज़रूर रोकेगा और उसका महसूल लेना यह है कि उस चाह के ब-मूजिब उस सामान में जिस की वह चाह है, अटकाना और जिस किसी के पास कि महसूली चीज़ नहीं है, वह बे-तकल्लुफ़ चला जावेगा। कोई चाहे कि महसूल का माल छिपा ले सो काल के सामने नहीं छिपा सकता। देखने में आता है कि काल पुरुष जो तीन लोक में सर्व समर्थ है, जिस को जो तकलीफ़ चाहे दे सकता है। मगर उसके सर पर राधास्वामी दयाल हैं और उन का हुक्म है। जो उन की सरन में आये हुए जीव हैं, उनको वह भारी तकलीफ़ नहीं दे सकता और न रोक और अटका सकता है।

बचन ३३

परमार्थ में अंतरी हालतों का हासिल होना मुश्किल समझ कर निराश न होना चाहिये

१ — जब किसी नट को कोई अजीब कला खेलते देखते हैं या किसी बड़े रियाज़ी-दाँ को कोई अजीब और मुश्किल सवाल निकालते देखते है तो बड़ा ताज्जुब मालूम होता है और ख़्याल करते हैं कि इन कामों में इनको बड़ी तकलीफ़ होती होगी, इसी तरह संतों की बानी में जो अन्तर की हालतें लिखी हैं, उनको पढ़ कर बड़ा ताज्जुब आता है कि ऐसी हालत कैसे हो सकती है और अगर हो सकती है तो बड़ी मुश्किल से होगी और यह ख़याल करके परमार्थ के कमाने से रुक जाते हैं। यह

संसारियों का हाल है। और जो लोग कि परमार्थ में शरीक होकर अभ्यास कर रहे हैं, वह भी अक्सर इन हालतों को देख कर निरास हो जाते हैं कि ऐसी हालत का आना बड़ा मुश्किल मालूम होता है, लेकिन जो ग़ौर किया जावे तो मालूम होगा कि निराश होने की कोई वजह नहीं है, क्योंकि शुरू में सब कामों में चाहे संसारी हों या परमार्थी, थोड़ी बहुत कठिनता और तकलीफ़ होती है, लेकिन जब अभ्यास काफ़ी हो जाता है तो फिर उन कामों में कोई तकलीफ़ नहीं होती, बल्कि और ख़ुशी और रस आता है। इस वास्ते चाहिये कि नेम से अभ्यास करता जावे। करते करते ऐसी हालत कि जिस पर पहले ताज्जुब आता था, ख़ुद-ब-ख़ुद आ जावेगी। नट की कला खेलने वाले या ग़ुब्बारे पर चढ़ने वाले या और मुश्किल काम करने वाले भी तो शुरू से इन कामों को करते हैं और बराबर अपना काम जारी रखते हैं, फिर जब उसका अभ्यास पूरा हो जाता है, तब उन को इन कामों के करने में कोई तकलीफ़ नहीं होती।

२ — असल मतलब इस बचन का यह है कि हर एक काम को शुरू में देखने से बड़ा ताज्जुब होता है, लेकिन जो उस को किया जावे तो रफ़्ते रफ़्ते वह काम सहज हो जाता है। निराशता का आना परमार्थ में बहुत ही ख़राब है। इस वास्ते निराश हरगिज़ नहीं होना चाहिये क्योंकि जो निराश हो गया, वह कुछ नहीं कर सकता।

३ — जो शख़्स कि राधास्वामी मत में शरीक हुआ है और इसके भेद को थोड़ा बहुत समझ लिया है तो उस को चाहिये कि अपना अभ्यास बराबर किये जावे और कभी निराश न हो। एक दो तीन, हद चार जनम में उसका काम ज़रूर पूरा बन जावेगा और परमार्थी की

जितनी हालतें बानी में दर्ज हैं, वह सब आप ही आप आती जावेंगी।

४ — परमार्थी को चाहिये कि चन्द संजम जो बहुत ज़रूरी हैं, ज़रूर करे, क्योंकि बग़ैर इन संजमों के परमार्थ की तरक़्क़ी नहीं हो सकती।

५ — अव्वल यह है कि खान पान का बहुत ख़याल रक्खे। जो चीज़ें कि ज़्यादा ताक़त वाली हैं, मसलन घी मेवा वग़ैरा उनका ज़्यादा इस्तेमाल न करे क्योंकि इनसे शरीर ज़्यादा पुष्ट होता है और जब शरीर में ज़्यादा ताक़त आवेगी तो ज़रूर मन चंचल होगा और नई नई बातें करने को दिल चाहेगा और इस क़दर तरंगें ज़बर उठेंगी कि उनको न रोक सकेगा और न अभ्यास में बैठ सकेगा। अलावा इसके जितनी भूख हो उससे दो तीन ग्रास कम खाना चाहिये और मामूली हल्का आहार खाना चाहिये, मसलन दाल रोटी चावल और एक या दो तरकारी और अभ्यास करने वाले को हर एक शख़्स का खाना बे-तकल्लुफ़ ग्रहण करना नहीं चाहिये, क्योंकि जो भेख कि इधर उधर का खा लेते हैं तो उनके मन और शरीर बड़े चंचल और ज़बर हो जाते हैं।

६ — दूसरे संग का संजम भी करना चाहिये। दुनियादारों, हुकूमत वालों या धनवानों या दुनिया की मान बड़ाई और दूसरे कामों में जो लोग बे-तकल्लुफ़ बरतते हैं, उन का संग परमार्थी को नहीं करना चाहिये। गृहस्थियों को जो अपने रोज़गार या कारज व्यवहार की वजह से उन का संग करना पड़े तो कारज मात्र करना चाहिये, लेकिन उन की और बातों में हरगिज़ शरीक नहीं होना चाहिये।

७ – तीसरे, अभ्यासी की चाह भी ठीक होनी चाहिये। सिवाय निर्मल परमार्थ के हासिल करने के और कोई चाह नहीं रहनी चाहिये। संसारी चाहें, तरक़्क़ी दुनिया, नामवरी वग़ैरा की बिलकुल हटा देनी चाहिये। सिर्फ़ जिस क़दर कि औसत दर्जे के गुज़ारे के वास्ते ज़रूर है, उतनी चाह तो उठानी चाहिये, इससे ज़्यादा जो ख़्वाहिश होगी, वह परमार्थ में विघ्न कारक होगी।

८ – अब जिन लोगों के पहिले दो संजम यानी खान पान और संग दुरुस्त होंगे, उनकी चाह और रहनी भी दुरुस्त होगी और जिनके यह संजम दुरुस्त न होंगे, उन की चाह भी दुरुस्त न होगी। परमार्थ में यह संजम बहुत ज़रूरी हैं। इस के अलावा और भी झीने या सूक्ष्म संजम हैं कि जिन का करना ज़रूर है लेकिन अव्वल में यही तीन संजम बहुत ज़रूरी हैं। शुरू में इनका बहुत ख़याल करना चाहिये। जो इन संजमों का ख़याल न करेगा, उस को अभ्यास में कुछ फ़ायदा हासिल न होगा, कोरा का कोरा रहेगा, अगरचे मालिक ख़ाली उसको भी नहीं छोड़ेगा, लेकिन उस को कष्ट और दण्ड सहना पड़ेगा। संसारी चाहें और बन्धन आहिस्ते आहिस्ते दूर करते जाना चाहिये और फिर परमार्थी चाहें भी घटानी पड़ेंगी यानी उस की ऐसी हालत हो जावेगी कि किसी परमार्थी काम में भी बहुत पकड़ नहीं रहेगी। जो इन संजमों को करेगा, उस का परमार्थी रास्ता सुखाला चलेगा, वरना तकलीफ़ उठावेगा। कुल चाहों से इस का चित्त उपराम हो जाना चाहिये और जो कुछ मौज से ज़हूर में आवे, उस में इस को कुछ दुख सुख न व्यापे यानी कमाये हुए बेंत की तरह इसका मन हो जावे कि जिधर चाहो उसे मोड़ लो लेकिन यह हालत जब होगी कि जब सुरत का घाट बदलेगा।

* * * * * *

भाग दूसरा

निर्णय व भेद मत का

बचन ३४

चैतन्य शक्ति की अपार प्रबलता का अनुमान और एक शख़्स के सवालों के जवाब

१ — चैतन्य शक्ति बड़ी प्रबल है। सुरत अंश जो कि देह में आकर फँसी है, हरचन्द क़ैद में है, तो भी ऐसी अजीबो ग़रीब कार्रवाई उसकी है कि अक़ल दंग हो जाती है। जो सिद्धि शक्ति हैं, वह भी उससे प्रकट होती हैं। सिद्धि शक्ति कई क़िस्म की होती हैं।

(१) अणिमा यानी चाहे जितना छोटा हो जाना जैसे मक्खी या मच्छड़ का रूप धारन करना।

(२) महिमा यानी चाहे जितना बड़ा हो जाना जैसे हाथी या राक्षस बन जाना।

(३) लघिमा यानी चाहे जितना हलका हो जाना।

(४) गरिमा यानी चाहे जितना भारी हो जाना।

(५) प्राप्ति यानी चाहे जहाँ पहुँच जाना।

(६) प्राकाम्य यानी सर्व समर्थ हो जाना।

(७) ईशित्व यानी सब पर हुकूमत कर सकना।

(८) वशीकरण यानी दूसरे को अपने वश में कर सकना।

२ — जब इसको मालूम होता है कि चैतन्य जो कि ज़र्रा और किनका है, उस में इस क़दर शक्ति है कि राई से पहाड़ और पहाड़ से राई हो सकती है, तब उस अपार समुद्र चैतन्य की शक्ति और सर्व समर्थता का थोड़ा बहुत अनुमान कर सकता है और तब इस को यक़ीन होता है कि जो कुछ होता है, मालिक की मौज से होता है और हर हालत में मौज से मुवाफ़क़त करता है और मालिक को हाज़िर नाज़िर देखता है। निरन्तर सतसंग और अभ्यास करने से इस को मालिक की अपार क़ुदरत और सर्व समर्थता की परख पहिचान आ सकती है। अभ्यास में पहले चैतन्य धार के खिंच जाने से ऐसा मालूम होता है कि दम निकल गया, पर जब ऊपर से विशेष चैतन्य की धार आती है, तब रस और आनन्द आता है, शब्द गाजने लगता है। उस वक़्त गोया इसके अन्तर में बधाई बजने लगती है।

बजी बधाई हर्ष समाई, भाग चला वैराग।
भक्ति भावनी निर्मल करनी खेलत निज कर फाग।।

३ — सवाल—शब्द किसको कहते हैं?

जवाब—चैतन्य धार में जो धुन हो रही है, उसको शब्द कहते हैं। मगर शब्द शब्द में भेद है। एक रंडी का शब्द होता है। दूसरा साध महात्मा का शब्द है। दोनों के असर में बड़ा फ़र्क़ है। इसी तरह काल और दयाल के शब्द हैं। उपदेश के वक़्त भेद बतलाया जाता है, और भी जो विघ्न पेश आते हैं, उन सब का बयान किया जाता है।

अन्तर में उस की परख पहचान यह है—

जो निदा खैंचे है ऊँचे को तुझे।
जान वह धुन आई ऊँचे से तुझे।।

सुन के जो आवाज़ जागे कामना।
काल की आवाज़ है घर घालना।।

शब्द २ का भेद नियार।सो गुरु तुझ से कहें सम्हार।

४ — पातंजल शास्त्र में दस प्रकार का शब्द कहा है। मगर निर्णय नहीं किया है कि कौन काल का शब्द है और कौन दयाल का शब्द है। वेद शास्त्र में प्रवृत्ति और निवृत्ति का ज़िक्र है, मगर प्रवृत्ति यानी दुनिया के बन्दोबस्त और क़ानून का ज़िक्र ज़्यादा है और निवृत्ति यानी नजात का ज़िक्र थोड़ा है, मसलन वेद में कर्मकांड के श्लोक अस्सी हज़ार हैं, यह प्रवृत्ति है और उपासना कांड के श्लोक सोलह हज़ार हैं और सिर्फ़ चार हज़ार निवृत्ति यानी ज्ञान कांड के श्लोक हैं और संत मत में सिर्फ़ निवृत्ति का ज़िक्र है।

५ — गीता में कृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा था कि वेद की हद से जो कि तीन गुन से मिला हुआ है, न्यारा हो, यानी उसके ऊपर स्थान हासिल कर और सब कर्म धर्म छोड़ के एक मेरी सरन ले तब काम बनेगा। और जब तक जीव वर्णाश्रम के कर्म और धर्म यानी उपासना में फँसा हुआ है, तब तक वेद का दास है यानी उस को वेद के कहने पर चलना पड़ता है और जब माया और तीन गुन की हद से निकल जायगा, तब वेद के सिर पर उसके चरन होंगे, यानी यह वेद के कर्त्ता का कर्त्ता हो जायगा और उसका हुक्म वेद के हुक्म के ऊपर होगा।

त्रैगुणविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन

अर्थ - तीन गुण से मिला हुआ जो वेद है, उससे हे अर्जुन! तू न्यारा हो और जहाँ तीन गुण नहीं हैं, वहाँ चल।

वर्णाश्रमाभिमानेन, श्रुतिदासो भवेन्नरः
वर्णाश्रमविहीनश्च, श्रुतिपादोथ मूर्ध्वनि।।

अर्थ - जिस मनुष्य को कि गृहस्थाश्रम के कर्म धर्म का अभिमान है, वह वेद का दास है और जो कि वर्णाश्रम से रहित है, उस के चरन वेद के सिर पर हैं।

अगुन सगुन दोउ ब्रह्म सरूपा। ब्यापक सत् चित आनन्द रूपा।
मोरे मत बड़ नाम दुहूँते।।

ब्रह्म राम ते नाम बड़, वरदायक वरदान

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोट खल कुमत सुधारी।।
कहँ लग कहूँ नाम प्रभुताई। राम न सके नाम गुन गाई।।

मोरे मन प्रभु अस विश्वासा। राम से अधिक राम कर दासा।

गुरु से बड़ नहीं अनामी।

कोटि जनम लग रगड़ हमारी। बरूँ शब्द (शम्भु) नहि रहों कुवारी।।

अर्थ - करोड़ जनम तक कोशिश और जतन करूँगी, शब्द को बरूँगी, नहीं तो कुँवारी रहूँगी। यह कड़ी रामायन की है। उस में पार्वती ने शम्भु यानी शिव से शादी करने की ख़्वाहिश इस तरह ज़ाहिर की। ऐसे ही यहाँ भक्त जन का प्रण शब्द गुरु से मिलने के लिए होता है।

६ — कहने का मुद्दा यह है कि वेद शास्त्र की सुनी सुनाई बात की लीक लोग पीटते चले आते हैं, मगर लिखे पढ़े लोगों के सामने अगर लड़कों की पुस्तक रक्खेंगे तो वह कैसे मानेंगे? संतों के पास बड़े बड़े पंडित और ज्ञानी आये, पर सब क़ायल होकर गये। मैं तो संतों का दास हूँ। सो अभी मेरे लड़के की शादी में जितने यहाँ

के बड़े पंडित हैं, आये थे। मैंने उन से पूछा, परमाणु किसको कहते हैं। कहा कि परमाणु अगोचर है यानी इन इन्द्रियों से नहीं लखा जाता है। मैं ने कहा, यह तुम्हारा कहना कथनमात्र है, तोते की कहानी है, कैसे माना जावे, स्वतः प्रमाण दो तसदीक़ के साथ। अगर परमाणु अगोचर है तो तुम जो अन्तःकरन यानि इन्द्रियों के घाट पर बैठ कर कहते हो, वह भी क़ाबिल इत्मीनान नहीं है। हम किसी को नहीं मानते हैं, न वेद शास्त्र, न पुरान, न क़ुरान, न अंजील, न कबीर साहब, न शम्स-तबरेज़ और न राधास्वामी को। सुनो, हम अपने मत का स्वतः प्रमाण देते हैं यानी इन आँखों से जो नज़राई पड़ता है, उसी के मुवाफ़िक़ बयान करते हैं।

७ — यहाँ दो पदार्थ हैं। जड़ और चैतन्य। जहाँ तक जड़ता यानी माया है वहाँ तक आवागमन है क्योंकि माया एक सूरत पर क़ायम नहीं रहती है। निर्मल चैतन्य देश अमर अजर है, क्योंकि चैतन्य हमेशा एक रस क़ायम रहता है। जितनी शक्तियाँ हैं, सब की धारें और सब के भंडार हैं और सब में आवाज़ है। चैतन्य भंडार की जो धार है, उसकी धुन को पकड़ो और जिस रास्ते से कि स्वप्न में और मरते वक़्त जाते हैं, उसी रास्ते चलो। यहाँ तीन चीज़ें प्रधान हैं। तन, मन और सुरत। तीनों के बाहर मंडल हैं यानी पिन्ड, ब्रह्मांड और दयाल देश। हर एक में छःदरजे हैं। एक दूसरे का अक्स यानी प्रतिबिम्ब है। जैसे तन में बाहर द्वारे हैं, वैसे ही अन्तर में भी द्वारे हैं। पिण्डेशु ब्रह्माण्डे यानी जो कुछ बाहर रचना में है, वह छोटे पैमाने पर हर एक मनुष्य के घट में है। जैसे सूरज में से धार आ रही है, जो कोई ऐसा सूक्षम हो जावे कि जैसी वह धार है, तो वह उस धार को पकड़ के सूरज में पहुँच सकता है, इसी तरह चैतन्य भंडार से जो धार

आ रही है, उसकी धुन को पकड़ कर वहाँ पहुँच सकता है। अब यह बयान न तो शास्त्र में है, न क़ुरान में, न अंजील में। स्वतः प्रमाण है। हालत मौजूदा का हवाला है और किसी का हवाला नहीं है। यह सुन कर वह सब पण्डित ला-जवाब हो गये।

८ — सवाल - वह धार कैसे हाथ आवेगी?

जवाब - अभ्यास करो तो हाथ आवेगी। जैसे इन आँखों से यहाँ देखते हो, वैसे अन्तर की आँख खोलो तो वहाँ की कैफ़ियत मालूम होवे। मगर तरसा तरसा के आँख खोली जायगी। इस का मतलब यह है कि आहिस्ता आहिस्ता आँख खुलेगी यानी तरक़्क़ी होगी, जैसे कि लड़का दिन दिन बढ़ता जाता है, मगर धीरे धीरे यह काम होता है कि जिसकी उस को ख़बर नहीं पड़ती है, अलबत्ता जब जवान हो जाता है, तब जानता है कि मैं अब लड़का नहीं रहा, इसी तरह अन्तर की पूरी तौर पर आँख खुलने में इस का हाल होता है और इसी का नाम तरसा कर आँख खोलना है।

९ —सवाल—लड़के के जब तेल लगाते हैं, मालिश करते हैं, तब बड़ा होता है।

जवाब—यहाँ भी ख़ूब तेल और उबटना मला जाता है और छठी का दूध निकाला जाता है यानी मान अंग, जिसका मरदन करना महा कठिन काम है, मारा जाता है, ग़रज़ कि ख़ूब सफ़ाई की जाती है। लोग समझते हैं कि बैठे सतसंग करते हैं और कचौरी खाते हैं। मगर अकेले में आप हर एक से दरियाफ़्त कीजिये, तब मालूम होगा कि क्या मामला है कि रोज़ जान निकाली जाती है। कहने का मुद्दा यह है कि जितने यहाँ बैठे हुए हैं, सबकी मालिश होती है यानी ख़ूब गढ़त होती है और यही मत

की सचाई और पकाई है। जहाँ कि यह खेल नहीं है और सिर्फ़ ख़ातिरें हैं, वह मत झूठा है। ज़रासी किसी के बाय चढ़ जाती है तो किस क़दर ताक़त उसमें आ जाती है। अगर सुरत बग़ैर सफ़ाई यानी गढ़त के किसी की चढ़ाई जावे तो न मालूम क्या ग़ज़ब कर डाले। अब इन बातों को विद्यावान बिचारे क्या समझ सकते हैं? थोड़ी सी विद्या बुद्धि की बातें उन्होंने सीख ली हैं। उन्हीं का ढँढोरा पीटते हैं। और जो साध महात्मा हैं, जिन का कि अनुभव खुला हुआ है, मानो ज्ञान का सागर जिन के घट में बह रहा है, वह और भी पोशीदा और गहिर गंभीर होते जाते हैं। विद्या बुद्धि की उन के आगे कुछ भी हैसियत नहीं है।

यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।
बुद्धि छोड़ करनी करो, तब पाओ कुछ सार।।

बचन ३५

जोग

१ — बग़ैर जोग के ज्ञान नहीं होता। और चैतन्य शक्ति सब पर हावी है। इससे बढ़ कर कोई ताक़त नहीं है।

२ — शास्त्र में भी जोग की ऐसी ही महिमा की है। मगर लोग जोग तो करते नहीं, पुस्तकें पढ़ कर ज्ञानी बन बैठते हैं। जोग किसी चीज़ से मेल करने को कहते हैं। बाहर में भी जब तक किसी चीज़ से मेला नहीं होता है, तब तक उस का ज्ञान नहीं होता है कि क्या चीज़ है

और क्या उस का असर है। स्थूल इन्द्रियों द्वारा जब चैतन्य धार किसी चीज़ को स्पर्श करती है, तब उसका ज्ञान होता है और जो कुछ उस की ख़ासियत है, मसलन ख़ुशबू रस वग़ैरा मालूम होती है, वैसे ही मालिक का ज्ञान, तब होगा जब उस की क़ुदरत की शक्ति जिसने कि रचना की है और सब की सँभाल कर रही है और घट घट में प्रेरक है, उससे इस की चैतन्य धार का जोग होगा। जैसे बाहर किसी चीज़ के छूने से उसकी ख़ासियत मालूम होती है, वैसे ही अन्तर में मालिक की क़ुदरती ताक़त को स्पर्श करने से रचना की कैफ़ियत मालूम होती है। यही सच्चा ज्ञान है। और जो लोग मालिक का ज्ञान बताते हैं, मसलन किस तरह उसने रचना की है, वह सब कथन मात्र है, क्योंकि ऊपर की चैतन्य धार का तो उन को पता ही नहीं है, जो कुछ वे कहते हैं, वह अन्तःकरन का मायक पदार्थों से मिलने का नतीजा है। इसलिये उनका ज्ञान मायक और जड़ है। ज्ञान से यह भी मतलब है कि जिस चीज़ का ज्ञान हो, उस पर हुकूमत करना। जैसे बिजली का जब लोगों को ज्ञान हुआ, तब उस पर हुकूमत कर सकते हैं वैसे ही जब मालिक की ताक़त का ज्ञान आवेगा तब उस की रचना पर यह हुकूमत कर सकेगा।

३ —रचना में जितनी ताक़तें हैं, उनमें सब से बड़ी रूह की ताक़त है, क्योंकि यह और सब ताक़तों के क़ानून को दरियाफ़्त करके उन पर हुकूमत करती है यानी उनको काम में लाती है और उन से फ़ायदा उठाती है। यह बात और ताक़तों में नहीं है। इस से रूह का सब ताक़तों पर हावी होना साबित हुआ। अगर कोई कहे कि रूह से भी बड़ी और ताक़त हो सकती है जो रूह के क़ानून को दरियाफ़्त कर के रूह पर हुकूमत कर सकती

है जिस की हम लोगों को ख़बर नहीं है तो यह बात ग़लत है क्योंकि अगर उस ताक़त में भी दरियाफ़्त करके हुकूमत करने की क़ुदरत मौजूद है, तो सुरत यानी रूह से कोई ज़्यादा ताक़त नहीं हुई यानी यही क़ुदरत सुरत में भी मौजूद है। सिर्फ़ दरजे का फ़र्क़ हुआ, जैसे सुरत के भंडार में यह ताक़त विशेष है, ब-निस्बत धार के। अलावा इस के चैतन्य में ज्ञान यानी जानने की ताक़त है। अगर चैतन्य के परे और कोई ताक़त होगी तो वह ज्ञान से जानी जायगी, तो ज़रूर ज्ञान से नीचे होगी, इस से ज़ाहिर हुआ कि चैतन्य से बढ़ कर और कोई शक्ति नहीं है और अगर उस फ़रज़ी ताक़त की हम लोगों को ख़बर नहीं हो सकती, तो हम सबों के लिये सुरत की ही शक्ति सर्वोपरि हुई यानी हम लोगों का ज्ञान सिर्फ़ रूहानी ताक़त तक हो सकता है और इससे बढ़ कर और कोई ताक़त नहीं है।

४ —जब राधास्वामी दयाल की आम तौर पर यह मत प्रकट करने की मौज होगी, तब सब जीवों का घाट बदला जायगा। उपदेश लेने से ही प्रेम के घाट पर आजावेंगे और थोड़ा बहुत अन्तर की कैफ़ियत का लखाव कराया जावेगा। तब इस मत की महिमा साफ़ तौर पर समझ में आवेगी और दया की परख होगी कि किस क़दर राधास्वामी दयाल अपने बच्चों पर दया फ़रमा रहे हैं। दया की जब परख आवेगी, तब राधास्वामी दयाल की मौजूदगी और सर्व समर्थता की भी परख आवेगी, प्रेम प्रकट होगा और सर्व अंग करके यह भक्ति करेगा और तब इसको प्रत्यक्ष नज़र आवेगा कि कोई बाला बाला धार ऊपर से आरही है। उसी की मदद से कुल कार्रवाई होती है। नहीं तो, मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ। और यह अपने को निहायत नीच और निबल समझेगा। और

जितने मत हैं, उनको इस कार्रवाई की ख़बर भी नहीं और अपना आपा ठानते हैं, इसलिये प्रेम नहीं आता। जिस काम के करने से कि प्रेम आवे और अहंकार पैदा न होवे, वह गुरु मत है और जिस काम के करने से कि अहंकार होवे और प्रेम न जागे, वह मन मत है।

बचन ३६

जिस्म में सुरत की मुख्यता। औतार, जिस मुक़ाम तक कि उसके पट खुले हैं, वहाँ तक और जीवों को पहुँचा सकता है।

१ — इस जिस्म में तीन चीज़ें साफ़ दिखलाई देती हैं। अव्वल माया जो बे हिस व हरकत है, दूसरे मन जिसमें हिलोर और ख़्याल पैदा होता है, तीसरे सुरत चैतन्य। अब इस सुरत की ताक़त का ख़्याल करना चाहिये कि जहाँ यह कुला फोड़ती है, तमाम शक्तियाँ और ताक़तें मौजूद होकर उस देह के बनाव व सँभाल में मदद देती हैं। इस सुरत धार ही की मौजूदगी से हुस्न चेहरे और अंगों पर जो मिस्ल आईने (Index) के हैं, नमूदार है। जब वह धार खिंच जाती है, तमाम हुस्न चन्द घंटों ही में ग़ायब हो जाता है, बल्कि चेहरा भयानक हो जाता है। इस देह में चन्द चक्र (Ganglions) जिनको Centres (सेन्टर) कहते हैं, साफ़ मालूम होते हैं, जैसे पाखाने का मुक़ाम, इन्द्री जहाँ से पैदाइश है, नाभि यानी परवरिश का मुक़ाम, हृदय, कंठ और छठा चक्र। इस के ऊपर दिमाग़ में भूरा मग़्ज़ (Grey matter) और सफ़ेद मग़्ज़ (White matter) है। संत कहते हैं कि इन मग़्ज़ों

में भी दरजात हैं। और सुरत छठे चक्र में बैठ कर, जो कि मरकज़ दोनों तिलों का है, इस देह और दुनिया की कार्रवाई करती है। जब स्वप्न के वक़्त किसी क़दर सिमटाव सुरत का हो जाता है तो तमाम दुख सुख देह और दुनिया का बिसर जाता है। अगर घर में मौत भी हो गई हो, तो वह रंज उस वक़्त नहीं व्यापता है। गो उस हालत में दुख सुख मौजूद है, मगर ताक़त ब-निस्बत यहाँ के ज़्यादा है कि अपने ख़याल से जो कैफ़ियत चाहे सो पैदा कर सकता है। और जब सुरत गहरी नींद के मुक़ाम पर पहुँचती है तो फिर और भी ज़्यादा आराम मिलता है। जब कि सुरत के एक एक ज़र्रे में जैसा कि ज़बान वग़ैरा पर इस क़दर रस और स्वाद है कि लोग उसी में अटक जाते हैं तो फिर सुरत की बैठक पर और भण्डार में जहाँ से कि सब सुरतें आई हैं, किस क़दर भारी रस और सरूर होगा। अब हर एक जीव को मुनासिब है कि इस भारी रचना का हाल देख कर कि हर एक चीज़ इस में एक हालत में क़ायम नहीं रहती, विचार करे कि आया कोई ऐसा मुक़ाम भी है जो हमेशा एक हालत में रहे और जहाँ पहुँच कर जीव को अमर सुख मिले। इस दुनिया में दुख सुख, तबदीली सूरत और हालत की वजह से होता है और जहाँ इस की सुरत यानी तवज्जह की धार ज़्यादा आती जाती है, उसकी तबदीली में इस को दुख सुख होता है, लेकिन जहाँ तक माया की मिलौनी है, वहाँ तक यह तबदीली बराबर होती रहेगी। इसलिये चैतन्य देश में जहाँ तग़इयुर व तबद्दुल नहीं है, पहुँच कर असली सुख पाने का जतन हर शख़्स को करना ज़रूर है।

२ — ग़ौर करने से मालूम होगा कि दो तरह की शक्तियाँ इस रचना में काम कर रही हैं। मसलन सूरज

में दो शक्तियाँ ज़ाहिर हैं। एक तो वह कि जिससे उसकी गरमी और रोशनी फैल कर ब-वसीले उसकी किरनियों के यहाँ आती है और दूसरी शक्ति से वह ज़मीन और तमाम सइयारों को अपनी तरफ़ खींचता है और जिस शक्ति के सबब से वह उस की परिक्रमा कर रहे हैं। इसी तरह हमारे जिस्म में भी दो धारें आ रही हैं। एक धार बाहर नौ द्वारों में होकर फैल रही है और दूसरी अंतर में खींचने वाली है। इसी खींचने वाली धार के वसीले से हम उस मुक़ाम तक पहुँच सकते हैं, जहाँ से कि वह रवाँ होती है। अब धार के साथ धुन भी हो रही है। इसी को अनहद और आवाज़े-आस्मानी कहा है। संत मत में इस धुन का भेद और तरीक़ा उस को पकड़ कर चलने का बताया जाता है।

३ — कुल मालिक का नाम राधास्वामी है। यह नाम फ़र्ज़ी, किसी का धरा हुआ नहीं है। इस को मालिक ने आप इस वक़्त में प्रकट किया है। नाम दो तरह के हैं। एक वर्णात्मक, जो फ़र्ज़ी नाम चीज़ों का रख लिया जाता है मगर उस चीज़ में और नाम में कुछ ताल्लुक़ नहीं, जैसे रोटी। दूसरे ध्वन्यात्मक कि जिस नाम में और नामी में ताल्लुक़ ज़ाती है, जैसे घंटे से जो आवाज़ निकलती है, उस को घन और टन वग़ैरा कह कर ज़ाहिर किया। इस तरह संतों ने अन्तर में सुन कर राधास्वामी नाम प्रकट किया। इस के अर्थ यह हैं कि 'राधा' यानी उलटाने वाली धार और 'स्वामी' यानी भंडार। और हर जगह धार और भंडार से ही रचना होती है, जैसे सूरज भंडार है और किरनियाँ जो यहाँ रचना करती हैं, धारें हैं। इसी तरह हर चीज़ का ख़्वाह छोटी हो या बड़ी, धार और भंडार है। आवाज़ के साथ सुरत का इश्क़ ज़ाती है, जैसे जहाँ गाना उम्दा होता है तो हर कोई ज़रा

ठहर कर उस को सुनता है। शब्द की महिमा अगर्चे सब मतों में है, मगर उसका पूरा भेद और आसान जुगत सुनने की सिर्फ़ राधास्वामी मत में है। उसको समझ कर अभ्यास किया जाय तो एक दिन रसाई मालिक कुल के धाम में हो जावेगी और उस का दर्शन प्राप्त होगा। इस की चाह सब को उठाना चाहिये।

४ — जीव अवस्था में सुरत छठे चक्र पर बैठी है और वहाँ से मन के घाट पर धार उतर कर इन्द्रिय द्वारे इस देश की कार्रवाई कर रही है। इस सूरत में मन के मुक़ाम से धार रवाँ होती है और ऊपर के पट सब बन्द रहते हैं। लेकिन जिस किसी के ऊपर के पट खुले हों और दयाल देश से सीधी धार आती हो, उस को संत अवतार कहते हैं। और जो धार सीधी ब्रह्मांड से आती हो, उसे ब्रह्म का अवतार कहते हैं। जैसे कि समुद्र से जो लहर उठ कर कोसों तक ज़मीन पर जाती है, हरचंद कि समुद्र की कार्रवाई वैसी ही जारी है जैसे कि पहिले थी, मगर वह लहर समुद्र से जुदा नहीं है और उस के ख़वास वही होंगे जो समुद्र के, इसी तरह संत कुल मालिक के अवतार हैं और उन का दर्शन कुल मालिक का दर्शन है। अवतार, जिस मुक़ाम तक कि उस के पट खुले हैं, वहाँ तक और जीवों को पहुँचा सकता है।

* * * * * *

बचन ३७

ज़रूरत परमार्थ कमाने की और इल्मी तौर पर सबूत संत मत के .कुदरती और सच्चे होने का

१ — हर एक जीव इस दुनिया में सुख की प्राप्ति या दुख की निवृत्ति के वास्ते जतन करता है, तो अब अगर यह साबित हो जावे कि रूह अमर है यानी जिस्म छोड़ने के बाद भी किसी न किसी सूरत व हालत में वह रहेगी, तो इस बात का जतन करना कि मरने के बाद इस को सुख मिले, किस क़दर ज़रूरी और मुनासिब है। यह चोला ज़्यादा से ज़्यादा सौ बरस तक रह सकता है। मगर इस के बाद रूह कहाँ जावेगी और वहाँ क्या हाल होगा, इसका हाल दरियाफ़्त करना बहुत ज़रूर है और यही परमार्थ (परम अर्थ) है।

२ — अब रूह के अमर होने का सबूत दो तरह पर है। एक अमली (Practical) और दूसरा अक़्ली (Theoretical)। अमली सबूत तो दुनिया में वाक़आत देख कर हासिल हो सकता है। चुनाँचे अक्सर आदमियों ने इस शहर में और और जगह भी अपने पिछले जनम का हाल बयान किया है और उसकी तसदीक़ हो गई है। इस से साबित है कि अगर रूह पहले से चली आती है तो मरने के बाद भी किसी न किसी सूरत में क़ायम रहेगी। दूसरे अक़्ली सबूत रूह के अमर होने का यह है कि हर एक चीज़ मिस्ल हवा, पानी, धरती वग़ैरा का एक एक भंडार दिखाई देता है, तो उस शक्ति का भी जो रचना करने वाली है, ज़रूर भंडार होगा। अब विलायत में अक्सर लोग Psychical phenomena यानी रूहानी

वाक़आत की तहक़ीक़ात करते हैं और इसके लिये बहुत सुसाइटी क़ायम की गई हैं और जो कि उन्होंने अपनी तहक़ीक़ात के हालात लिखे हैं, वह बिलकुल आज कल के साइंस के मुवाफ़िक़ हैं और किसी तरह ग़लत नहीं हो सकते। इन सुसाइटियों में ऐसे लोग शामिल हैं जो बड़े साइन्सदाँ मशहूर हैं। उनमें से एक प्रोफ़ेसर हैं कि उन्होंने रूह के ला-ज़वाल होने का सबूत दिया है। उनको ऐसी ताक़त हासिल है कि जिस बाजे पर वह उँगली रख दें, वह ख़ुद-ब-ख़ुद बजने लगे और ट्रान्स के ज़रिये से दूर दूर का हाल मालूम कर लेते हैं।

३ — जब इस तरह मालूम हुआ कि हमारी रूह अमर है तो किस क़दर भारी फ़र्ज़ हम पर आयद होता है कि हम इस बात की तहक़ीक़ात करें कि आया कोई ऐसा भी मुक़ाम है, जहाँ पहुँच कर हम को आनन्द ही आनन्द प्राप्त हो और किसी तरह का दुख और कष्ट व कलेश न हो। इन्सान के जिस्म को जो देखा जावे तो मालूम होता है कि इसमें तीन जुज़ हैं। अव्वल देह कि जो ख़ुद कोई चेष्टा नहीं करती है। दूसरे मन कि जो ख़याल और तरंग उठाता है। तीसरे रूह कि जो सब को ताक़त देती है। मन भी बतौर औज़ार के है। अब इस रूह को देखना चाहिये कि जिस्म में कहाँ है। तलुए से लगा कर चोटी तक ग़ौर किया जावे तो मालूम होगा कि हाथ पाँव में कोई आला दरजे की ताक़त नहीं है क्योंकि अगर उनको काट भी डाला जावे तो भी ज़िन्दगी क़ायम रह सकती है, लेकिन धड़ में नरवस सेन्टर्स शुरू होते हैं और ज्यों ज्यों दिमाग़ की तरफ़ चलें, वह बहुत बारीक और आला दरजे के होते जाते हैं और दिमाग़ में भूरा मग़्ज़ (Grey matter) और सफ़ेद मग़्ज़(White matter) है। अब यह जिस्म कुल रचना का नमूना है यानी

मालिक ने इन्सान को बतौर अपने अक्स के बनाया है तो जैसे कि सूरज का अक्स जब पानी या किसी चमकती चीज़ पर पड़ता है तो सूरज की तसवीर बन जाती है और उसमें कुल सूरज के आकार मौजूद होते हैं, इसी तरह कुल रचना के चिन्ह इन्सान के जिस्म में मौजूद हैं। जो चक्र कि पिंड में हैं, वह पिंडी रचना के नमूने हैं और उन का सिलसिला बाहर के मंडलों से लगा हुआ है। और दिमाग़ में जो भूरा मग़्ज़ है, वह नमूना ब्रह्मांडी रचना का है और उसका सिलसिला ब्रह्मांड से लगा है और जो सफ़ेद मग़्ज़ है, उस का सिलसिला रूहानी आलम से लगा है। जो कोई कि अव्वल भूरे मग़्ज़ की ताक़त को अभ्यास करके जगावे तो वह ब्रह्मांड में रसाई पा सकता है और फिर जो सफ़ेद मग़्ज़ की ताक़त को जगावे तो उस का सिलसिला रूहानी देश से लग सकता है। ताक़तों का जगाना क्या है कि धार का ब-इख़्तियार-ख़ुद आमदो-रफ़्त कराना। जो रूहानी ताक़त को जगावेगा, उसको सब पर क़ुदरत हासिल हो सकती है और वह चाहे जो कर सकता है, जैसे जिस शख़्स ने यहाँ बिजली की ताक़त पर क़ाबू पाया, वह उससे चाहे जो काम, जो उससे लिया जा सकता है, लेता है। इसी तरह जिस शख़्स ने रूहानी ताक़त को जगाया, वह अनन्त लोक रच सकता है। इसी वास्ते जोगियों की निस्बत कहा है कि वह चाहें तो कोई लोक रच कर वहाँ रह सकते हैं।

४ — जब कि रूह के भंडार का मौजूद होना साबित है और उसका सिलसिला अन्तर में मौजूद है तो फिर उस रूह की धार को उस के भंडार में पहुँचाने से हमेशा का सुख मिलना मुमकिन है और इसमें शक नहीं है कि वह भंडार आनंद का है। क्योंकि उस की एक अंस रूह के एक एक हिस्से में कैसा भारी सुख है कि लोग उसी

में अटक रहे हैं। तमाम सुख रूह की धार में है। क्योंकि जब रूह जिस्म से किसी क़दर अलेहदा होती है, मसलन क्लोरोफ़ार्म सुंघाने से या नींद के वक़्त तो इस जिस्म को कोई दुख सुख नहीं व्यापता।

५ — कुल मालिक का नाम राधास्वामी है। 'स्वामी' भंडार को कहते हैं और 'राधा' धार को कहते हैं, जो भंडार की तरफ़ मुतवज्जह है। इस रचना में देखा जाता है कि बग़ैर धार और भंडार के कोई काम नहीं होता, जैसे लैम्प की लौ रोशनी का भंडार है और उस से जो किरनियाँ छूटती हैं, वह धारें हैं। अगर यह दोनों चीज़ न हों तो काम रोशनी का नहीं हो सकता। इसी तरह मालिक की कार्रवाई इस रचना में है। राधास्वामी नाम मालिक के स्वरूप को कि जिस तरह वह कार्रवाई कर रहा है, एक लफ़्ज़ में बताता है।

६ — इस बयान से यह ज़रूर मालूम होना चाहिये कि इस से बढ़ कर नाम और कोई, मालिक का नहीं हो सकता। राम या कृष्ण के नाम कार्रवाई ज़ाहिर नहीं करते। शुरू में अभ्यासी अगर इतने ही मानी, इस नाम के समझ कर प्रतीत लावे, तो काफ़ी है और फिर जब वह अभ्यास करेगा, तो इसी नाम की धुन अन्तर में सुनेगा। संतों ने उस धुन को राधास्वामी नाम से बयान किया है। इसलिये यह जाती नाम है। जैसे कि घंटे की आवाज़ किसी और लफ़्ज़ से सिवाय 'टन' के ज़ाहिर नहीं होती। सीटी की आवाज़ सिवाय 'स' के और किसी हर्फ़ से ज़ाहिर नहीं होती। जैसे कि सूरज की किरनी के साथ जो धुन हो रही है वह धुन सूरज का असली ज़ाती नाम है, इसी तरह कुल मालिक का असली नाम राधास्वामी है।

* * * * * *

बचन ३८

जिस शक्ति से कि दरख़्त के फूल और फल पैदा होते व बाहर फैलते हैं उसके इस ख़वास को झाड़ कर उसके जौहर को अंतर में ऊपर की तरफ़ ले जाना, यह राधास्वामी मत है

अनामी पुरुष का एक हिस्सा जो हमेशा रोशन था, उस में जब रचना हुई तो उसके दरजे मिस्ल बरफ़, पानी और भाप वग़ैरा के हो गये। और उसके नीचे जो ग़ुबार था, उस के चैतन्य की दौड़ ऊपर की तरफ़ थी, क्योंकि सुरत का यह ख़वास है कि वह अन्तर में ऊपर को उड़ा चाहती है और चूँकि माया का झुकाव नीचे की तरफ़ और सुरत का खिंचाव ऊपर की तरफ़ रहता है, इस वास्ते सुरत के साथ माया किसी दरजे तक जहाँ तक कि वह जा सकती थी, पहुँची, लेकिन फिर झाड़ कर नीचे गिरा दी गई और उस से नीचे के दरजे में देहियाँ तैयार हुईं। मगर इस तीसरे दरजे में जहाँ माया का ज़्यादा ज़ोर शोर है, सुरत कुछ अरसे तक माया के साथ उस देह का बनाव और बढ़ाव करती रहती है, लेकिन फिर अपने असली ख़वास की वजह से ऊपर को उड़ती है और यही वजह मौत की है और जो कि सुरत के साथ माया का सूक्ष्म ग़िलाफ़ कुछ दूर तक जाता है और वह ग़िलाफ़ सुरत को अपने मंडल की तरफ़ झोका देता है, इस तरह जनम मरन होता रहता है यानी सुरत तो अपने मंडल की तरफ़ खिंचना चाहती है और माया उसको अपने मंडल की तरफ़ झोका देती है। कसीफ़

माया की रचना में यह हाल हमेशा जारी रहेगा, लेकिन सूक्ष्म माया की रचना में सुरत का माया के साथ इस क़दर कम बन्धन हो जावेगा कि वह माया के साथ नीचे को नहीं खिंचेगी। इस वास्ते चाहिये कि कसीफ़ माया झाड़ कर ऐसे स्थान पर अभ्यास करके पहुँचे कि जहाँ से माया सुरत को नीचे न गिरा सके। फिर वहाँ से सुरत का अपने भंडार की तरफ़ चढ़ना, बहुत आसान हो जावेगा। सो जब तक त्रिकुटी तक रसाई न होगी, माया सुरत पर ग़ालिब रहेगी। इस वास्ते चाहिये कि जिस क़दर बन्धन सुरत और माया की मिलौनी से पैदा हुए हैं, उन को आहिस्ता आहिस्ता तोड़ कर सफ़ाई करे। जब सफ़ाई पूरी हो जावेगी, तब लायक़ चढ़ाई के होगा। जितना अर्सा कि इन बंधनों के तोड़ने में है, उतनी ही देर सुरत की चढ़ाई में समझनी चाहिये। इसलिये जिस वजह से कि वह सुरत बाहर को फैलती और फूलती है, उस को रोक कर और बदल कर उस के असली मंडल की तरफ़ चढ़ाना चाहिये और यही मतलब राधास्वामी मत का है।

बचन ३९

किसी सेन्टर यानी नुक़ते की ताक़त को जगाना अभ्यास है

शब्द, चैतन्य की धार है और महा पवित्र और आनन्द स्वरूप है। किसी तन्दुरुस्त आदमी को देखो कि कैसा ख़ूबसूरत और ख़ुश मालूम होता है। तन्दुरुस्ती की हालत में चैतन्य की धार बदन के अंग अंग में पूरे तौर से आती है और उसी की वजह से तमाम ख़ूबसूरती और मगनता नज़र आती है। फिर शब्द की धार से मिलने में

किस क़दर आनन्द और सफ़ाई का होना मुमकिन है? उसी धार में मन को मल मल कर धोना चाहिये। मगर शब्द असली होना चहिये, क्योंकि शब्द शब्द में भेद है। अभ्यास करना क्या है? किसी सेन्टर यानी नुक़्ते की ताक़त को जगाना। अब जिस्म में जो चक्र हैं वह नुक़्ते रगों के हैं और उन के नीचे इन्द्रियाँ हैं कि जहाँ सुरत ने नुक़्ता भी नहीं बाँधा है, सिर्फ़ ठेका लिया है। इन्हीं की ताक़त जगाने में कैसा आनन्द और सरूर मिलता है कि लोग उस में मस्त हो जाते हैं। फिर जिस्म के नुक़्तों के जगाने में और भी ज़्यादा आनन्द मिलता है तो दिमाग़ के सेन्टर्स जहाँ ब-निस्बत नीचे के नुक़्तों के ज़्यादा नरवस मैटर है, जगाने में किस क़दर आनन्द और सरूर हासिल होना मुमकिन है और यह अभ्यास राधास्वामी मत में कराया जाता है। जब बिजली की धार लोहे पर लाई जाती है तो वह बहुत ताक़त वाला मैगनेट यानी चुम्बक हो जाता है, जिसको इलेक्ट्रो मैगनेट (Electro magnet) कहते हैं, इसी तरह जो दिमाग़ में शब्द की बिजली, जो कि स्थूल बिजली से बहुत ज़्यादा ताक़त वाली है, लाई जावे तो वह किस क़दर रोशन और ताक़त वाला हो सकता है और तमाम इन्द्रियों का रस भी जैसे देखना सुनना वग़ैरा भारी दरजे का मिल सकता है।

बचन ४०

राधास्वामी मत में प्रत्यक्ष सबूत जो अक़्ल में आ सके, दिया जाता है

१ — पूर्ण सुख चैतन्य के भंडार में पहुँच कर मिलेगा। और मतों में न कोई ऐसा सबूत दिया गया है

और न वहाँ की कार्रवाई से दुख के वक़्त जैसी कि चाहिये, सहायता होती है और इसी सबब से कुछ प्रेम प्रीति मालिक के चरनों में नहीं आती है। मालूम हो कि इस जिस्म में तीन ख़ास चीज़ें हैं। अव्वल माया, जो ख़ुद बे-हरकत है। दूसरे मन जो फुरना उठाता है। तीसरे सुरत जो सब को ताक़त पहुँचाती है। अब इन में से हर एक का एक एक भंडार भी है। जो सुरत का भंडार है, वही चैतन्य का भंडार है और वही कुल मालिक का स्थान है।

२ — हर चीज़ में तीन तीन दरजे हैं। एक नार्थ पोल (North pole), दूसरे साउथ पोल (South pole), तीसरे इन्टरमीडियेट रीजन्स (Intermediate regions) और हर दरजे में छोटे दरजे और हैं, तो पिंड में जो छःचक्र हैं, वह प्रतिबिम्ब यानी अक्स हैं और उनके असल ब्रह्मांड में हैं। (ब्रह्म के ही पहिले फुरना हुई कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ)। इसी तरह सुरत के मंडल में भी छः दरजे हैं, जिनकी छाया ब्रह्मांड के छओं चक्र हैं। यह भेद किसी मत में नहीं है। और कोई आख़िरी मुक़ाम और सवारी वहाँ तक पहुँचने की नहीं बताई है। सिर्फ़ वेद मत में प्राणों की सवारी बताई है। मगर उस पर चलना इस क़दर मुशकिल है कि इस ज़माने में कोई भी उस का अभ्यास नहीं कर सकता और अगर बिल-फ़र्ज़ कोई चले भी तो ब्रह्म पद तक पहुँच सकता है और वहाँ भी पहुँच कर सच्ची मुक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि प्रलय में उसका भी अभाव हो जाता है।

३ — दूसरे मतों के आचार्य जैसे ईसा ने शिव नेत्र को, जो तीन धारों के मिलान की जगह है, पार किया। इसी को क्रास कहते हैं। और उनका Resurrection

हुआ यानी मर कर वह ज़िन्दा हो गये। रीढ़ की जो हड्डी है, वही सूली और इंगला पिंगला और सुखमना, यही त्रिशूल है। इस वक़्त में इस क़दर अभ्यास भी कोई नहीं करता है। राधास्वामी मत में निर्मल चैतन्य देश में पहुँचना, यह ठेका है और शब्द की सवारी पर चलना होता है, सो शब्द से बढ़ कर कोई सवारी नहीं हो सकती। देखो, जहाँ अच्छा बाजा बजता हो, हर कोई ठहर कर सुनना चाहता है और जानवर भी महव हो जाते हैं, तो फिर राधास्वामी मत और सुरत शब्द योग से बढ़ कर कोई मत नहीं है।

बचन ४१

चौरासी के अर्थ

पाइनियर अख़बार में हाल में एक नई तहक़ीक़ात छपी है जिस से साबित होता है कि संतों ने जो चौरासी का ज़िक्र किया है, वह सही है। पेश्तर लोगों का ख़याल था कि तत्त्व आपस में तबदील हो सकते हैं, मगर बाद इसके यह ख़याल हुआ कि तबदील नहीं हो सकते। अब हाल में एक शख़्स ने एक नक़्शा बनाया है कि उसमें १३ लकीरें सीधी हैं और ८ तिरछी हैं। ८ लकीरों के ७ और १३ के १२ ख़ाने होते हैं। इस तरह १२X७=८४ ख़ाने पैदा हुए। फिर उसने अमली तरीक़े को ग़लत मान कर इल्मी तरीक़े से तत्त्वों का वज़न क़रार देकर ख़ानों में रक्खा तो उस से साबित हुआ कि तत्त्व तब्दील हो सकते हैं यानी पहिला ख़याल दुरुस्त मालूम हुआ। अभी ख़ाने पूरे तौर पर नहीं भरे हैं, लेकिन मुमकिन है कि वह भर जावेंगे और जैसा कि संतों ने फ़रमाया है कि माया एक मुक़ाम

त्रिकुटी से प्रकट हुई और असल में एक ही तत्त्व है, साबित हो जावेगा। त्रिकुटी के ऊपर की तरफ़ तीन गुन की धारें निहायत सूक्षम हैं और जब उन का आपस में मेल हुआ तो ९ हुए। इसी तरह पाँच तत्त्व हैं और उन की आपस में मिलौनी होने से २५ प्रकृति हुईं और तीन गुन जब उन में मिले, ७५ हुए, और उसमें ९ जोड़ कर ८४ हो गए। इस तरह ८४ का हिसाब है। यह चौरासी लक्ष्य धारा अन्तर में मौजूद हैं। ८३ या ८२ नहीं हो सकतीं। और ८४ लाख नहीं हैं, बल्कि चौरासी लक्ष्य यानी गुप्त धारें हैं।

बचन ४२

प्राणायाम व मुद्रा के अभ्यास वाले यह नहीं जानते कि हमारा मक़सद क्या है

१ — प्राणायाम और मुद्रा वग़ैरा के साधन से थोड़ी सफ़ाई मन की होना मुमकिन है और जो लोग यह अभ्यास करते हैं उनको यह ख़बर नहीं है कि हमारा मक़सद क्या है और वह कहाँ हासिल होगा, तो वह ऐसे आदमी के मुवाफ़िक़ हैं कि जो घोड़े पर सवार हो गया और चाबुक मारे जाता है, घोड़ा उसको चाहे जहाँ ले जावे। अव्वल यह समझना चाहिये कि अमर अजर देश कहाँ है और वहाँ कैसे पहुँचे, तब अभ्यास शुरू करना चाहिये।

२ — यहाँ तीन शक्तियाँ काम करती हुई नज़र आती हैं। एक इन्द्रियों की, दूसरे मन की, तीसरे सुरत की, तो इनके भंडार भी होंगे, क्योंकि सब चीज़ का भंडार होता

है। इस तरह रचना के तीन भाग हुए। एक पिंड देश, दूसरे ब्रह्मांड, तीसरे निर्मल चैतन्य देश। निर्मल चैतन्य देश अमर अजर है और वहाँ पहुँच कर जीव भी अमर अजर हो जावेगा यानी जनम-मरन से रहित हो जावेगा। कुल-मालिक का नाम राधास्वामी है और यह किसी मनुष्य का रक्खा हुआ नहीं है। इस नाम की धुन अंतर में हो रही है। अभ्यासी इसको सुन सकते हैं। और राधास्वामी नाम का अर्थ यह है कि ''स्वामी'' नाम मालिक का है और ''राधा'' उस धार को कहते हैं कि जो स्वामी से निकली, उसी धार ने तमाम रचना करी है और उसी धार के साथ जो शब्द होता हुआ चला आया है, उसको पकड़ के स्वामी के पास पहुँचना, मुमकिन है। इसलिए अमर अजर देश में पहुँचने के लिये सिवाय सुरत शब्द अभ्यास के और कोई जतन नहीं हो सकता। जो कोई इस अभ्यास को करेगा, वह अव्वल छःचक्रों को पार करके मौत के मुक़ाम को फ़तह करके और फिर ब्रह्मांड में सैर करता हुआ सत्त पुरुष राधास्वामी के देश में पहुँच सकता है। लेकिन इस कहने से यह नहीं समझना चाहिये कि यह सब बातें फ़ौरन प्राप्त हो जावेंगी, क्योंकि यह बात अपने २ अधिकार और प्रेम और शौक़ पर मुनहसर है। किसी को एक जनम में, किसी को दो में और किसी को तीन में और हद चार जनम में ज़रूर हासिल होगी, जैसे कि कहा है—

एक जन्म गुरु भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निज धाम।।

३ — अब अगर प्रेम भारी है तो एक जनम में नाम प्राप्त हो जावेगा यानी एक जनम में दो जनम का काम हो जावेगा और अगर और भी ज़्यादा प्रेम है तो एक एक जनम एक एक दो दो बरस में गुज़र जावेंगे।

* * * * * *

भाग तीसरा

सतगुरू व सतसंग महिमा

बचन ४३

राधास्वामी दयाल का अवतार

१ — जीवों पर ख़ास दया हुई, तब राधास्वामी दयाल अवतार धारन करके नर शरीर में आये। वह घड़ी मुबारक है और वह समय भारी उत्सव का है। ब्रह्म के अवतार राम कृष्ण जो आये इन को लोग बल और राजाई के सबब से मान रहे थे। राधास्वामी दयाल ने अपने को गुप्त रक्खा, प्रकट नहीं किया, क्योंकि सुरत की कार्रवाई गुप्त है, तो मालिक की कार्रवाई कैसे न गुप्त होगी? राम और कृष्ण का मत ज़्यादा तर प्रवृत्ति यानी संसारी क़ायदे और इन्तिज़ाम का था और संत मत केवल निवृत्ति याने जीवों के उद्धार का मत है। जब राधास्वामी दयाल आये तब जीवों को चैतन्य की बख़्शिश की और जिन पर ख़ास दया है वह अपनी कमाई करके उस पूँजी को बढ़ाते जाते हैं। जो कि राधास्वामी दयाल के संग रहे और जिन्होंने कि दरशन किया, उन की बड़ भागता क्या सराही जावे? उन को चाहिये कि उस समय को याद करके स्वरूप का ध्यान, नाम का सुमिरन और बचन बिलास का चिंतवन करें तो भजन से बढ़ कर फ़ायदा होगा।

२ — राम कृष्ण को जो लोग ज़्यादातर मान रहे हैं, वह निर्मल परमार्थी भाव नहीं रखते हैं। मगर राधास्वामी दयाल जब आइन्दा शाहंशाही चोले में तशरीफ़ लावेंगे,

तब आप से आप कुल जीव निर्मल और सच्चे भाव के साथ उन के मोतक़िद होंगे।

सत्त पुरुष ने धारा रूपा। संत सरूप भये जग भूपा।।
हुक़्म दिया क़तई अब ऐसा। भक्ति बिना तरना कहो कैसा।।

गुरु भक्ति बिन तरे न कोई। बिन गुरु ज्ञान पार नहिं होई।।

३ — ब्रह्म के अवतार एक जुग में आये, फिर ग़ायब। फिर दूसरे जुग में आये थे। और राधास्वामी दयाल जब से परम संत कबीर साहब को भेजा, तब से बराबर संत और साध, अपने निज पुत्र और मुसाहिब भेजते रहे हैं और आप भी अवतार धारन करके आये। जैसे कृष्ण ब्रह्म का संपूर्ण अवतार था, वैसे ही स्वामीजी महाराज राधास्वामी दयाल के संपूर्ण अवतार थे और बराबर सिलसिला जारी है। गुप्त होने के वक़्त भी फ़रमाया कि ऐसा न समझो कि हम कहीं जाते हैं, हम सब के अंग संग हैं और दया बराबर जारी है बल्कि पेश्तर से भी विशेष। लोग राम नौमी वग़ैरा ब्रह्म के औतार लेने के दिन को तिथि त्यौहार मानते हैं। हम लोगों को तो संत सतगुरु के गुप्त होने का वक़्त भारी उत्सव का समय है।

४ — सवाल - गुप्त होने पर ज़्यादा दया कैसे होती है ?

जवाब - जैसे बादल जब आता है, तब वर्षा होती है और चलते वक़्त भी एक दफ़ा ज़ोर शोर से वर्षा होती है और जैसे बादशाह या अमीर जब आते हैं तब उस वक़्त जो इनाम इकराम देना है, देते हैं और जाते वक़्त हाथ खोल के इस को दे, उसको दे, ख़ूब बख़्शिश करते हैं, वैसे ही संत भी जब गुप्त होते हैं, तब अपना जा-नशीन मुक़र्रर करते हैं और जीवों पर ज़्यादा दया इनायत करते

हैं। दृष्टान्त का एक अंग लेना चाहिये। जिससे कि अपना मतलब निकले, उस पर निगाह करनी चाहिये। इधर उधर टटोलना नहीं चाहिये।

बचन ४४

सतसंग की महिमा

१ — जहाँ आब हवा अच्छी है और ठंडक है, वहाँ बैठने से दिल दिमाग़ को फ़रहत और तक़्वियत आती है। इसी तरह सतसंग में जहाँ कि प्रेमी और भक्त जन सुरत मन समेटते हैं, वहाँ बैठने से सुर्त को ताक़त और क़ुव्वत मिलती है और थोड़ा बहुत विशेष चैतन्य से जो सिलसिला होता है, उससे ज़्यादा रस और आनन्द मिलता है और चैतन्यता बढ़ती है। यही गोया सुरत का अहार है। जिस्मानी सेहत के लिये लोग पहाड़ पर जाते हैं और हर तरह की तकलीफ़ गवारा करते हैं, जैसे लोग नैनीताल वग़ैरा को जाते हैं, तो रूहानी ताक़त बढ़ाने के लिये किस क़दर भारी ज़रूरत सतसंग की है? इसमें जो कुछ तरद्दुद हो, उसकी कुछ भी परवाह नहीं करना चाहिये मगर लोगों को क़दर सतसंग की नहीं है। झूठमूठ हीला बहाना करके घर बैठे रहते हैं और पास भी रहते हैं तो भी नहीं आते हैं।

पानी बिच मीन पियासी। मोहिं सुन सुन आवत हाँसी।।

२ — बाज़े हैं दूर, मगर असल में क़रीब हैं और बहुतेरे ज़ाहिर में हैं निकटवर्ती, पर दर-हक़ीक़त दूर हैं, क्योंकि उनका चित्त कहीं और जगह अटका हुआ है।

लाख कोस साजन बसे, हिरदे बसे हुज़ूर।
द्वारे पर दुरजन बसे, लाख कोस से दूर।।

३ — बहुतेरे सतसंग करते हैं और फिर भी नहीं करते हैं यानी ज़ाहिर में बचन सुनते हुए नज़राई पड़ते हैं मगर मानने के लिये तैयार नहीं हैं यानी उन पर अमल नहीं करते हैं।

४ — जुवारी शराबी अपना ख़ाना ख़राब कर देते हैं। हर तरह की ज़िल्लत उठाते हैं। मगर वह जो चाट लगी है, उसको नहीं छोड़ते हैं। ऐसे ही जिसको कि सतसंग की चाट लगी है, उसका चाहे कैसा ही हर्ज नुक़सान होता है, कुटुम्बी उस पर सख़्ती और तंगी करते हैं, पर किसी की परवाह नहीं करता है और जिसको कि लाग नहीं है, उसने गोया चमकते हुए सूरज की गरमी और रोशनी के बीच में संसारी चाह और बासना का पर्दा डाल दिया है। इसलिये दया से ख़ाली और मेहर से महरूम रहता है। बिरादरी का कोई काम होता है तो फ़िलफ़ौर दौड़ता है और सतसंग की परवाह भी नहीं करता है। कम-बख़्त है। मन उसका चोर है। फिर क्या किया जावे? डाक्टर जीवतराम कैसा बहादुर था, दोनों फेफड़े नदारद थे और ख़ुद डाक्टर था, ज़रा भी मौत की परवाह नहीं करता था और सतसंग की हाज़िरी बराबर देता था। मरने के एक रोज़ पेश्तर भी सूरमाओं की तरह बैठा था। इसी तरह बूलचन्द की हालत थी। मरते दम तक सतसंग नहीं छोड़ा और मौत को तो समझता था कि अपने घर जाते हैं। जीते जी सब बन्धन तोड़ दिये। यह सतसंग का फल है।

५ — कहने का मुद्दा यह है कि सतसंग की हाज़िरी अंतरी और बाहरी बराबर देते रहना चाहिये। अगर अंतरी

न हो सके तो बाहरी ज़रूर देना चाहिये। संसार में भी जो कोई हाज़िरी देता है, उस पर हाकिम मेहरबान होता है और इनाम देता है। ऐसे ही जो सतसंग की हाज़िरी देता है, उस से मालिक राज़ी होता है और वही परमार्थी लाभ उठाता है। पोथी का पाठ सुनने से बीमारी भी हल्की हो जाती है क्योंकि उस में चित्त लग जाता है। जिस पर मालिक ख़ास दया करता है तो पहिले उसकी शिरकत सतसंग में कराता है।

सतसंग जल जो कोई पावे। सब मैलाई कट कट जावे।।
सतसंग महिमा कहा बखानूँ। इस सम जतन और नहिं मानूँ।।

सतसंग किस को कहत हैं, सो भी तुम सुन लेहु।
सत्तनाम सतपुरुष का, जहाँ कीर्तन होय।।

याते संत संग अब कीजे। और संग सब परिहर दीजे।।
सतसंग याका नाम कहावे। मिलें संत तब यह घर पावे।।

सतसंग २ मुख से गावें। करें नित्त फल कछू न पावें।।
सतसंग महिमा है अति भारी। पर कोइ जीव मिले अधिकारी।।
अधिकारी बिन प्रकट नहीं फल।सतसंग तो कीन्हा सब चल चल।।
चल चल आये सतगुरु आगे। बचन न पकड़ा दरश न लागे।।
सतसंग और सतगुरु क्या करें। सो जीव भौजल कैसे तरें।।
पत्थर पानी लेखा बरता। जल मिसरी सम मेल न करता।।
बाहर का संग जब अस होई। सतगुरु सम प्रीतम नहिं कोई।।
तब अन्तर का सतसंग धारे। सुरत चढ़े असमान पुकारे।।
बोले अर्श और गरजे गगना। बैठा कुर्सी मन हुआ मगना।।

बचन ४५

सतगुरु की पहिचान करना ज़रूरी है

१ — मालिक की मौज हर एक बात में बहुत ही ठीक और ज़रूरी है। लेकिन संत सतगुरु का गुप्त होना,

इसमें बड़ी अभागता सारी पृथ्वी की है। उनका गुप्त होना गोया सारे जगत का निगुरा होना है। संत सतगुरु बड़ा जवाहिर इस संसार में हैं। उनका दरशन करना, चरनामृत और परशादी लेना, ख़ुद मालिक का दरशन करना, चरनामृत और परशादी पाना है। उन को हार चढ़ाना और आरती करना, ख़ुद मालिक को हार चढ़ाना और आरती करना है। हम लोग जब आगरे जाते थे, तब हुज़ूर महाराज के दरशन करते थे, बचन सुनते थे, आरती करते थे, चरनामृत और परशादी लेते थे। यह सब न्यामत आसानी से हासिल होती थी मगर हम लोगों को क़दर नहीं थी। और मालिक को जो कि संत सतगुरु रूप धारन करके बिराजते थे, नहीं पहिचाना। अब हुज़ूर महाराज के गुप्त होने पर हम सब को क़दर हुई है।

सतगुरु खोजो री प्यारी, जगत में दुर्लभ रतन यही।
जिन पर मेहर दया सतगुरु की, उनको दरस दई।।

२ — जिन्होंने कि हुज़ूर महाराज को पहिचाना, वह आज कल देखिये किस क़दर विरह में हैं और तड़पते हैं और कैसा उन का हाल हो गया है। हुज़ूर महाराज का गुप्त होना, मालिक की तरफ़ हम लोगों की विरह जगाने के लिये हुआ है। इस में बड़ी मौज और मसलहत है। अब फिर जब संत सतगुरु प्रकट होंगे और उनकी पहिचान आवेगी, तब देखिये कैसा आनन्द होगा। हम लोगों को वक़्तन फ़वक़्तन मालिक के चरनों में संत सतगुरु के प्रकट होने के वास्ते प्रार्थना करते रहना चाहिये। जब तड़प और विरह ज़बर होगी, संत सतगुरु आप प्रकट होंगे और अमृत रूपी बचनों से जीवों की तपन को बुझावेंगे।

विरह जलन्ती देखकर, साईं आये धाय।
प्रेम बूँद से छिड़क कर, जलती लई बुझाय।।

३ — अभी जो कुछ कसर है, हम लोगों की विरह की है। अलबत्ता जब संत सतगुरु प्रकट होंगे, उनकी पहिचान करना ज़रूरी है। मगर यह उन्हीं की दया पर मुनहसिर है। क्योंकि जो बादशाह भेष बदल कर आवे उसको कौन पहिचान सकता है। मगर जो वह चाहे, ब-हर-सूरत इशारा अपनी पहिचान का दे सकता है।

४ — सवाल - जब किसी सतसंगी को दूसरे में परतीत आवे कि यह सतगुरु हैं, तब वह उनका ध्यान करे या नहीं?

जवाब - जैसे सतगुरु अपने सेवक को परख लेते हैं, वैसे ही सेवक को भी चाहिये कि उनके स्वरूप का ध्यान करने के पेश्तर अच्छी तरह से उनकी परख पहिचान करले, जिस तरह कि मिट्‌टी का बरतन पहिले ठोंक बजा के लेते हैं। और जब तक अन्तरी और बाहरी परचे न मिलें, तब तक रूप के बदलने में जल्दबाज़ी हर्गिज़ न करे।

जब लग देखूँ न अपने नैना। कभी न मानूँ गुरु के बैना।।

५ — सवाल - हम लोग तो सतगुरु की और परख पहिचान नहीं कर सकते हैं, सिर्फ़ इतना ही कि जैसे कि हुज़ूर महाराज के चरनामृत और परशादी से फ़ायदा होता था, वैसे अब जिसमें हमको यक़ीन है कि यह संत सतगुरु हैं, उनका चरनामृत और परशादी जब हम लेंगे और जो वही फ़ायदा हुआ तो उन को सतगुरु करके मानेंगे।

जवाब - फ़र्ज़ करो कि फ़लाने सतसंगी में हम लोगों का गुमान है और वह अपनी परशादी और चरनामृत नहीं देता है तो फिर क्या करेंगे?

६ — जिसका हमें यक़ीन है कि इसने हमारा मन हरा है और छिप के बैठा है, उसका हम चरन भी लेंगे और उस का चरनामृत परशादी भी खा पी लेंगे और जो वह ग़ुस्सा करेगा तो ख़ुशी के साथ उसकी बरदाश्त करेंगे, क्योंकि इसमें हमारे जीव का कल्याण है। यह सुन कर महाराज साहब अपना चरन छिपा कर बैठे और सब सतसंगी हँसने लगे।

७ — सवाल - जिसने हु.ज़ूर महाराज को अपना मालिक और गुरु समझा था, उस को फिर दूसरे गुरु करने की क्या ज़रूरत है?

जवाब - जिसके अंतर में हु.ज़ूर महाराज का स्वरूप प्रकट हो गया, उसको फिर दूसरे स्वरूप के धारन करने की ज़रूरत नहीं है। जो फिर हु.ज़ूर महाराज देह स्वरूप में प्रकट होवें तो पहिले और दूसरे देह स्वरूप में कुछ फ़र्क़ नहीं होगा, दोनों स्वरूप शब्द स्वरूप से मिले हुए होंगे। इसलिये दूसरे से कोई विरोध नहीं करेगा बल्कि . खुशी के साथ उस का सतसंग करेगा।

बचन ४६

संग का असर

१ — जैसा जिसका ख़वास है, उसका संग करने से वह अंग ज़रूर पैदा होता है, मसलन परमार्थी का संग करने से सतोगुनी अंग जागते हैं और परमार्थी चाह पैदा होती है। साध महात्मा के संग से सुरत मन का सिमटाव और चढ़ाव होता है। जुआरी व शराबी का संग करने से

यह भी जुआरी शराबी हो जाता है। बालक को देखने से प्यार अंग जागता है। बैरी को देखने से विरोध और क्रोध जागता है। विद्यावान और दुनियादार को देखने से संसारी ख़यालात पैदा होते हैं। कहने का मुद्दा यह है कि संग साथ का बड़ा भारी असर होता है। इसकी हमेशा सँभाल रखनी चाहिये। बचन बानी में भी यही हिदायत है कि सतसंग करो और कुसंग से बचो और हटो।

२ — जितने मैल और विकार हैं सब सतसंग से दूर होते हैं। लड़का अगर शरारत भी करता है तो भी उसका प्यार मइया के हिरदय में समाया रहता है, इसी तरह भक्त जन में जो सतसंग करता है, हरचन्द अभी ऐब और विकार मौजूद है, तो भी उसकी भक्ति में फ़र्क़ नहीं आता है। जैसे कोई बीमार है और नशा पी ले तो नशे का असर ज़रूर होता है, इसी तरह जिस का मन बीमार है, वह अगर सतसंग करे, उस पर असर ज़रूर होगा, मगर अभी उसको परख पहिचान नहीं आवेगी, फ़ायदा मालूम नहीं होगा, क्योंकि जिस घाट पर कि अभी यह बैठा हुआ है, वहाँ की ताक़त जागी हुई है, इसलिये संसारी संग साथ और कारोबार का असर जल्द मालूम होता है और परमार्थी संग का असर जिस घाट पर होता है, वहाँ की ताक़त जागी हुई नहीं है, इसलिये परख पहिचान देर में आती है।

३ — असर ज़रूर होता है मगर अभी क़ाबलियत नहीं है, जैसे कामी पुरुष को जवान स्त्री के देखने से काम अंग जागता है और जिस में कि अभी यह अंग पुख़्ता नहीं हुआ है, उस पर उसका असर नहीं होता है। ताक़त मौजूद है, मगर अभी सोई हुई है। सतसंग का असर मालूम होने के लिये क़ाबलियत भी दरकार है। धीरे धीरे जब पुष्ट होगा तब असर प्रकट होगा। अगर

किसी के सुरत मन का सिमटाव होता है और प्रीति नहीं है तो अभी भेद है, कोई न कोई पेच है, परदे का खेल है। सतसंग का फल यही है कि प्रीति जागे और प्रेम उमँगे और सुरत मन एक दम तन से झड़झड़ा कर सुन्दर में यानी सुन्न के द्वार में पहुँच जावें।

बचन ४७

दया का वर्णन

१ — जब दया की धार उमगी, तब राधास्वामी दयाल जीवों के उद्धार के लिये इस संसार में संत सतगुरु रूप धारन करके आये और गुप्त होते वक़्त अपनी ज़बान मुबारक से फ़रमाया कि ऐसा न समझना कि हम कहीं जाते हैं, हर एक सतसंगी के अंग संग रह कर पेश्तर से ज़्यादा सब की सँभाल और रक्षा होगी और सतसंग इस से भी ज़्यादा बढ़ेगा और सब जीव राधास्वामी मत क़बूल और पसन्द करेंगे। और वाक़ई हो भी ऐसा ही रहा है और आइन्दा ऐसा ही होगा। राधास्वामी दयाल ने दया करके जा-ब-जा सतसंग जारी किया है और जहाँ प्रेमी जन इकट्ठे हो कर राधास्वामी मत की महिमा और चरचा करते हैं, वहाँ निज रूप से मालिक आप मौजूद है और सतसंग की सेवा वग़ैरा सब कार्रवाई उसी की ताक़त से हो रही है और जिन को मत के समझाने बुझाने की सेवा सुपर्द की गई है, उनके ज़रिये से जीवों की मदद करता है।

२ — गुरु या संत सतगुरु, सिवाय राधास्वामी दयाल के और कोई नहीं हो सकता है। हम सब आपस में भाई बहिन हैं। किसी में गुरु भाव लाना नहीं चाहिये

या किसी को प्रेमी समझ कर ऐसा मान लेना कि हमारा काम उससे बनेगा, यह महज़ ग़लत फ़हमी है। इससे कुछ नहीं होगा। जब सतगुरु मौजूद थे, तब हम लोगों को क़दर नहीं थी, कुछ पहिचान नहीं की यानी जिस क़दर करना चाहिये था उतनी नहीं की। मुनासिब था कि अपने को ख़ाक कर डालते। जिस पृथ्वी पर सतगुरु प्रकट होते हैं, वह भी पूजने योग्य है। मगर जीव का क़सूर नहीं है। भूल भरम के देश में बैठा है। अलबत्ता सच्चे दिल से सतगुरु के प्रकट होने के लिये प्रार्थना करते रहना चाहिये। जब मौज होगी, तब प्रकट होंगे और जब तक ऐसी कार्रवाई की मौज नहीं है, तब तक धीरज के साथ अपना अभ्यास करते रहना चाहिये। मालिक कहीं गया नहीं है। घट घट में हाज़िर नाज़िर और मौजूद है। निज रूप से हर किसी की जिस क़दर मुनासिब है, तरक़्क़ी और मदद कर रहा है। इस मत में जो शामिल हुए हैं, वह धन या मान बड़ाई हासिल करने के लिये नहीं शरीक हुए हैं। उन का मतलब सिर्फ़ अपने जीव के कल्यान का होना चाहिये। पर सतसंग में बहुत ही कम ऐसे जीव हैं जो सच्चे होकर परमार्थ में लगे हैं और तन मन धन की परवाह नहीं करते।

३ — जो कोई मालिक की डेवढ़ी पर जैसे तैसे हाज़िरी देता है यानी अन्तर में पुकारता है, उस पर एक रोज़ ज़रूर दया होगी। मालिक देखता है कि उसको न धन की, न मान बड़ाई की और न भोगों की चाह है, ख़ास परमार्थी मतलब है। ऐसा परमार्थी चाहे डेवढ़ी पर पहुँचे या न पहुँचे, उस पर दया ज़रूर नाज़िल होगी। अगर मन में अभी विकार है, तो कोई मुज़ायक़ा नहीं है। सब के मन का यही हाल है। इसका मसाला ऐसा ही है। सिर्फ़ महात्माओं का मन पवित्र होता है। सब को चाहिये

कि सतसंग और अभ्यास करने के लिये जतन करते रहें। एक रोज़ ज़रूर दया आवेगी और दया मेहर करनी करा के विशेष दया का अधिकारी बनावेगी।

संत दया बिन कोई न पावे। बिना संत कुछ हाथ न आवे।। १ ।।
करनी भी सब संत बताई। बिना मेहर पचना है भाई।। २ ।।
ताते मुख्य मेहर अब रही। सरन पड़ो राधास्वामी कही।। ३ ।।

४ — मालिक सब के घट का हाल जानता है। जिस रोज़ कि दया आई, उसी रोज़ प्रेम प्रकट होगा, सुरत मन सिमटने लगेंगे और दिन दिन तरक़्क़ी होती जावेगी। ग़रज़ कि जो कोई संत मत में शामिल हुआ है और जैसा तैसा रोज़ाना सतसंग और अभ्यास करता है और सिवाय अपने जीव के कल्यान के और कोई मतलब नहीं रखता है, उस पर दया ज़रूर होगी और उसका एक रोज़ ज़रूर काम बनेगा।

दया गुरु क्या करूँ बरनन, अहा हाहा ओहो होहो।

५ — राधास्वामी दयाल दया करके वक़्तन फ़वक़्तन साध संत भेजते रहे हैं, मगर जीव ऐसी ग़फ़लत में पड़े हैं कि जिस का कोई हिसाब नहीं है। जैसे पागल अपने को राजा मानता है और बहुतेरा समझाओ नहीं समझता है, अगर इसकी सब पूँजी छीन कर कोठे में इस को बन्द कर दो तो भी अपने को राजा ही समझेगा, वैसे ही दुनिया के लोग भी पागल हैं, संसार की चाह हमेशा उठाया करते हैं और साध महात्मा की क़दर नहीं करते हैं।

* * * * * *

बचन ४८

बग़ैर परचे के प्रतीत नहीं होती और बग़ैर मदद पूरे गुरु के अन्तर में हरगिज़ कोई चल नहीं सकता। साध संग की महिमा अपार है।

१ — जब तक अन्तर में कोई परचा नहीं मिला है, तब तक जो प्रतीत है, वह क़ाबिल एतबार के नहीं है और जो परमार्थी कार्रवाई है, वह सब टेक में दाख़िल है। दुनिया नाशमान है। यहाँ की कोई चीज़ भरोसे के लायक़ नहीं है। धन दौलत सब यहाँ ही रह जाता है, मौत के वक़्त कुछ भी काम नहीं आता है। रूस के बादशाह का बेटा कहीं जंगल में एक बुढ़िया औरत की झोंपड़ी में जाकर मरा था। यह कोई इत्तिफ़ाक़िया नहीं हुआ था। सब में मसलहत है। अब देखिये रूस के बादशाह के बराबर कोई रू-ए-ज़मीन पर नहीं है। उसके लड़के का यह हाल हुआ कि कुछ भी यहाँ का सामान काम न आया तो और लोगों की क्या हैसियत है?

२ — जब तक तजरुबा नहीं है, तब तक प्रीति जैसी चाहिये, वैसी हरगिज़ नहीं आती है। जैसे बादशाह के महल में जब कोई जाता है, तो रास्ते में बड़ा ही आनन्द मालूम होता है, मसलन ख़ुशबू रोशनी वग़ैरा देख कर शांती आती है, वैसे ही जो मालिक के महल की तरफ़ चलता है, उसको भी मार्ग में बड़ी शीतलता और आनन्द प्राप्त होता है, शब्दों की झनकार सुन कर, अमृत की वर्षा से शीतल होकर, अमी अहार करके और प्रकाश

देख कर चलने वाली सुरत निहायत ही मगन होती है और अपना भाग सराहती है।

३ — अन्तर में चलने के लिये साथी ज़रूर होना चाहिये यानी बग़ैर पूरे गुरू के किसी की ताक़त नहीं कि काल कर्म से मुक़ाबला कर सके। इसलिये सतगुरु की मदद निहायत ही दरकार है। अकेला अन्तर में हरगिज़ कोई नहीं जा सकता है।

जो तू घट में चालन हार। चलने वाला संग ले यार।। १ ।।
जो गुरु परख न पावे घट में। तो मत जाय अकेला बट में।। २ ।।
रस्ते में है काल का घेरा। शब्द सुना दुख दे है घनेरा।। ३ ।।
अभ्यासी को कहे पुकारी। शब्द सुनो आओ सरन हमारी।। ४ ।।

४ — जैसे कोई बादशाह या अमीर किसी को इनाम दे, मसलन जागीर बख़्शे, तो पहिले उस के लिये हुक्म देता है और बाद इस के वह चीज़ मिलती है और जब मिलती है, तब ऐनुल-यक़ीन होता है, वैसे ही यहाँ भी जब कोई अन्तर में पर्चा मिलता है, तब थोड़ी सी शांति होती है। जब नाम की बख़्शिश होती है, तब ऐनुल-यक़ीन होता है और जब ज़ात से ज़ात मिल कर तदरूप होता है, तब हक़्कुल-यक़ीन होता है।

५ — राधास्वामी दयाल जीवों को अब गोया न्योता दे रहे हैं कि अपने घर को चलो।

कहें राधास्वामी यह तुम को। चलो सतलोक दूँ न्योता।।

६ — जीवों को सत्तलोक ले जाने के लिये गोया शब्द रूपी रेल राधास्वामी दयाल ने जारी करदी है। जो कोई चाहे, वह टिकट लेकर बैठ सकता है। सच्चे और खोजी जन को चाहिये कि अपनी जाँच करे कि परमार्थ जो हम कमा रहे हैं, उस से हम को क्या फ़ायदा हुआ है? अगर नहीं है तो ज़रूर और तलाश करनी चाहिये।

जैसे लड़के मदरसे में पढ़ते हैं, तो वे अपनी जाँच करते हैं कि क्या हमको हासिल हुआ या जो दवा करते हैं, वह भी देखते हैं, अगर एक दवा से फ़ायदा नहीं हुआ तो दूसरी दवा करते हैं, या जैसे दुकानदार अपने नफ़े नुकसान की जाँच करते हैं वैसे ही परमार्थी को भी चाहिये कि जिस मज़हब में वह है, उससे अगर फ़ायदा न होवे तो दूसरे मज़हब की तलाश करे।

७ — दुनिया में और जो मत हैं, वे भक्ति की रीति नहीं सिखलाते हैं, उलटा धन संतान वृद्धि में अटकाते हैं और संसार की प्रीति दृढ़ाते हैं। ऐसे मत, मन मत हैं, गुरू मत नहीं है। साध संग की महिमा भारी है। नानक साहब ने भी संग, गुरू और शब्द की बड़ी महिमा की है।

गगन मंडल में आसन बैसे, अनहद नाद बजावे।
कहें नानक तिस साध की, महिमा वेद कतेब न पावे।। १।।
जैसे जल में कँवल निरालंब, मुरग़ाबी नीसाने।
सुरत शब्द भौसागर तरिये, नानक नाम बखाने।। २।।
घर में घर दिखलाय दे, सो सतगुरु पुरुष सुजान।
पंच शब्द धुनकार धुन, तहाँ बाजे शब्द निशान।। ३।।
सत्त पुरुष जिन जानियाँ, सत गुरु तिसका नाँव।
तिस के सँग सिष ऊधरें, नानक हरि गुन गाव।। ४।।

संत सरन जो जन पड़े, सो जन उधरन हार।
संत की निन्दा नानका, बहुर बहुर औतार।

चरन साध के धो धो पी। अरप साध को अपना जी।। १।।
साध की धूर से कर अस्नान। साध के ऊपर जा क़ुरबान।। २।।
साध सेवा बड़ भागी पाय। साध संग हरि कीरत गाय।। ३।।
अनेक विघन तें साधू राखे। हरि गुन गाय अमृत रस चाखे।।४।।
ओटा गहे संत दर आया। सर्व सुक्ख नानक ते पाया।। ५।।

८ — जैसे संसार में बिना उस्ताद के कोई काम नहीं हो सकता, वैसे ही परमार्थ में भी पूरे गुरु की ज़रूरत है। बग़ैर मदद पूरे गुरु के यह मन हर्गिज़ अपनी

बदमाशी से बाज़ नहीं आता। मन मिस्ल जंगली बन्दर के है कि जब तक वह किसी उस्ताद के तले नहीं आता, तब तक दुरुस्त नहीं होता यानी जब तक मन गुरु की सरन में नहीं आवेगा, तब तक सीधा नहीं होगा और न प्रीति प्रतीत के साथ कार्रवाई करेगा।

कोई तरह यह मन नहीं हाथ आयगा।
पूरे गुरु की छाया से मर जायगा।।
इसलिये दामन को तू उन के पकड़।
छोड़ मत ऐ यार उस को धर जकड़।।

९ — कहने का मुद्दा यह है कि बग़ैर परख के परतीत नहीं होती और जो बिना परख के परतीत है, उसकी क़दर नहीं होती, मसलन हीरा है, जिसको कि उस की क़ीमत की ख़बर है, वह क़दर कर सकता है। गँवार जिस को परख नहीं है, वह भला क्या क़दर करेगा? परमार्थ में शुरू में परख नहीं है, पर समझौती है। पूरे गुरू की पहिचान जब इसको आवेगी, तब उमंग और उत्साह बे हिसाब पैदा होगा, भजन ध्यान वग़ैरा परमार्थी कार्रवाई बड़ी मुस्तैदी से करने लगेगा। जैसे हर एक काम के लिये द्वारे के जगाने की ज़रूरत है, मसलन अन्तरी दरशन के लिये तीसरा तिल जगाया जाता है, वैसे ही प्रतीत का भी द्वारा जगाना चाहिये और वह द्वारा हृदय है।

बचन ४९

संस्कार का वर्णन

१ — संस्कार मिस्ल दरख़्त के बीज के है। जब वह बीज हवा मिट्टी और पानी के साथ हुआ और कुल्ला

फूटा और दरख़्त उगना शुरू हुआ तो उस की परवरिश के वास्ते माली की ज़रूरत है, ताकि वह हर तरह उस की निगह-दाश्त और परवरिश करे यानी उस को मुनासिब तौर पर सींचे और गाय बैल जानवरों से उस ना.ज़ुक पौदे को बचावे और उस के पास जो काँटे वग़ैरा हों, उन को दूर करे और कभी कभी फ़िज़ूल डालियों को भी क़लम करता रहे, इसी तरह संत सतगुरु संस्कारी जीवों को सतसंग रूपी खेत में इकट्ठा करके, उनकी निगह-दाश्त और परवरिश करते हैं यानी काल कर्म से उन को बचाते हैं और जो विकारी अंग उनमें मौजूद होते हैं, उन को साफ़ करते हैं और कभी कभी रोग सोग दुख आदिक लाकर उन के अन्दरूनी विकारों को छाँटते हैं। यह संस्कार का बीज भी संत ही जीवों के हिरदे में डालते हैं, तो शुरू से आख़ीर तक वह ही करता धरता हैं यानी वह जीव को संस्कारी भी बनाते हैं और मुनासिब और ज़रूरी करनी और भक्ति वग़ैरा भी कराकर धुर धाम में पहुँचाते हैं। ज़ाहिरा मालूम होता है कि यह काम जीव ने किया, और होता सब उन के हुकुम और मौज से है। गो कि दरख़्त के बीज में ताक़त और शक्ति उगने और बढ़ने की धरी है, पर बग़ैर मदद और निगह-दाश्त माली के, वह परवरिश नहीं पा सकता और उस में फल जैसे चाहिये नहीं लग सकते हैं।

२ — सवाल - संत सतगुरु के रुबरू आने का संस्कार किस तरह हुआ?

जवाब - यह संस्कार भी जीव के आदि कर्म के सबब से हुआ, यानी जिन जीवों में कि सुरत अंग ज़्यादा है, वह जीव संत सतगुरु के सामने आते हैं और फिर उन में भक्ति का बीज डाला जाता है।

* * * * * *

बचन ५०

जो सतगुरु होयँ सहाई।
तो सभी बात बन आई।।

१ — जब तक हुज़ूर राधास्वामी दयाल दया व मेहर न फ़रमावेंगे, तब तक कोई काम किसी तरह का बन नहीं सकता। उनकी दया से सब कारज दुरुस्त हो सकता है और वह दया तब ही फ़रमावेंगे, जब कि यह जीव दृढ़ प्रतीत और भरोसा उन की मेहर का रख कर कार्रवाई करेगा और उनकी सरन इस तरह लेगा कि "जो कुछ करें, करें राधास्वामी" यानी सब बल और आसरा तोड़ कर एक उन्हीं का आसरा अन्तर और बाहर रक्खेगा, जैसे बालक अपनी माता का भरोसा रखता है और हरचन्द इधर उधर खेलता कूदता है, मगर जब रुजू करेगा तो मइया की तरफ़ करेगा और गो कि उस को अपनी माता के प्यार और मुहब्बत की ख़बर नहीं है, लेकिन आसरा उसी का रखता है। इसी तरह जीव को अगर्चे अपने माता पिता राधास्वामी दयाल की समर्थता और गति और प्यार की ख़बर नहीं है, फिर भी अपने क़सूरों का ख़्याल न करके, हर हालत दुख और सुख में उन्हीं का आसरा उस को ढूँढ़ना चाहिये। वह ख़ूब जानते हैं कि इस देश में माया और मन का कैसा ज़ोर शोर है और जीव निबल और लाचार है, इसलिये इस की भूल चूक का ज़रा भी ख़याल नहीं फ़रमाते हैं और दया ही दया करते हैं। पस सब अटक भटक छोड़ कर उनकी दया का भरोसा दृढ़ रखना चाहिये और किसी तरह मायूस न होना चाहिये। बाहर में चाहे जैसा जतन करे, मगर अन्तर में सिवाय उनके किसी दूसरे का भरोसा न

रक्खे। जब मन छोटा पड़ेगा, तब झट शब्द की गोद में बैठ जावेगा। जैसा जैसा मुनासिब है, वह करनी आप करा रहे हैं और गढ़त भी इसकी बराबर जारी है।

२ — सवाल - फिर चाहे जिस क़दर क़सूर करते जायँ, वह तो माफ़ ही फ़रमावेंगे?

जवाब - बेशक ज़रूर माफ़ ही फ़रमावेंगे, मगर जो मुनासिब होगा तो एक तमाँचा भी लगायेंगे।

३ — ऐसी भारी दया हुज़ूर राधास्वामी दयाल की है कि दुनिया का भी सब काम जारी रहे और परमार्थ भी आसानी से हासिल होता जावे, जैसा कि गुरु नानक साहब ने फ़रमाया है

पूरा सतगुरु पाइयाँ, और पूरी पाई जुक्त।
हसंदियाँ, खिलन्दियाँ, खवन्दियाँ, पिवन्दियाँ, बिच्चे पाई मुक्त।।

अन धन और सन्तान भोग रस। जगत भोग और मिला जोग रस।।
पर किरपा सतगुरु अस रहही। मोह न ब्यापे जग नहिं फसई।।
रहे सुरत निर्मल गुरु साथा। शब्द मिले रहे चरनन माथा।।
अपनी दया से गुरु दियो दाना। सेवक तो कुछ माँग न जाना।।
नाम अनाम पदारथ न्यारा। सो सतगुरु दीना कर प्यारा।।
अब देवे को कुछ न रहाई। सतगुरु ही तेरे हुए भाई।।

* * * * * *

भाग चौथा

मन का रोग और उसकी संभाल और गढ़त

बचन ५१

मन का रोग

१ – जैसे तन का बुख़ार होता है, वैसे ही मन का भी बुख़ार होता है। तन के बुख़ार में ज़बान ख़ुश्क हो जाती है, ज़ायक़ा फीका हो जाता है, अन्तर में तपिश होती है और नौ द्वारों से सुरत की धार हट जाती है। खान पान और आब हवा पर तन की सेहत मुनहसिर है। इनमें जब फ़र्क़ होता है, तब मसाला कसरत से इकट्ठा होता है और चूँकि माद्दे से चैतन्य को नफ़रत है, इसलिये धार हट जाती है और तपन यानी बुख़ार होता है। फिर जब मसाला झाड़ा जाता है, तब अमृत की धार बराबर जारी होती है और तन्दुरुस्ती होती है। इसी तरह मन का बुख़ार याने रोग होता है। चाह, बासना और नक़्श जब ज़्यादा होते हैं, तब कर्म फल नमूदार होते हैं। परमार्थ से रूखा फीका हो जाता है। भक्ति और सरधा भाव जो पहले था, वह नहीं रहता, क्योंकि मसाला इकट्ठा होने से चैतन्य धार हट जाती है। फिर जब मसाला झड़ता है, तब धार मन में आती है और सेहत होती है और जैसे तन की बीमारी से लोग उठते हैं तो पहिले से ज़्यादा तन्दुरुस्ती और हलकापन मालूम होता है, वैसे ही मन की बीमारी के बाद उस में ज़्यादा पाकीज़गी और हल्कापन होता है और लड़कों सा निर्मल स्वभाव और नवीन भक्ति उसमें आती है।

२ — सब्र और धीरज के साथ कर्म फल भोगना चाहिये। सुमिरन ध्यान और पोथी का पाठ करते रहना मुनासिब है। पर जीव बिचारा लाचार है। कुछ इसकी पेश नहीं जाती है।

जीव निबल क्या करे विचारा।
जब लग राधास्वामी करें न सहाम।।

३ — जैसे तन का बुख़ार आता है तो लाचार होता है, वैसे ही मन के बुख़ार में भी लाचार होता है।

बचन ५२

उलटी हालत की मसलहत और उसको मुफ़ीद मतलब जानना

१ — हम लोगों की निगाह निहायत ही तुच्छ और महदूद है। हालत मौजूदा पर नज़र है। उसके परे और पीछे क्या है या क्या होगा उसकी ख़बर ही नहीं है। भक्ति मार्ग में उल्टी सुल्टी हालतें ज़रूर आवेंगी और जैसे तैसे उन की बरदाश्त करनी पड़ेगी। संसार में जब जीवों के लिये मालिक ने सब इन्तज़ाम रक्खा है तो भक्त जन की दुख तकलीफ़ में क्यों नहीं सम्हाल होगी और वह उलटी हालत मसलहत से ख़ाली नहीं है।

२ — दृष्टान्त—एक पूरे गुरु थे। उन के पास एक शख़्स आया करता था, मगर बड़ा संशयात्मक था। हर बात का सबब पूछा करता था। उन महात्मा ने उस को अपने गुरुमुख चेले के पास भेज दिया और एक चिट्ठी भी लिख दी। उस में लिख दिया कि यह संशयरत है, इस का वहम दूर करने का इलाज करना चाहिये। वह चिट्ठी

लेकर गुरुमुख चेले के पास जा पहुँचा। उसने कहा, एक महीना जो हम काम करें उस में चूँ चिरा न करना। महीने के बाद हम तुम को बतलावेंगे। इस ने क़बूल किया। एक रोज़ गुरुमुख चेले ने उस से कहा कि कफ़न बाज़ार से ख़रीद कर लाओ। वह ले आया। कहा कि कोठे में धर दो। उसने रख दिया। उस ने सोचा कि न कोई बीमार है, न मरा है, कफ़न किस लिये मँगवाया है। फिर दूसरे रोज़ कहा शादी का सामान लाओ। वह ले आया। अपने बेटे का ब्याह किया। बहुत ही रुपया पैसा ख़र्च किया और लोगों की ज़ियाफ़त की। लड़का जब शादी करके बहू को घर ले आया, हैज़ा हुआ, उसी रोज़ मर गया। गुरुमुख चेले ने कहा, वह कफ़न लाओ। वह शख़्स बड़ी झूँझल में भर गया और जो इक़रार किया था कि चूँ चिरा न करूँगा, उस को क़ायम न रख सका और कहा, कमबख़्त! तू ने बड़ी हत्या की, तुझे जब मालूम था कि लड़का मर जायगा, तब उसकी शादी क्यों की? नाहक़ एक बिचारी लड़की को विधवा कर दिया और इतने रुपये मुफ़्त ख़र्च किये। गुरुमुख चेले ने कहा कि इस लड़की ने मालिक से प्रार्थना की थी कि संसार में न फँसूँ और हमेशा तेरी भक्ति करूँ, सो सिवाय हमारे घर के कौन ऐसा घर है, जहाँ यह रह कर भक्ति करेगी और उस लड़के की उम्र इतनी ही थी, ज़्यादा नहीं थी, रुपये जो इतने ख़र्च किये गये, वह इस वास्ते कि लड़का मालिक के देश का बासी था, वहाँ जाने वाला था, और ऐसी भक्तिन लड़की हमारे घर में आई इसलिये ख़ुशी मनाई और रुपये पैसे निछावर किये। वह शख़्स बड़ा शरमिन्दा हुआ और अहद किया कि आइंदा किसी काम में संशय नहीं उठाऊँगा और मालिक की मौज को निहारूँगा।

३ — कहने का मुद्दा यह है कि हम लोगों की समझ बूझ हालत मौजूदा पर महदूद है। आइन्दा इस में क्या बेहतरी मुतसव्वर है, उस से ना-वाक़िफ़ हैं यानी उस का ज्ञान नहीं है। जब तक अपनी अक़ल-आराई और चतुराई पेश करते हैं, तब तक मौज से मुवाफ़िक़त नहीं कर सकते हैं। बजाय मुस्तक़िल होने के मायूसी होती है और उलटी हालत में क्या मुफ़ीद मतलब मुतसव्वर है, उस से महरूम रहते हैं।

गुरू की मौज रहो तुम धार। गुरू की रज़ा सम्हालो यार।।
गुरू जो करें सो हित कर जान। गुरू जो कहें सो चित धर मान।।
शुकर की करना समझ विचार। सुक्ख दुख देंगे हिकमत धार।।

बचन ५३

गढ़त की ज़रूरत और उसका फ़ायदा

१ — शुरू में जब कोई सतसंग में शरीक होता है, अगर सतसंग और अभ्यास अच्छी तरह से बनता है और स्वार्थ भी ब-दस्तूर क़ायम और मज़े में चलता है तो यह समझता है कि बस मेरा काम बन गया और इसी में तृप्त हो जाता है। यह ग़लती है, बल्कि काल का विघ्न है। जब तरक़्क़ी होगी, तब तन मन के बन्धन ढीले किये जावेंगे यानी हर तरह की तंगी इस को होगी। तन से दुखी, मन से दुखी और धन न होने से दुखी होगा। मगर इस में इस की गढ़त होती है और जो कि सरन में आये हैं, गढ़त तो उन की ज़रूर ही होगी। यह प्याला है तो कड़ुआ, मगर पिलाया ज़रूर जावेगा। जैसे लड़का रोवे चाहे चिल्लावे, मइया कड़वी दवा ज़रूर पिलाती है। इसी में उसका फ़ायदा मुतसव्वर है। जब ताक़त इस में आ

जाती है, तब गढ़त की कार्रवाई शुरू होती है। पर इस में भी राधास्वामी दयाल हिकमत-अमली करते हैं यानी कुछ अरसे गढ़त हुई, फिर जैसे ज़ख़्म पर मरहम लगाते हैं, कोई अर्से तक छोड़ देते हैं और ख़ातिर करते हैं। वक़्त मुनासिब पर फिर गढ़त शुरू करते हैं। कहने का मुद्दा यह कि बग़ैर गढ़त के इस का काम हरगिज़ नहीं हो सकता है और इसी को यह कु-दया समझता है और पुकारता है कि मेरे साथ बड़ा तशद्दुद हो रहा है। मगर असल में यही निज दया और यही तरक़्क़ी का निशान है।

२ — इस को चाहिये कि अपनी पेश्तर और मौजूदा हालत की परख करके देखे कि किस क़दर फ़र्क़ है। जब इस का घाट बदलने की मौज होती है, तब गढ़त की जाती है और यह घबराता है कि कोई भूल चूक मैंने नहीं की है, फिर यह क्या बाइस है जो सख़्त चोट लगाई जाती है, पर मालूम हो कि जिस घाट पर कि अब बैठा हुआ है, वहाँ से हटाया जाता है। कोई क़सूर किया होता तो उसमें इस क़दर जोश और तपन नहीं होती और न घाट बदलता, इसलिये चाहिये कि जब उल्टी-सुल्टी हालत आ पड़े, तो उस की बरदाश्त करे और अपना नफ़ा समझ कर सब्र के साथ झेले। मगर उस वक़्त समझौती क़ायम नहीं रहती। अगर समझौती रहे तो फिर गढ़त नहीं होती। यह शुरू की हालत है। मगर जब अनुभव जागता है, तब ख़ुशी के साथ गढ़त को झेलता है। और जिस वक़्त मालिक देखता है कि यह गढ़त की बरदाश्त नहीं कर सकता है और बहुत दुखी है, तो गढ़त की कार्रवाई मुल्तवी कर देता है और तब संत सतगुरु गुप्त भी हो जाते हैं और फिर जब मौज से प्रकट होते हैं तब फिर गढ़त की कार्रवाई हर एक के दरजे के अनुसार शुरू हो जाती है।

मन की गढ़त करावें दम दम। वह हैं मित्र वही हैं हमदम।।
भूल चूक बख़्शें वह छिन छिन। संग रहें इस के वह निस दिन।।
यह मन कच्चा बूझ न जाने। उन की गति कैसे पहिचाने।।

३ — जो कि सच्चे हैं, उन का चाहे कैसा ही निरादर करो, चाहे सख़्ती और तंगी करो, तो भी परमार्थ से नहीं हटते हैं और जो झूठे हैं, उनके आराम और स्वार्थ में ज़रा फ़र्क़ पड़ जावे तो फ़ौरन सतसंग छोड़ने को तैयार हो जाते हैं। जैसे कुआँ जब खोदा जाता है, तब कोई ज़मीन ऐसी होती है कि ज़रा सा खोदने पर पानी निकल आता है और कोई ऐसी पथरीली ज़मीन होती है कि बहुतेरा खोदते हैं, पानी निकलता ही नहीं है, इसी तरह बाज़ जीव ऐसे होते हैं कि थोड़ी सी गढ़त होने से ग़िलाफ़ यानी परदा उनका दूर हो जाता है और चैतन्य यानी शब्द और अमृत की धार प्रकट हो जाती है और कोई ऐसे हैं कि बहुतेरी उन की गढ़त होती है, कुछ भी असर नहीं होता। हमेशा नमदा बुद्धि और ऊसर ज़मीन के माफ़िक़ ख़ाली रहते हैं। कहने का मुद्दा यह है कि जिस पर ज़्यादा तह चढ़े हुए हैं, उसकी ज़्यादा गढ़त होती है और धार देरी से प्रकट होती है और जिस पर कम ग़िलाफ़ हैं, उस की कम गढ़त होती है और फ़ौरन ही थोड़े अर्से में अमृत की धार उस के घट में जारी हो जाती है।

बचन ५४

नज़र और नीयत का असर और उसका इलाज

१ — नज़र और नीयत का क्या असर होता है और उस के लिये क्या इलाज है, उस का थोड़ा सा बयान

किया जाता है। आज कल की नई रोशनी वाले इस बात पर ऐतबार नहीं लाते कि नज़र लगती है। जैसे कुत्ते बिल्ली और जानवर खाते हैं, वैसे यह लोग भी खाते-पीते हैं। चैतन्य का क्या असर है और वह कैसी भारी शक्ति है, उस की इन लोगों को ज़रा भी ख़बर नहीं और आकाश तत्व की क्या कार्रवाई है, उस की भी इन को ख़बर नहीं है, तो रूहानी ताक़त की क्या ख़बर होगी। मेस्मेरिज़्म में किसी की कार-आमद चीज़ के ज़रिये से मामूल जिस मंडल में कि वह रूह है, उस से सिलसिला क़ायम कर सकता है और जब तवज्जह उसकी एकसू होती है, तब मामूल अपना सिलसिला क़ायम कर सकता है, वैसे ही जब खान पान की चीज़ में विशेष तवज्जह आती है, तब नज़र लगती है और बुरी भली नज़र या नीयत का असर होता है। जितने विकारी अंग हैं, काम क्रोध वग़ैरा, इन का असर दूसरे पर देखो कैसा होता है। क्रोध की धारा छूटने से फ़ौरन दूसरे में असर आ जाता है और उस में भी आग लगा देती है। जब इन मलीन धारों का असर इस क़दर होता है तो रूहानी धार का असर किस क़दर न होता होगा। एक शख़्स के खाना सामने रक्खा था, दूसरा पास खड़ा था। उसने खाने वाले से कह दिया कि मेरी नाक़िस नज़र इसमें लगी है, इसको न खाना और जो ऐतबार न आवे तो पत्थर की पटिया के नीचे रख कर देख लो, क्या होता है। खाना पटिया के नीचे रखने से वह फट गई। अगर वही खाना वह शख़्स खाता तो ज़रूर उसके पेट में ज़हरीला असर पहुँचता।

२ — वाक़ई बुरी दृष्टि से बड़ा हर्ज और नुक़सान होता है। ज़हरीला अंग उसमें मौजूद है, फ़ौरन असर करता है। जुआ जो खेलते हैं, इस क़दर तवज्जह दोनों

जानिब से दाँव पर आ जाती है कि बयान से बाहर है, गोया उनकी जान उसमें लड़ रही है। दूसरे का आपा जिस में होता है, वह हारिज होता है। बर-अक्स इस के साध संत की दृष्टि जिस पर पड़ती है, निहाल कर देती है। हिदायत-नामे में फ़रमाया है कि मुर्शिद कामिल का दरशन दिल और दीदे से घंटे दो घंटे बराबर करते रहो यानी अपनी आँखों से उन की आँखों को ताकते रहो और जिस क़दर ताक़त अपनी देखो पलक से पलक न लगाओ और इस कसरत को रोज़ ज़्यादा करते रहो। जिस रोज़ और जिस वक़्त नज़र मेहर आलूद उनकी तुम पर पड़ेगी, उसी दिन सफ़ाई दिल की फ़ौरन होगी। संत महात्मा के स्पर्श करने से भी भारी असर पहुँचता है। इसी तरह संतों के पास जब कोई कर्मी और नाक़िस जीव आते हैं, तो उनको सतसंग में संत नहीं लगाते हैं। जैसे मैले की बदबू फैलती है, वैसे ही नाक़िस कर्म का असर भी फैलता है। कुल कारख़ाना धारों से चल रहा है।

३ — कहने का मुद्दा यह है कि परमार्थी को तीन बातों की सम्हाल करनी चाहिये। एक तो संग, दूसरे खाना पीना औरों के सामने, ख़्वाह औरों की चीज को ग्रहण करना, और तीसरे बोल चाल। बहुतेरों की ऐसी ख़राब आदत है कि फ़िज़ूल बकवाद किया करते हैं। इससे बोल, उससे बोल। परमार्थी का बड़ा हर्ज इसमें होता है। जो कि सच्चे हैं, उनको बड़ी नफ़रत आती है। अपना जो मुनासिब और ज़रूरी मतलब कहना है, वह कह कर चुप हो जाते हैं। और जो दूसरा आकर उनसे फ़िज़ूल बात चीत करता है तो चाहते हैं कि वह चला जावे और अपना चित्त अन्तर में लगाते हैं।

वाद विवादे विष घना, बोले होत उपाध।
मौन गहे सब की सहे, सुमिरे नाम अगाध।।

४ — खान पान की निसबत अगले महात्मा जो कुछ थोड़ा सा मुनासिब समझते थे, भक्त जन को खाने के वास्ते देते थे और इसीलिये हमेशा उनको अपने पास रखते थे।

५ — अलावा इसके संत मत में इन छः चीज़ों से परहेज़ करना भी निहायत ज़रूरी है और वह यह हैं।

जूआ, चोरी, मुख़बिरी, ब्याज, घूँस, पर नार।
जो चाहे दीदार को, एती वस्तु निवार।।

६ — लोग ब्याज पर ब्याज, फिर उस पर ब्याज चढ़ाते जाते हैं या रिश्वत ख़ोरी करते हैं। परमार्थी को यह क़तई मना है। ग़रज़ कि अगर दीदार और दरशन चाहते हो और सच्चे गाहक परमार्थ के हो तो इन छः बातों से हमेशा बचते रहना चाहिये।

७ — सवाल - औरों का ऐब देखने से भी असर होता है या नहीं?

जवाब - ज़रूर असर होता है। उलट कर वही ऐब फिर उसमें आ जाता है। जैसे तसवीर खैंचने से अक्स आ जाता है, वैसे दूसरे का ऐब ग़ौर से देखने से इसमें भी वह नक़्श पड़ जाता है।

८ — पहिले सब बात की समझौती लेना ज़रूरी है। मगर समझौती इसकी क़ायम नहीं रहती है। जैसे चिकने घड़े के ऊपर पानी नहीं ठहरता, इसी तरह अन्तःकरन के स्थान पर जो समझौती ली जाती है, वह वक़्त पर भूल जाती है। असल में तजरुबा जब होगा, तब अलबत्ता यह अपनी सम्हाल कर सकेगा।

* * * * * *

बचन ५५

मन के विघ्न और उनके दूर करने का इलाज

१ — मन में अक्सर अनेक तरह की गुनावन और दूसरे विघ्न पैदा होते हैं। उनको दूर करने के लिये थोड़ा सा निर्णय किया जाता है।

२ — राधास्वामी मत सच्चा है या नहीं, यह पहिला विघ्न है। गुरु पूरा और सच्चा है कि नहीं, यह दूसरा विघ्न है। परमार्थ में मन का आलसी और सुस्त होना, यह तीसरा विघ्न है। पहिले विघ्न की निस्बत सतसंग से जो समझौती इसे मिली है, उससे सोच विचार यह कर सकता है कि दुनिया के जो और मत हैं, उनमें कोई अभ्यास की युक्ति और अन्तरमुख कार्रवाई नहीं है और जिस तरह और जिस तरीक़े के साथ भेद राधास्वामी मत में निर्णय किया जाता है, वैसा और कहीं नहीं बयान किया गया है, बल्कि उनको ख़बर भी नहीं है। इससे उसको यक़ीन हो सकता है और शान्ति आ सकती है कि यह मत सच्चा और ऊँचा है। जिसने कि अभी इस क़दर सतसंग करके समझौती नहीं ली है कि और मतों से मुक़ाबला कर सके, उसको अलबत्ता तकलीफ़ होती है और यह विघ्न सताता है। इलाज इस का सतसंग है, अन्तर और बाहर।

३ — दूसरे विघ्न के लिये इसको चाहिए कि अपनी हालत और रहनी गहनी पेश्तर की हालत से मिलावे कि किस क़दर फ़र्क़ है, क्योंकि पूरे गुरु का सतसंग करने से हालत ज़रूर बदलती है और अन्तर में जो दया और

मदद मिलती है, उस से इस को तस्कीन और शान्ति आती है कि गुरु सच्चा मिला है।

नार ख़न्दां बाग़रा ख़न्दां कुनद। सुहबते मर्दां तुरा मर्दां कुनद।।

४ — जब इन दोनों विघ्नों में मन की पेश नहीं जाती है, तब तीसरा विघ्न उठाता है और वह यह है कि परमार्थ में काहिली करता है और सो जाता है। इसके लिये मन से पूछना चाहिये कि संसार का काम जिस में कि अपना लाभ समझता है, मसलन दफ़्तर का काम, वह किस क़दर तवज्जह और ख़ुशी के साथ करता है और परमार्थ में जिस में कि सच्चा लाभ है, उस में क्यों काहिली और कोताही करता है। इसको चाहिये कि मन से बातचीत और लड़ाई करे, जैसे बाहर लोगों से बहस मुबाहसा करता है। जब कोई किसी से परमार्थी गुफ़्तगू करता है तो अन्तर में उस को मदद कैसी मिलती है और नई २ बातें सूझती हैं कि इस को ख़ुद अचरज होता है कि कैसी बातें सूझीं जिन का ख़याल भी न था। इसी तरह मन से अन्तर में बातचीत करना चाहिये। ज़रूर दया और सहारा मिलेगा।

५ — यह मन काफ़िर है। इस से ख़ूब लड़ना चाहिये। जैसे पंडित आपस में लड़ते हैं, वैसे ही मन से जंग करनी चाहिये और जो यह ख़ुद मन का संग करेगा और भगोड़ा बनेगा तो लाचारी है।

चोर और कुतिया मिल गई, पहरा किस का दे।

६ — जब कोई मन का विकारी अंग ग़ालिब होता है, तब इस की समझौती यानी बुद्धि मारी जाती है, मसलन क्रोधी है कि झूँझल के वक़्त उसकी समझौती ग़ायब हो जाती है। समझौती दो क़िस्म की है, एक मामूली बुद्धि की और दूसरी अनुभवी। शुरू में मामूली बुद्धि से काम

लेना चाहिये और जब अनुभव जागेगा, तब मन की कुछ पेश नहीं चल सकेगी और कोई विघ्न पास नहीं आवेगा।

बचन ५६

सेवा में स्वामी को भूलना, यह भी एक क़िस्म का मन का विघ्न है

१ — पेश्तर जो मन के गुनावन और विघ्नों का ज़िक्र हुआ था, उसमें एक अंग बाक़ी रह गया, उसका बयान अब करते हैं। बेरूनी धार का पुष्ट होना, हरचन्द चाहे परमार्थी काम हो, उसमें भी हर्ज और नुक़सान है, मसलन किसी को सतसंग की सेवा सुपुर्द की गई है या और कोई काम ज़िम्मे किया गया है, उसमें हुकूमत और इख़्तियारात की ख़्वाहिश करना या सतसंग का जो अधिष्ठाता है, उसकी या अगर कहीं पूरे गुरु हैं, भाग से उनकी ख़ास सेवा मिल जावे, उसमें लिप्त हो जाना और जो असल मतलब है, उसको भूल जाना, यह नादानी है। परमार्थ का मतलब है कि सुरत मन जो बाहर बिखर रहे हैं, वह अन्तर में सिमटें और चढ़ें। इसके लिये जुक्ति सतसंग और अभ्यास और उसी के साथ सेवा भी रक्खी गई है। अगर यह मतलब सेवा में हासिल होता है तो ठीक है, नहीं तो असल मतलब ख़ब्त हो जावेगा। अब इससे यह न समझना चाहिये कि सेवा करना अच्छा नहीं है। अपने दरजे के अनुसार सेवा भी ज़रूरी और मुफ़ीद है। मगर इसीको मुख्य और मुक़द्दम समझना और दिन रात बहिरमुख कार्रवाई में उलझे और फँसे रहना और

सुरत मन के सिमटाव और चढ़ाव की मुख्यता न रखना, यह ग़लत फ़हमी है।

२ — बाज़े सेवा में स्वार्थ को मुक़द्दम रखते हैं। आपस में ईर्षा भी बड़ी होती है। और सेवा में रद्दो-बदल होने से विरोध और लड़ाई पैदा होती है। सेवा वह है जिसमें कि स्वामी राज़ी हो और ताड़ मार निंदा जो कुछ हो, ख़ुशी से उसको झेले और ज़रा भी अपनी अक़्ल आराई पेश न करे।

गुरु की ताड़ और मार सह धर कर पियार।

गुरु की फटकार और निरादर जिन सहा।
वह हुआ इन सब से बेहतर मैं कहा।।

संत बचन हिरदे में धरना। उनसे मुख मोड़न नहिं करना।।
मीठा कड़वा बोल सुहाई। मत को तेरे देहैं पकाई।।
गर्म सर्द का सोच न लाना। नर्क अगिन से तोहि बचाना।।

कभी मेहर से शहद देवें तुझे।
मुनासिब समझ ज़हर देवें तुझे।।
तू चुप हो के ले और सिर पर चढ़ा।
तू ख़ुश हो के पी और कह यह सदा।।
कि धन धन हैं धन धन हैं सतगुरु मेरे।
उतारेंगे भौजल से बेशक परे।।

वह तो ताड़ मार फटकारें। मैं चरनन पर सीस चढ़ाऊँ।।

३ — ताड़ मार फटकार और गर्म सर्द मीठा कड़ुआ बोल जब संतों ने रवा रक्खा है, तब तो बचन बानी में भी कहा है और जिसने कि खान पान ख़ातिरदारी और स्वार्थ की मुख्यता की है और जब गढ़त के बचन कहे गये, तब ही छोड़ने को तैयार हो गया, उसने गोया अपना परमार्थ मटियामेट, नष्ट और भ्रष्ट कर दिया।

और लोग तो संसारी भरम और बन्धन में भूले हुए हैं और यह परमार्थी भरम और बन्धन में भूला हुआ है। इसको चाहिये कि सोच विचार करे कि मेरा ताल्लुक़ सतसंग से किस बात का है। जो नतीजा और मतलब है, वह आया मिलता है कि नहीं, यानी सुरत मन सिमटते हैं या नहीं। अगर नहीं सिमटते हैं तो उसके लिये जतन करना चाहिये।

४ — बन्धन तो कटते नहीं। बाहरमुख कार्रवाई कम होती नहीं। कहीं कुछ खेल और कहीं कुछ तमाशा हो रहा है। कभी कभी जो कुछ खेल तमाशा हो तो हर्ज नहीं है, मगर मुक़द्दम बहिरमुख कार्रवाई को नहीं समझना चाहिये।

५ — इसी तरह जब खान पान वग़ैरा की ख़ातिरदारी हुई, तब तो सेवा के लिये उमंग और उत्साह हुआ, नहीं तो ज़रा सी बात में रोस करने लगे और रूखे फीके हो गये, यह भी ना-मुनासिब है। ऐसा भी देखने में आता है कि किसी को बाज़ार से सौदा लाने या परशाद बाँटने का काम सुपुर्द किया गया है और जो कहीं यह काम दूसरे के सुपुर्द कर दिया जावे तो मिज़ाज बिगड़ जाता है, क्योंकि परशाद बाँटना जो पहले उसके ताल्लुक़ था, उसमें से आप भी खाता था और अपने दोस्त आश्ना को भी देता था और जो वह कहीं बन्द हो गया तो घबराता है और रूखा फीका होता है और कहता है कि अब सतसंग में वह रस और मज़ा नहीं आता जो कि पहले था। हुक्म है कि

मन मारो तन को जारो। इन्द्री रस भोग बिसारो।।
तुम निद्रा आलस टारो। गुरु के संग शब्द पुकारो।।
सतसंग तुम नित ही धारो। गुरु दर्शन नित्त निहारो।।

६ — वह तो बात ही नहीं। उलटा बन्धन पक्का और मज़बूत कर रहे हैं। इसको चाहिये कि जो सेवा कि पहले इसके पास थी, वह अब अगर नहीं रही है यानी दूसरे के सुपुर्द हो गई है, तो उसमें .ख़ुश होवे कि शायद अन्तर में लगाने की मौज होगी या फिर जब मौज होगी तब वही या और कोई सेवा मिल जायगी। हर हालत में इसको शुकरगुज़ार होना चाहिये।

७ — रद्दो बदल तो ज़रूर होगा। सुरत मन के सिमटाव यानी अंतरमुख कार्रवाई में भी रद्दो बदल होता है, तो बहिरमुख कार्रवाई में कैसे न होगा? जो कि सच्चा गाहक है, वह हर हालत में राज़ी रहता है, चाहे ख़ातिरदारी और सेवा प्राप्त हो, चाहे न हो, हमेशा अपने मतलब को ज़ेर-निगाह रखता है यानी प्रीति प्रतीत और सुरत मन के सिमटाव की मुख्यता रखता है, अलबत्ता उस में अगर फ़र्क़ पड़ता है, तो घबराता है। हु.ज़ूर साहब के वक़्त में अगर किसी को ग्रास किसी रोज़ नहीं मिलता था या कहीं भूल से दूसरे को पहिले और उसको पीछे मिलता तो रोस करता था और कई रोज़ खाना नहीं खाता था। वाक़ई ऐसी हालत लोगों की हुई। एक शब्द है—

गुरु प्यारे सुनो फ़र्याद मेरी।

इस में देखिये जो कि सच्चा है, वह .ख़ुद पुकार प्रार्थना करता है कि —

मन को मारो इन्द्री जारो। आसा मनसा सकल हरी।।

और जो कि झूँठे हैं, वह उल्टा मन को पुष्ट कर रहे हैं।

८ — और जो कभी किसी से सेवा ले ली जाती है और फिर जब कोई काम उस को सुपुर्द किया जाता है,

उस वक़्त वह झूँझल में भर आता है और सेवा से इनकार करता है। इससे ज़ाहिर है कि अन्तर में मान और विरोध अंग धरा हुआ है, नहीं तो ख़ुशी से मंज़ूर कर लेता और अपना भाग सराहता कि मौज से फिर सेवा मिली।

जब २ सेव मिले भागन से। उमंग सहित तू ताहि कमाय।।

९ — सवाल - लड़का जैसे किसी चीज़ पर रोस करता है और फिर जब उसको वह चीज़ दी जाती है तो इनकार करता है और नहीं लेता है, ऐसे ये लोग भी इनकार करते हैं।

जवाब - वहाँ कहा है।

सतसंग करत बहुत दिन बीते। अब तो छोड़ पुरानी बान।।
कब लग करो कुटिलता गुरु से। अब तो गुरु को लो पहिचान।।

१० — अगर लड़का चोचले या नख़रे करे तो मुज़ायका नहीं। वह जायज़ है। और जो कहीं बड़ा चोचला और नख़रा करे तो गुस्ताख़ी है, उस की बरदाश्त नहीं। तालिब-इल्म जो कि ए बी सी क्लास में है, वह अगर उस्ताद से लड़ाई करे कि हम को बी॰ए॰ की किताब क्यों नहीं पढ़ाते हो, वह नादान है। इसी तरह जो जिस सेवा के लायक़ नहीं है, उसे अगर माँगे तो मूरख है। कहने का मुद्दा यह है कि सेवा का मतलब है कि जिसकी सेवा की जावे, उस की प्रीति जागे और याद आती रहे। यह नहीं कि उल्टी ईर्षा विरोध लड़ाई और रूखा फीकापन पैदा हो। असल में गुरु भक्ति बड़ी कठिन है।

आब आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निबाहन एक रस, महा कठिन व्यवहार।। १ ।।
गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।

बिना साँच पहुँचें नहीं महा कठिन व्यवहार।। २ ।।
भक्ति दुहेली गुरू की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारे हाथ सों, सो लेसी सतनाम।। ३ ।।
जब लग भक्ति सकाम है, तब लग निष्फल सेव।
कह कबीर वे क्यों मिलें, निःकामी निज देव।। ४ ।।

बचन ५७

आदत का असर और उसके बदलने का जतन

१ — सुभाव यानी आदत का असर बड़ा प्रबल होता है। उस का पलटना महा कठिन काम है, गोया जानवर से इनसान बनाना है। जैसे रस्सी जल जाती है पर ऐंठन नहीं जाती, ऐसे ही और विकारी अंग छूट जाते हैं, पर सुभाव नहीं बदलता। देखो सरकस का बन्दर, कि वह कितना ही सिखलाया जाता है, पर उसका बन्दरपन नहीं जाता। जब वक़्त आता है, तब भूल जाता है और जो पुराना सुभाव है, वह उस पर ग़ालिब हो जाता है। इसी तरह जिसमें जो स्वभाव प्रबल है, वह देर अबेर अपना इज़हार और असर ज़रूर पैदा करता है, मसलन शराबी हैं, वह बहुतेरी क़समें खाते हैं कि फिर कभी शराब नहीं पियेंगे, मगर जब वक़्त आता है, तब भूल जाते हैं, जैसे फ़स्द, जो लोग जिन दिनों में खुलवाते हैं, फिर उन्हीं अइयाम[1] में ख़ून उसी तरफ़ रुजू करता है, इसी तरह पुरानी आदत शराब पीने की जो उन के ख़ून में पैवस्त हो गई है, वह अपना इज़हार करती है। उन का गोया ख़ून पुकारता है, इसलिये लाचार हो जाते हैं। लोग उन

१ - दिनों।

की हजो करते हैं और हक़ीर निगाह से देखते हैं, मगर वह अपनी आदत की गिरफ़्तारी से अपने को बचा नहीं सकते हैं। कुछ साल हुए एक साहब विलायत गये थे। वहाँ उनको शराब पीने की आदत पड़ गई। नतीजा यह हुआ कि फ़ालिज गिरा और एक घंटे में मर गये। लोग अपने तईं तहस नहस और ग़ारत कर देते हैं, मकरूज़[1] हो जाते हैं तो भी अपनी ख़राब आदत नहीं छोड़ते।

२ — बनारस में एक शख़्स था। उस को घोड़े पर सवार होने की बड़ी आदत थी। एक बड़ा शोख़ घोड़ा आया। उस पर चढ़ने लगा। लोगों ने बहुत ही मना किया, पर वह नहीं माना। काल उस के सिर पर सवार था, चढ़ते ही वह गिर पड़ा और मर गया। लोभ के मारे रामचन्द्र सोने की हिरनी के पीछे पड़े। इतना भी सोच विचार न किया कि सोने की हिरनी कैसे हो सकती है। असल में जब शामत घेर लेती है, तब बड़े बड़े धीरजवान और दानिशमन्द भी बेवकूफ़ बन जाते हैं। कहने का मुद्दा यह है कि जिससे ख़ास ताल्लुक़ है, उस को ख़राब आदत छोड़ने के लिये समझा बुझा देना फ़र्ज़ है और जो वह नहीं माने तो उस को छोड़ देना चाहिये।

जो कोइ समझे सैन में तासों कहिये बैन।
सैन बैन समझे नहीं तासों कुछ नहिं कहन।।

राधास्वामी कही बनाई। जो नहिं मानो भुगतो भाई।।

३ — साध महात्मा की सरन में जो आता है, उस का सुभाव इस तरह बदलाया जाता है कि या तो उसका चोला छुड़ा देते हैं और कुछ अर्से उस को ऊँचे स्थान पर आब हवा बदलने के लिये रखते हैं या सतसंग और अभ्यास कराके और गढ़त का रगड़ा देके जीते जी मौत

१ - क़र्जदार।

की हद पर पहुँचा देते हैं। इस तरह सुभाव बदला जाता है। समझौती से काम नहीं होता है। ख़ौफ़ और लालच जब तक है, तब तक तो मन सीधा चलता है और जब वह दूर हो गया, तब फिर मन टेढ़े का टेढ़ा हो जाता है, मसलन चिड़िया, तोते, को जब खाने का लालच दिया जाता है या बन्दर को लकड़ी का ख़ौफ़ रहता है, तब तक वह सीधे चलते हैं और जब खाना या लकड़ी हटा ली जाती है, तब वह बे-तकल्लुफ़ अपने स्वभाव में बरतने लगते हैं। बन्दर जिस वक़्त कि सरकस में है, हरचन्द साहब का ड्रेस यानी पोशाक पहने हुए है, पर उसी वक़्त जो मौक़ा मिला तो कोई चीज़ वग़ैरा खसोटने और शरारत करने लगा। इसी तरह पहले साधू लोगों को आगरे से जहाँ निकलने का मौक़ा मिलता था, बे-तकल्लुफ़ चरनामृत और परशादी लोगों को देने लगते थे। धन भी लेते थे और अपने तईं पुजवाते भी थे। अब वह आज़ादी नहीं है। इसी से घबराते हैं। आज़ादी में बड़ा हर्ज़ और नुक़सान है। महिमा इस की है कि प्रभुता होते हुए भी अपने को बचाये रक्खे। दरख़्त जो कि फलदार होता है, उसको जिस क़दर लोग झोका देते हैं, उतना ही ज़्यादा मेवा देता है। इसी तरह जिस तन में भक्ति रूपी फल फूल लगे हुए हैं, उनको जिस क़दर कोई तंग करता है, उतना ही ज़्यादा वह दया, ग़रीबी, दीनता और प्रीति भाव करते हैं।

४ — सख़्ती करना और दुख देना मालिक को मंज़ूर नहीं है। ब-दरजे लाचारी कर्म काटने और सुभाव बदलने के लिये उस ने यह रवा रक्खा है। मन पर थोड़ा बहुत दाब होना मुफ़ीद है। लड़का जब तक उस्ताद के सामने है, तब तक सीधा है और जहाँ उस्ताद बाहर निकला, क्या तमाशा करता है। ऐसे ही मन की भी हालत है। यह

किसी को नहीं समझना चाहिये कि हमारा मन सीधा हो गया है।

मन को मिरतक देख के, मत माने विश्वास।
साध जहाँ लौं भय करें, जब लग पिंजर स्वाँस।।
मैं जानूँ मन मर गया, मर कर हूआ भूत।
मूये पीछे उठ लगा, ऐसा मेरा पूत।।

५ — जैसे रावन का लड़ाई में एक सीस कटता था तो दस और निकल आते थे, ऐसे ही मन का एक अंग मरता है, दस और अंग जागते हैं। कटा दरख़्त जिस की जड़ अभी बाक़ी है, उस का ऐतबार नहीं करना चाहिये कि अब नहीं उगेगा, जब मौक़ा आवेगा तब फिर उस में नई नई डालियाँ और हरे हरे पत्ते निकल आवेंगे। इसी तरह आपा जो कि मूल विकार और जड़ है, जब तक मौजूद है, तब तक यक़ीन नहीं करना चाहिये कि मन मर गया।

६ — मन को मारने और सुभाव बदलने का इलाज दुख और तकलीफ़ है। सुख और आराम में मन और मोटा होता है।

दुख की घड़ी ग़नीमत जानो। नाम गुरू का पल पल भजना।।
सुख में ग़ाफ़िल रहत सदा नर। मन तरंग में दम दम बहना।।
ताते चेत करो सतसंगत। दुख सुख नदियाँ पार उतरना।।

७ — यही ज़रिया है इसकी प्रीति प्रतीत जगाने और पुरानी आदत पलटने का। सब का स्वभाव बदलाया जायगा। इस जन्म में नहीं बदला तो दूसरे में ज़रूर बदलेगा। ग़रज़ कि चार जनम में राधास्वामी दयाल पूरा काम बना देंगे। पहले जनम में जब कुछ सफ़ाई होगी, तब यह अन्तर में चढ़ाई के क़ाबिल होगा। सिवाय राधास्वामी दयाल के और किसी की ताक़त नहीं है कि जनमान-जनम का जो पुराना मसाला और सुभाव है,

उस को पलट सके। पूरे गुरु का संग करने से इसके आसुरी और हैवानी अंग बदलते हैं और इसकी प्रीति और प्रतीत जागती है। तब यह सच्चा सच्चा तन मन धन गुरु पर वार देता है और यह कहता है।

क्या वारूँ गुरु पर आई। तन मन धन तुच्छ दिखाई।।
सुर्त अंस तुम्हारी प्यारी। अब सरबस हुई तुम्हारी।।
जस जानो लेव सम्हारी। चरनन में रहूँ सदा री।।

८ — और मन तो ऐसा ढीठ है कि बहुतेरी इसको समझौती दो, मानता ही नहीं है। उलटा गुरु को दुख पहुँचाने को तैयार होता है। और कुटुम्बियों से जो प्रीति करने की आदत है, उनसे हरचन्द इसको दुख तकलीफ़ होती है, तो भी उन को नहीं छोड़ता है।

मन चंचल कहा न माने, मैं कौन उपाय करूँ।।
गुरु नित समझावें साध बुझावें, सतसंग में चित जोड़ धरूँ।।
सुन सुन बचन बहुत पछताऊँ, बहुर भुलावे भर्म रहूँ।।

गुरु को दुख पहुँचावन चाहे, क्यों नहीं मेरा आदर कीत।।
जोरू लड़के गाली देवें, मूँछ पकड़ वह खैंच खिंचीत।।
उनकी ताड़ मार नित सहता, उन से तो भी मन न फिरीत।।
उनकी प्रीति लगी अस दृढ़ होय, लोहे की सँगलीत।।
अब तो चेत ज़रा तू हे मन, त्याग पशू की रीत।।

बचन ५८

दाब और दबाव में दया है

१ — सुरत, तन और अन्तःकरन रूप हो रही है। ऊपर से धार आती है तो सेहत और चैन है, नहीं तो बेचैनी और बेकली है। यह दोनों धोखे के घाट हैं। बराबर तनज़्ज़ुल और बहाव बहिरमुख हो रहा है। चाहिये कि अन्तर में सिमटाव और चढ़ाव होवे। इसलिये दबाव की

ज़रूरत है क्योंकि बग़ैर दबाव के सिमटाव नहीं होगा। जिसकी धार अन्तर में उलटी हुई है, उसका संग करना चाहिये और जो यह न बने तो किसी सच्चे साधू से झगड़ा ही पैदा करले।

आँखों देखा घी भला, मुख मेला नहिं तेल।
साधू से झगड़ा भला, नहिं साकित से मेल।।

२ — सबब यह है कि जिस क़दर ज़्यादा जोश ख़रोश से साधू बोलेगा, उतनी ही ज़्यादा ऊँचे देश की धार आवेगी और उसकी आग को बुझावेगी, क्योंकि जल हरचन्द गर्म हो तो भी आग को बुझा देता है, जैसा कि कहा है, ''संतों के क्रोध में भी दात है और मूरखों की दया में भी घात है।''

३ — तारीफ़ में सुरत का बाहर फैलाव और बहाव बहुत होता है। जो कि सच्चे भक्त हैं, वह तारीफ़ सुन कर रो देते हैं और जो साधू हैं, उनको तो कुछ परवाह नहीं है। उन में न नफ़रत है, न रग़बत। स्तुति निन्दा दोनों सम कर समझते हैं। नीचे उतरना सहज है, ऊँचे पहाड़ पर चढ़ना मुश्किल है। यानी सुरत का बाहर (जो नीचा है) बहाव करना आसान है, पर अन्तर में (जो ऊँचा है) चढ़ाव करना मुश्किल है। इसलिये सतसंगियों की हमेशा कोर दबी रहती है यानी भींचा भींची और कूटा पीटी होती रहती है। धन की तंगी, कुटुम्ब की ज़्यादती, लड़ाई झगड़ा, बीमारी, सख़्ती वग़ैरा हमेशा बनी रहती है। यही दाब और दबाव है जिस में कि निज दया उनके सम्हाल की है। जिस को कि मुतवातिर उसका तजरुबा है, वह अगर उसकी शिकायत करे तो अफ़सोस की बात है। अगर दबाव न होता तो उसकी सुरत का पता न लगता। आज़ादी में हर्ज और नुक़सान है। इस में मन हमेशा पसरा और फैला रहता है।

* * * * * *

बचन ५९

मन इन्द्रियों का दमन करना और आपे को छोड़ना

१ — मन इन्द्रियों के दमन करने के लिये और मतों में जो जुक्तियाँ हैं, उन का असर बाहर स्थूल अंग पर पड़ता है, अंतर के अंतर असर नहीं होता है, मसलन मरीज़ है, उस के फोड़े का इलाज हो रहा है, अगर सिर्फ़ बाहरी मवाद ख़ारिज किया जावे और अन्तर के अन्तर जो कील है, उस को दूर करने का इलाज और इन्तज़ाम न किया जावे तो फिर वह फोड़ा जैसे का तैसा हो जायगा। संत मत में विकारों का जो तुख़्म है, पहले उस को रफ़ा करने का बन्दोबस्त किया जाता है और जो जुक्ति बताई जाती है, उसका असर अन्तर के अन्तर होता है बाहरी ख़ोल पर नहीं होता है।

२ — और मतों में मन इन्द्रियों का दमन करने के लिए अपना बल पौरुष लगाते हैं, जिससे आपा पुष्ट होता है और संत मत में अपना बल पौरुष छोड़ना पड़ता है और अपने को निबल और आधीन समझना होता है। इससे अहंकार जो विकारों की जड़ है, वह कट जाता है। समर्थ उस के सिर पर दया का हाथ रखता है और वही उस के कर्म काटता है, तब उस को यक़ीन होता है कि जो कुछ होता है, समर्थ राधास्वामी दयाल की मौज से होता है और वही करता धरता हैं और अपने को दीन हीन नीच नादान समझता है। तब जो उसकी कार्रवाई है, वह आपे की नहीं होती है।

३ — जब यह अपना आपा छोड़ता है, तब कहता है और पुकार प्रार्थना करता है कि मुझ में कोई गुण नहीं है,

मैं ना-लायक़ हूँ, हे राधास्वामी दयाल! आप ही ने सरन में लिया है और आप ही को मेरी लाज है, जैसे तैसे मेरी नाव पार लगादो।

मैं नालायक़ हूँ इस में कुछ शक नहीं।
दया जो करे प्यार अचरज नहीं।।
क़सूरों को बख़्शो मेरे हे दयाल।
ग़रीबी पै मेरे धरो अब ख़याल।।
दया के भरोसे बने सब क़सूर।
मेहर से देवो बख़्श आली हज़ूर।।
मैं तुम्हरा हूँ और तुम हो मेरे सही।
पिता पुत्र का नाता पूरा चही।।
पिता तुम हो और मैं हूँ बालक समान।
करो मेहर दीन और निबल मोहिं जान।।

४ — जब इस की चाह दूर होती है, तब हर जानिब करता धरता राधास्वामी दयाल को देखता है और मगन रहता है और जब तक अपनपौ है, वृथा आपा ठान कर दुखी सुखी होता रहता है। कहने का मुद्दा यह है कि राधास्वामी दयाल जीवों पर अति दया करके कुछ ख़याल इस की करनी का न करके, कर्म काटते हैं और मेहर से निज घर में पहुँचाते हैं, जीव से कुछ नहीं बनता है। अगर करनी और मेहर का मुक़ाबला किया जावे तो गोया किनके और पहाड़ का मुक़ाबला करना है।

बचन ६०

मन का अंग

१ — यह मन बड़ा दुष्ट और धोखेबाज़ है। जैसा प्रेम इस को करना चाहिए, वैसा नहीं करता है और दीनता

का बड़ा बैरी है। दीन अंग कभी नहीं लाता है। मान बड़ाई इस की ख़ुराक है। ताड़ मार से भागता है। भजन में तरंग उठाता है। बड़ा फ़रेबी और कपटी है। तीन लोक को इसने भरमाया। ऋषि मुनि सब हार गये, कोई इससे नहीं बचा।

जिन्होंने मार मन डाला उन्हीं को सूरमा कहना।
बड़ा बैरी यह मन घट में इसी का जीतना कठिना।। १ ।।
पड़ो तुम इसी के पीछे और सब ही जतन तजना।
गुरू की प्रीति कर पहिले बहुर घट शब्द को सुनना।। २ ।।
मान दो बात यह मेरी करे मत और कुछ जतना।
हार जब जाय मन तुझ से चढ़ा दे सुरत को गगना।। ३ ।।

तीर तुपक से जो लड़े सो तो सूर न होय।
माया तज भक्ती करे सूर कहावे सोय।।

तीन लोक चोरी भई, सबका धन हर लीन्ह।
बिना सीस का चोरवा, पड़ा न काहू चीन्ह।।

बंझा ने बालक जाया। जिन सकल जीव भरमाया।।

२ — बग़ैर मदद राधास्वामी दयाल के और किसी की ताक़त नहीं है कि मन को जीत सके। जीव बिचारा निरबल और बेबस है। इस की कुछ ताक़त नहीं है कि कुछ भी कर सके। जो कुछ होता है राधास्वामी दयाल की दया और मौज से होता है। जिसने कि राधास्वामी दयाल की सरन ली है उसका अलबत्ता इस मन से छुटकारा होता है। सिवाय राधास्वामी दयाल के और किसी की ताक़त नहीं है कि इस मन की गढ़त और दुरुस्ती कर सके। भक्त जन अपनी गढ़त और सफ़ाई होती हुई देख कर अपना भाग सराहता है कि कोई पूरबला भाग जागा जिस के सबब से राधास्वामी दयाल की सरन में आया हूँ और इस दुष्ट मन से रिहाई हो रही

है, नहीं तो चौरासी में कुछ पता न लगता, न मालूम कहाँ जाना होता। जिन्होंने कि राधास्वामी दयाल की सरन ली है, उन का बेड़ा पार है। जैसे स्त्री की लाज पति को है, वैसे ही भक्त जन की लाज मालिक को है। हर वक़्त उसकी रक्षा और सम्हाल होती है।

मैं सेवक समरत्थ का, कबहूँ न होय अकाज।
पतिव्रता नांगी रहे, तो वाही पति को लाज।।१।।
दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अन्त तिहुँ काल।
पलक एक में प्रकट ह्वै, छिन में करों निहाल।।२।।

३ — घट में यह मन बड़ा बदमाश, दग़ाबाज़ और फ़रेबी बैठा है, इस की दुरुस्ती के लिये पहिले सतसंग की ज़रूरत है। जैसे मैले कपड़े को धोबी पहिले पानी में साफ़ करता है, पीछे पत्थर पर पटकता है, वैसे ही पहले सतसंग रूपी जल में मन को साफ़ किया जाता है, बाद इस के गढ़त यानी रगड़ होती है, तब इस के अन्तर की काई निकलती है। इसलिये तकलीफ़ के वक़्त घबराना नहीं चाहिये बल्कि गुरू का मशकूर हो के भक्ति में क़दम आगे बढ़ाना चाहिये।

कबीर मन मैला भया, या में बहुत विकार।
यह मन कैसे धोइये, साधो करो विचार।।१।।
गुरु धोबी शिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरत सिला पर धोइये, निकसे रंग अपार।।२।।
कबीर मन परबत हता, अब मैं पाया जान।
टांकी लागी प्रेम की, निकसी कंचन खान।।३।।

४ — मन के दो अंग हैं, कुमन और सुमन या कुमत और सुमत यानी संसारी और परमार्थी बुद्धि। कुमत से काम क्रोध वग़ैरा पैदा होते हैं और सुमत से सील छिमा दया दीनता उत्पन्न होती है। सुमत रूपी बचनों से विकारी अंग नाश होते हैं। मुख़ालिफ़त और कठोरता मन के अंग हैं और डरपोक होना सुरत का अंग है। यह मन

बड़ा गँवार, मूरख, दुशमन है। इस को मेंहदी के समान पीसना चाहिये।

मन को मारूँ पटक के, टूक टूक होय जाय।
विष की क्यारी बोय कर, लुनता क्यों पछिताय।।

सखी री मेरा मनुवाँ निपट अनाड़ी।।

बचन ६१

सुरत के तन मन से न्यारे होने के लिये दुख तकलीफ और रोग सोग की ज़रूरत है

१ — अभ्यास का नतीजा यह है कि सुरत तन मन से न्यारी होवे। यह तीन तरह से होता है यानी तन को तोड़ो, मन को मारो, इन्द्रिय द्वार रोको। जिस के लिये मौज है, तकलीफ़ रोग बीमारी देकर और खाना कम करा कर उसका तन तोड़ते हैं और दुख तकलीफ़ भींचा भींची लड़ाई झगड़े से उस का मन मारते हैं और इन्द्रिय भोगों से नफ़रत कराते हैं। जो कि संस्कारी हैं, उनके लिये ऐसे दुख तकलीफ़ की ज़रूरत नहीं है। लोग पुकार करते हैं कि तरंगें दूर होवें। चाहिये कि तरंगों का तुख़्म यानी मसाला जो अंतर में धरा हुआ है, उस को नेस्तनाबूद करें। खाना छोड़ने के लिये ऐसा न हो कि आठ आठ रोज खाना न खावे। यह तो पागलों का काम है। चाहिये कि कम खावे, जिस से बदन हलका रहे और अपनी चाह को संसार से हटावे और देखे कि संसार में कहाँ कहाँ हमारी वृत्ति अटकी हुई है। और रोज़ घंटा भर नाम का सुमिरन करें।

२ — जब कोई तकलीफ़ होती है तो कहते हैं, दया नहीं है। और जब सुख आराम होता है तब कहते हैं, बड़ी दया है। मगर असल में जब बीमारी या तकलीफ़ दूर होती है, तब गोया दया की धार उलट जाती है। संसारी लोग धन यहाँ ही छोड़ते हैं, पर जिस का कि चैतन्य धार से मेला हुआ है, उस को गोया वह धन मिला जो हमेशा उस के साथ रहेगा। और जैसे जल में मछली केल करती है और बिना जल के जी नहीं सकती, वैसे ही इस को भी बग़ैर चरन रस के चैन नहीं आता।

बिन गुरु चरन और नहिं भावे। इस आनँद में रहे समाय।।

दुख तकलीफ़ में बरदाश्त होनी चाहिये और सूरमाओं की तरह दुख तकलीफ़ झेलने की सूरता होनी चाहिये, बल्कि ऐसी ख़्वाहिश रहनी चाहिये कि दूना दुख होवे। हिम्मत कभी न हारनी चाहिये। “हिम्मते मरदाँ मददे ख़ुदा”।

३ — जिस ने भक्ति मार्ग में क़दम रक्खा है, उस को दुख तकलीफ़ ज़रूर होगी और इस में फ़ायदा है। जैसे मइया अपने बच्चे को चीरा दिलाती है तो उस में इस का फ़ायदा मुतसव्वर है और हरचन्द कि बच्चा चिल्लाता बिल्लाता है तो भी डाक्टर चीरा देता ही है, इसी तरह जिस की गढ़त होती है, वह हरचन्द दुख और तकलीफ़ के वक़्त रोता है और झींकता है, तो भी मालिक अपनी कार्रवाई जारी रखता है, क्योंकि इस में इसका फ़ायदा ज़ेर निगाह है। और जैसे भारी नश्तर के लिये बड़ा नज़राना या फ़ीस देते हैं, वैसे ही इसको चाहिये कि जब कभी भारी दुख और तकलीफ़ होवे, तब बड़ी भेंट राधास्वामी दयाल के चरनों में पेश करे यानी बढ़का शुकराना मालिक का अदा करे, क्योंकि ज़्यादा दुख और

तकलीफ़ से मन का मसाला ज़्यादा ख़ारिज होता है और छिपे हुए अंग निकलते हैं और इस तरह सुरत मन से न्यारी होती है।

४ — किसी कारोबार में पहले अपना धन ख़र्च करते हैं, बाद को नफ़े की उम्मीद करते हैं, वैसे ही पहले जब अपना तन मन धन उजाड़ दिया जायेगा, तब मालिक का दर्शन होगा।

पहले जिस ने अपना तन दीना उजाड़।
पाई फिर गुरु प्रेम की दौलत अपार।।

वीरान जब कि हम हुए बस्ती नज़र पड़ी।
और नेस्त जब कि हम हुए हस्ती नज़र पड़ी।।
देखा कि ख़ाकसारी ही आली मुक़ाम है।
ज्यों ज्यों बुलन्द हम हुए पस्ती नज़र पड़ी।।

पहले दाता शिष भया, जिन तन मन अरपा सीस।
पीछे दाता गुरु भये, जिन नाम किया बख़सीस।।

----

५ — सवाल - नानक साहब ने कहा है:--

पूरा सतगुरु पाइया और पूरी पाई जुक्त।
हसन्दियाँ, खिलन्दियाँ, खवन्दियाँ बिच्चू पाई मुक्त।।

और आप फ़रमाते हैं, अपने तईं वीरान कर देना।

जवाब - पहले जब कि तन मन धन अरपन कर लेगा तब यह कहना ठीक है। यह भी संतों ने कहा है।

मन मारो तन को जारो। इन्द्री रस भोग बिसारो।। १ ।।
तुम निद्रा आलस टारो। गुरु के सँग शब्द पुकारो।। २ ।।
सतसँग तुम नित ही धारो। गुरु दर्शन नित्त निहारो।। ३ ।।

क्यों नहीं इसको पकड़ते हो? एक को पकड़ते हो और दूसरे को छोड़ते हो। जब ऐसी गति होगी, तब

अगर धक्के खायगा तो भी ज़्यादा सुरत ऊपर को चढ़ेगी और जो हँसेगा खेलेगा तो भी सुरत उसी तरह खिंचेगी।

बचन ६२

मन का फ़रेब और उसका इलाज। दुख तकलीफ़ में दया है और मौज से मालिक बरदाश्त भी देता है।

१ — तन में जब कोई चोट लगती है या ज़रर पहुँचता है तो अन्तर में कोई ऐसी ताक़त है जो उस चोट या ज़रर को हटाती है। वह मन की ताक़त है।

२ — मन की सतह पर सुरत की धार को खैंचना और कार्रवाई करना यह मन की कार्रवाई है और मन की सतह से सुरत की धार को हटाना यह सुरत की कार्रवाई है। मन अन्तर में मिस्ल साँप के बैठा हुआ है। ज़रा छेड़ो तो फ़ौरन साँप की तरह फुँफकारता है। यह जब मरे, तब काम होवे। परमार्थी लिबास में भी मन अपना दाँव पेच लगाता है। उस की पहचान यह है कि जिस परमार्थी काम करने से चैतन्यता विशेष होवे, वह मौज से कार्रवाई है और जिस परमार्थी काम करने से चैतन्यता कम होवे, वह मन की कार्रवाई है। मसलन ख़याल उठे कि पर-उपकार करें यानी लोगों को चितावें और मत समझावें, बस इसी में लगे रहना और अपने जीव के कल्यान की फ़िकर न रखना, यह परमार्थी लिबास में मन की ठगी है, या ऐसी कोई सेवा है, जिसमें वृत्ति बहिरमुख होती है और अन्तर में धसने के एवज़ बिल्कुल बाहर सेवा में

लगा रहता है, यह भी एक क़िस्म का मन का फ़रेब है, या और कोई दाँव न लगा तो आप गुरु बन बैठा या अपने को साधू समझ कर औरों पर दया करने लगा और इस तरह दया की धार में बह गया।

३ — मन में मसाला भरा हुआ है। इसलिये जब कोई ज़रा सा मन के ख़िलाफ़ कहता है, फ़ौरन क्रोध आता है और समझौती जो ली है, वह भूल जाती है। जब मसाला झड़ जायगा, तब समझौती क़ायम रहेगी। जब तक मसाला है, तब तक ज़रा सा छेड़ने से साँप के माफ़िक़ लड़ने को तैयार हो जावेगा।

४ — मन की बनावट और रुख़ माही-पुश्त या क़ुब्बे-नुमा (Convex) है और उसके साथ सुरत की धार बाहर बह रही है। जब उसका रुख़ उलटे और वह पिचक कर गहरा हो जावे, तब सुरत मन के साथ बहने के बदले अन्तर में उल्टेगी। जैसे आतशी शीशा माही-पुश्त होने से नुक़्ता या केन्द्र (Focus) बाहर बनता है और रोशनी बाहर पड़ती है, जब शीशागर उस शीशे को काट कूट और घिस घिसा कर ठीक कर लेता है तो वह गहरा (Concave) बन जाता है यानी रुख़ अन्तर में हो जाता है और नुक़्ता (Focus) अन्तर में बनता है और रोशनी बाहर बहने के एवज़ अंतर में रुजू करती है, ऐसे ही जब मन की गढ़त होगी और रुख़ उलटेगा, तब अन्तर नुक़्ता (Focus) बनेगा और धार बाहर बहने के एवज़ अन्तर में जारी होगी। फिर जो इसका बरतावा होगा, उस में दया की धार शामिल रहेगी, बल्कि इसका क्रोध भी दाती होगा। यह जो कहा है कि संतों का क्रोध भी दाती है सो इसी सबब से कहा है, क्योंकि उनके मन का रुख़ अन्तर की दया की धार की तरफ़ है।

जब अन्तर की धार का रुख़ उलटेगा, तब इसकी ऐसी हालत होगी, जैसी कि इन कड़ियों में कही है।

आँख न मूँदूँ कान न रूँधूँ काया कष्ट न धारूँ।।
खुले नैन स्वामी हँस हँस देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ।।
कानों नाम सुनूँ सोई सुमिरन खाऊँ पिऊँ सोइ पूजा।।
गृह उद्यान एक सम लेखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा।।
जित जित जाऊँ सोइ परकर्मा, जो कुछ करूँ सो सेवा।।

५ — कहने का मुद्दा यह है कि उलटी सुलटी हालत दुख और तकलीफ़ की जब इसको होगी, तब मन की गढ़त होगी और अंतर में उलटेगा। हमेशा अपनी परख करनी चाहिए कि किस क़दर मेरा मन ढीला हुआ है और घिसा घिसी करने में दुबला होता है या उलटा ज़बर होता जाता है। मन की हर वक़्त सम्हाल करनी चाहिए। सतसंगी आपस में अगर किसी वक़्त लड़ते भी हैं, तो भी उन के अन्तर में कोई बैर विरोध नहीं रहता, फिर जैसे के तैसे मिल जाते हैं, जैसे लड़के आपस में लड़ते हैं, फिर साथ खेल कूद करते हैं और चित्त में विरोध नहीं रखते।

६ — हमेशा दीनता से बरताव करना चाहिए। संसार में भी जहाँ जिसका काम अटका रहता है, वहाँ दीनता के साथ बरताव करते हैं। वैसे ही सतसंगियों को भी अपने परमार्थी फ़ायदे के लिये सब के साथ दीनता से बरताव करना चाहिए, इसी ख़याल पर कि राधास्वामी दयाल इसके एवज़ दया की बख़्शिश फ़रमावेंगे।

७ — बहुतेरों का ऐसा स्वभाव होता है कि जो तरंग अन्तर में उठी, बस उसी का रूप हो जाते हैं। चाहिये कि उसी वक़्त सुमिरन ध्यान करके अपनी सँभाल करें। बाज़े ऐसे हठीले होते हैं कि बहुतेरा समझाओ कभी नहीं मानते हैं। ऐसे लोगों को सख़्त सज़ा दी जाती है।

८ —परमार्थी के लिये हमेशा अन्तर में खैंचातानी (Tug of war) होती है यानी मन माया के विकारी अंग नीचे की तरफ़ खैंचते हैं और सुरत के अंग यानी शील छिमा संतोष वग़ैरा ऊपर को। इस तरह का संग्राम अभ्यासी के अन्तर में होता रहता है। सतसंग में जो समझौती दी जाती है, अगर कोई नहीं लेता है यानी उसके माफ़िक़ बरताव नहीं करता है तो भी अन्तर में नक़्श पड़ते हैं, ज़रूर अपना असर करेंगे। जिस पर कि उलटी सुलटी हालत गुज़रती रहती है, उस पर गोया निज दया राधास्वामी दयाल की है। चाहिये कि इसमें अपना निज फ़ायदा समझ कर मालिक का शुकराना अदा करे और ख़ुशी के साथ दुख तकलीफ़ को झेले।

९ — दया करके मालिक दुख तकलीफ़ सहने के लिये बरदाश्त भी देता है, ऐसा नहीं है कि एक दम मुसीबत भेजे। जैसे नट अपनी बाँह पर गोला फेंकता है तो पहले छोटी छोटी गोलियाँ आहिस्ता आहिस्ता डालता है ताकि सहज सहज अभ्यास करने से जब उस की रगें और पट्ठे पक्के हो जाते हैं, तब बड़े बड़े गोले मारता है और कुछ भी दर्द नहीं होता, इसी तरह मालिक भी थोड़ा थोड़ा दुख देकर बरदाश्त की ताक़त देता जाता है।

१० — जैसे बीमार को जब चीरा दिया जाता है तो उसके पहिले खाने पीने वग़ैरा का बन्दोबस्त कर रखते हैं ताकि उसको ज़्यादा कमज़ोरी न हो जावे, वैसे ही मालिक भी जब किसी की गढ़त करता है तो पहले से बरदाश्त की ताक़त भी उस को बख़्शता है यानी चैतन्यता उसकी विशेष कर देता है। भक्त जन पर जब कर्म अनुसार दुख तकलीफ़ आती है, तब मालिक दख़ल नहीं देता है, लेकिन इस से अगर उस का परमार्थी हर्ज होता

है, तो वह दया करके सूली का काँटा कर देता है। यहाँ के दुख सुख से बचने के लिये लोग क्लोरोफ़ार्म यानी बेहोशी की दवा सूँघते हैं। चाहिये कि शब्द रूपी क्लोरोफ़ार्म सूँघ कर सुरत को तन मन से न्यारा करें। दुख तकलीफ़ में अगर घबराया तो समझो कि आपा धरा हुआ है और मौज से मुआफ़िक़त नहीं की। जब तक आपा है, तब तक मौज से मुआफ़िक़त नहीं हो सकती और न पूरे तौर से सरन ली जाती है।

११ — कहने का मुद्दा यह है कि जब तक मन नहीं हारेगा, तब तक सरन नहीं ली जायगी। और जब तक सरन नहीं लेगा, तब तक उद्धार नहीं होगा। और उद्धार तब होगा, जब प्रेम आवेगा। और जब प्रेम आवेगा तब दया की परख आवेगी। और जब दया की परख होगी, तब राधास्वामी दयाल की महिमा गावेगा और पूरे तौर से सरन लेगा। यह निज सार है। इस को समझना चाहिए। रस्सी को जलाते हैं तो भी उस की ऐंठन नहीं जाती है, ऐसे ही मन को चाहे कोई कैसा ही मारे और ज़ाहिर में वह दीन अधीन हो जावे तो भी जहाँ तक माया है, वहाँ तक आपा यानी अहं ज़रूर रहता है और ऐंठन नहीं जाती है। जब मन थकेगा और दौड़ उस की बंद होगी तब सरन लेगा यानी क़ुदरती तौर पर जो उसकी ताक़त इन्द्रियों की तरफ़ दौड़ने की है, वह जब हर ली जायगी, तब अंतर में उलटेगा और मौज से मुआफ़िक़त करेगा। जैसे हाथ में जब ताक़त आती है, तब काम करता है, अगर ताक़त न आवे तो कुछ काम नहीं कर सकता, वैसे ही मन में अगर सुरत की ताक़त न आवे तो मन कुछ नहीं कर सकता है।

१२ — मन की दुरुस्ती के लिए इलाज सतसंग, अभ्यास और संसारी दुख तकलीफ़ का रगड़ा है। संसार में बरताव कराने का यह मतलब है कि कर्मों का काटना और संचित कर्मों के नक़्श जो अन्दर में धरे हुए हैं, उनका नाश करना। कर्मों का बोझ बड़ा भारी है। जैसे कोई चीज़ पत्थर के तले दबी हुई है, वैसे ही सुरत पर कर्मों का बोझ चढ़ा हुआ है। आदि कर्म भी इस पर चढ़ा हुआ है। सिवाय सतगुरु के और किसी की ताक़त नहीं है कि कर्मों से छुड़ावे।

मिलें कोइ संत जन जौहरी। कर्म की रेख पर मेख मारें।।

मेख़ मारना यही है कि सत्त देश का बीजा डाल के सत्तलोक पहुँचाते हैं।

खुल खुल खेलूँ सुन में प्यारे। काटूँ करम विधाता हो।।

विधाता का कर्म वही है जो आदि कर्म यानी ख़ोल सुरत पर चढ़ा हुआ है। जब इस का काम बन जायगा तब यह बनिया होगा।

मन बनिया बनत बनाई। घट भीतर तोल तुलाई।।

बचन ६३

भक्त जन के लिये उलटी सुलटी हालत और ज़िल्लत इज़्ज़त जो कुछ होती है, मौज से होती है और इसमें उसकी गढ़त मं.जूर है

१ —जो लोग कि भक्ति मार्ग में और सतसंग में शरीक़ हुए हैं, उनके लिये दम मारने की गुंजाइश नहीं

है। उनके लिये जो कार्रवाई होती है, वह मौज से होती है और उलटी सुलटी जो हालत होती है, उस में उनकी गढ़त मंज़ूर है। अगर जान भक्त है, तो वह समझ लेता है कि क्या मसलहत है और जो अनजान है, उस को तो पेट भरने से काम है।

जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज।
सर औसर समझे नहीं, पेट भरन सों काज।।

२ —जो कि सच्चे होके भक्ति करते हैं, उन की मालिक अक्सर परख करता है। परख दो तरह से होती है, एक सीधे और दूसरे किसी के ज़रिये या द्वारे से। अगले वक़्त में जहाँ कि पूरे गुरू होते थे, वह सीधे परख करते थे। पर अब ऐसी मौज नहीं है। इसलिये किसी दूसरे के ज़रिए से परख करते हैं। मसलन सतसंग में मौज से कोई २ अनगढ़ जीव रक्खे जाते हैं जो कि औज़ार अक्सर इसकी गढ़त के होते हैं, पर इस को चाहिये कि जो उन के साथ कभी इस का मुक़ाबला होवे और शिकायत पूरे गुरू के पास जावे और गुरू उलटा उस अनगढ़ के कहने पर इस की ताड़ मार करें तो भी अपने लिये ऐसी समझौती लेवे कि जो कुछ हुआ, मौज से मेरी गढ़त के लिये हुआ और वह गोया उस गढ़त के लिये राधास्वामी दयाल ने एक औज़ार रक्खा था। इस तरह समझ बूझ लेने से इसकी दिन दिन दुरुस्ती और सफ़ाई होती है, मलीनता और निकम्मापन दूर होता है, और अन्तर में जो मसाला यानी भँगार भरी हुई है, वह ख़ारिज होती है।

३ —ऐसी समझौती जब इसको आवेगी, तब चित्त में विरोध नहीं रहेगा, बल्कि उस शख़्स का शुकराना करेगा, यानी जो सच्चा भक्त है, वह उसको अपनी गढ़त का औज़ार समझ कर उस के पाँव पर गिरेगा कि तेरे ज़रिये

से राधास्वामी दयाल ने मेरी दुरुस्ती की। मगर ऐसी समझौती हमेशा याद नहीं रहती, अक्सर भूल जाती है, सो कुछ हरज नहीं है, कभी भूल भरम, कभी याद, इस तरह की हालत होती रहेगी। इस में दया है। अगर हमेशा याद रहे तो फिर गढ़त न हो और जो असली मतलब है, वह ख़ब्त हो जावे।

४ — बाज़ी मौज ऐसी होती है कि कहीं किसी बात का वजूद भी नहीं है तो भी निन्दा करा के जीवों की परख की जाती है, मसलन हुज़ूर साहब के भोग में एक रोज़ मूली की पकोड़ियों की तरकारी ऐसी बन कर आई कि जिसको किसी ने समझा कि कबाब है। फ़ौरन यह बात उड़ी और बहुतेरे भूल भरम में पड़ गये और हरचन्द कि गोश्त का नाम भी न था, तो भी बहुत लोग निन्दा करने लगे। मालिक अन्तरजामी है। वह सब कुछ जानता है और उसी की मौज से सब कुछ होता है। अगर मालिक राज़ी है और जीव नाराज़ है तो कोई हर्ज नहीं है। और जो गुरू से द्रोह रखता है, उसको जम दूत दंड देते हैं।

गुरु राज़ी तो करता राज़ी। कर्म काल की चले न बाज़ी।। १ ।।
गुरु की आन सभी मिल मानें। सुकदेव नारद व्यास बखानें।। २ ।।
ताते गुरु को लेव रिझाई। औरन रीझे कुछ न भलाई।। ३ ।।
गुरु परसन्न और सब रूठे। तौ भी उसका रोम न टूटे।। ४ ।।
औरन को परसन्न जो करता। गुरु से द्रोह घात जो रखता।। ५ ।।
गुरु की निन्दा से नहिं डरता। गुरु को मानुष रूप समझता।। ६ ।।
सो नरकी जानो अपघाती। उस संग दूत करें उतपाती।। ७ ।।

५ — भक्त जन को चाहिए कि ज़िल्लत इज़्ज़त जो कुछ होवे, उसका ख़याल न करे। इज्ज़त तो हर कोई पसन्द करता है मगर जब ज़िल्लत होती है, तब मन का ऐसा स्वभाव है कि जान देने को तैयार हो जाता है और ज़िल्लत की बरदाश्त नहीं कर सकता है। सतसंग और

अभ्यास करते रहना चाहिये। आहिस्ता आहिस्ता बरदाश्त की ताक़त भी आवेगी और भक्त जन को मालूम पड़ेगा कि भक्ति में जो नीच से नीच भंगी समझा जाता है, उसके साथ भी मुक़ाबला करने की भक्त जन को गुंजाइश नहीं है, यानी अगर किसी को भक्ति करनी मंज़ूर है तो भंगी की भी सहनी पड़ेगी और उलटी सीधी सच्ची झूठी हालतें ज़रूर आवेंगी। इस को चाहिये कि चुप करके सब की बरदाश्त करे।

६ — अगर रोस न किया, पर विरोध अन्तर में रहा तो भी एक ही बात हुई यानी एक परदे से हट कर दूसरे परदे में जा बैठा।

बस रहो चुप और गुरु सरनी गहो।
हुक्म मानो उनके चरनों में रहो।।

खोद खाद धरती सहे, काट कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहे, और से सहा न जाय।।

ज़िल्लत इज़्ज़त जो कुछ होवे। मौज विचारो कर भक्ती।। १ ।।
गुरु का बल हिरदे धर अपने। सुन प्यारे तू कर भक्ती।। २ ।।
यह बिगाड़ कुछ करें न तेरा। क्यों झिझके तू कर भक्ती।। ३ ।।
बिना मौज गुरु कुछ नहिं होता। सुन प्यारे तू कर भक्ती।। ४ ।।

७ — अगर ज़िल्लत की बरदाश्त नहीं है, तो समझना चाहिये कि अभी भक्ति कच्ची है। मगर कुछ हर्ज नहीं है। कच्ची से एक रोज़ पक्की होगी।

तू कच्चा यह करे कचाई। और कहूँ क्या कर भक्ती।। ५ ।।
करते करते पक्का होगा। और उपाव न कर भक्ती।। ६ ।।
कच्ची से पक्की होय एक दिन। छोड़ कपट तू कर भक्ती।। ७ ।।
कपट भक्ति कुछ काम न आवे। सच्ची कच्ची कर भक्ती।। ८ ।।
राधास्वामी कहत सुनाई। जैसी बने तैसी कर भक्ती।। ६ ।।

* * * * * *

बचन ६४

मन परमार्थ में भी यह चाहता है कि दुनिया के भी सब सुख ब-दस्तूर बने रहें, मगर यह मुमकिन नहीं है

मन का स्वभाव है कि दुख से बचना चाहता है और सुख की तलाश करता है। और परमार्थ में भी यह चाहता है कि दुनिया के भी सब सुख ब-दस्तूर रहें और परमार्थ भी बनता जावे। मगर यह मुमकिन नहीं है। अगर ऐसा हो तो कोई बंधन संसारी और अटक भटक दूर न हो क्योंकि जब सुख ही रहा तो आसा और बासा संसार की दूर न होगी और जिस सबब से कि जनम होता है, वह ब-दस्तूर बना रहेगा। इसलिये राधास्वामी दयाल जिस तरह मुनासिब होता है, इसके बन्धनों को और आपे को तुड़वाते हैं। कभी रोग, कभी सोग देकर और कभी निरादर करा कर। पस मौज से मुआफ़िक़त करना परमार्थी का बड़ा श्रृंगार है। और जिस तरह की हालत आवे, उस के अन्दर राज़ी हो कर कार्रवाई करे। किसी में बंधन न रक्खे, मसलन अगर किसी रिश्तेदार की मौत भी हो जावे तो मौज मालिक की समझ कर ख़ामोश रहे, अगर ताक़त बरदाश्त किसी दुख की न हो तो वास्ते मिलने ताक़त के प्रार्थना करे, सब अन्तरी और बाहरी बन्धनों को ढीला कर दे और कोमल बानी और हर हालत में दीनता से बरताव करे तो शेर को भी बस में ला सकता है, मिस्ल कमाये हुए बेंत या धुनी हुई रूई के जिधर चाहो झुका लो, ग़रज़ कि कोई अटक भटक बाक़ी न रह जावे, मन की गढ़त इस तरह हो जावे जैसे एक महात्मा जी का हाथ पक कर सड़ गया था और कीड़े

पड़ गये थे, मगर वह इलाज नहीं कराते थे, एक रोज़ दो तीन कीड़े ज़मीन पर गिर पड़े, उन्होंने उठा कर फिर ज़ख़म में रख दिये और कहा कि यह वहाँ परवरिश पाते थे, तब मालिक ने राज़ी हो कर उनके जख़म को ख़ुद-ब-ख़ुद अच्छा कर दिया। साध की रहनी सील छिमा संतोष की जैसी कि कबीर साहब ने साध की महिमा में वर्णन करी है, होनी चाहिए और हमेशा अपनी कसरों को देखता जाय।

बचन ६५

प्रेमियों की सोहबत में संसारी मक़रूह मालूम होता है

जैसे कोई गँवार आलिमों की संगत में जावे तो कैसा भद्दा मालूम होता है, इसी तरह संसारी, प्रेमियों की सोहबत में मक़रूह मालूम होता है। और जैसे गँवार राज दरबार के लायक़ नहीं है, इसी तरह यह जीव जब तक कि इस में मन गँवार बैठा है, मालिक के दरबार में दख़ल पाने के लायक़ नहीं है। जब इस की कुछ अर्से तक गढ़त हो जावे, तब कुछ क़ाबिल बने और गढ़त सिर्फ़ सतसंग में होगी। ख़ाली अभ्यास भी उपदेश लेकर काफ़ी नहीं है। क्योंकि सिर्फ़ मदरसे में इल्म पढ़ लेने से राज दरबार के तौर तरीक़ मालूम नहीं हो सकते। इस लिये सतसंग की, जहाँ गढ़त हो सकती है और भक्तों की रहनी आ सकती है, अभ्यास से भी ज़्यादा ज़रूरत है। जब अर्से तक सतसंग किया जावे, तब कुछ काम बने। बल्कि एक जनम अगर सतसंग करते करते गुज़र जावे तो हर्ज नहीं है, क्योंकि बाज़ ज़बर स्वभाव और

पकड़ मन में ऐसी रक्खी होती हैं कि वह बड़ी मुशिकल से दूर होती हैं, जैसे कि गँवार की बाज़ गँवारी बातें ऐसी आदत में दाख़िल होती हैं कि वक़्तन फ़वक़्तन वह ज़ाहिर हो जाती हैं, हरचन्द वह उनको छिपाना चाहता है। अलबत्ता अर्से तक होशियारी से सतसंग करने के बाद मुमकिन है कि मन दुरुस्त हो जावे सो कोई चिन्ता की बात नहीं है, हम जो हुज़ूर राधास्वामी दयाल की सरन में आये हैं तो वह सब गढ़त कर लेंगे, इरादा हमारा पक्का होना चाहिये, फिर वह सब सामान आप बख़्श देंगे। जो भेख हैं, उनकी गढ़त की बड़ी ज़रूरत है क्योंकि उन्होंने घरबार परमार्थ ही के ख़ातिर छोड़ा है, पर उनको गेरुआ कपड़े धारने और भेखों की जमाअत में रहने से बड़ा अहंकार हो जाता है। गेरुए कपड़े में क्या परमार्थ रक्खा है? हुज़ूर महाराज ने बहुत से भेखों को गृहस्थी या मिस्ल गृहस्थियों के बना दिया और कपड़े भी सफ़ेद पहना दिये। भेखों को यह भी जानना चाहिए कि गृहस्थी पर ज़्यादा ज़िम्मेदारी नहीं है। मगर उन्होंने जो घरबार छोड़ा है, उन पर फ़र्ज़ है कि वह पूरे तौर पर मन की गढ़त करावें और उस को ढीला करें और सच्चे परमार्थी बनें।

बचन ६६

संत चैतन्य का अंग बढ़ा कर नाक़िस माद्दा ख़ारिज कराके स्वभाव बदलते हैं

किसी दरख़्त में जो पंखड़ी और फूल निकलते हैं, उन के रंग और ख़ुशबू—जैसे कि गुलाब का फूल—उस दरख़्त के माद्दे की ख़ासियत के सबब से हैं। अगर किसी

दरख़्त का फल बदबूदार है तो उसकी बास को इतरियात वग़ैरा लगा कर कोई बदलना चाहे तो बदल नहीं सकता। अगर एक फूल की रंगत और बदबू को तबदील भी कर दिया जावे, मगर फिर जो फूल निकलेगा, वह वैसा ही होगा। इसी तरह आदमी से जो स्वभाव और विकारी अंग प्रकट होते हैं, वह उसके अन्तर के मसाले की ख़ासियत के सबब से हैं। जब तक वह मसाला ख़ारिज न किया जावे, और सुरत चैतन्य संतों की मदद और मेहर से न बढ़ाया जावे, ख़वास का बदलना मुमकिन नहीं है। जिस क़दर संतों के अभ्यास से चैतन्य का अंग बढ़ता जावेगा या नाक़िस माद्दा ख़ारिज होता जावेगा, उसी क़दर रफ़्ता २ घट की पूरी सफ़ाई होगी यानी कोई विकारी अंग और चाह और पकड़ अन्तर में बाक़ी न रहेगी और तब दर्शन कुल मालिक का होगा और सब भेद रचना का खुल जावेगा। इस इख़राज के लिये संत दया करके और भी तरह तरह की जुगत करते हैं। जैसे अगर किसी को सुख देते हैं तो उसके साथ कुछ न कुछ दुख भी मिला देते हैं ताकि उस सुख का ज़हर न चढ़ने पावे। ग़रज़े कि जैसे मुनासिब होता है, ठोक पीट कर उस को दुरुस्त कर लेते हैं।

बचन ६७

बल किसी तरह का इसको न रहे, यह भारी दया मालिक की है

१ — इस बात की प्रतीत आ जानी चाहिये कि मैं कोई काम अपने बल से नहीं कर सकता हूँ, जो कुछ होता है, मालिक की मौज से होता है। यह आपा ही

परदा है जो मालिक का दीदार नहीं होने देता है। सो जहाँ तक माया है, वहाँ तक आपा है। लेकिन इन पर्दों में दरजे हैं। जिस क़दर परदे टूटते जावेंगे, मेला मालिक से होता जावेगा। जब तक घाट नहीं बदलेगा, तब तक यह मालिक को कुल का कर्त्ता होना नहीं मालूम कर सकता और जब आपा जाता रहा तो यह ख़याल करेगा कि मेरी तमाम ताक़त सर्फ़ हो गई। मगर असल में यह दया है क्योंकि जब तक मैं और तू का परदा है, तब ही तक मालिक गुप्त रहता है और तब ही तक कपट है। सो दुनिया का जिस क़दर मेल है, वह सब कपट का है यानी पर्दे के अन्दर का है। अगर किसी से बहुत गहरी मोहब्बत और प्रीति हुई तो मन से मन मिलेगा और जो एक के मन में ख़याल पैदा हुआ, वह ही दूसरे के मन में भी होने लगेगा, लेकिन जान से जान नहीं मिलती। जान को जाने-जानां से मिलाना चाहिये। दुनिया में जब दो दोस्त मिलते हैं कि जिन में बहुत ही ज़्यादा मोहब्बत होती है तो कैसी ख़ुशी होती है। मगर यह मिलना तो कपट यानी काया के पट के साथ है, क्योंकि बाहर से हाथ मिला सकते हैं और बाक़ी सब परदे में है। मालिक से जो मिलना है, वह बे-परदा है। सो जब तक सुरत शब्द से जो उसकी जान है, नहीं मिलेगी, तब तक असल मेल न होगा। फिर जब कि कपट के मिलने में ऐसी भारी ख़ुशी होती है तो सुरत को शब्द से मिलने में कैसा भारी सरूर और आनन्द मिलेगा। उस सरूर का स्थूल नमूना यहाँ यह है कि जैसे कोई आदमी या जानवर किसी बाजे को सुनने में ऐसा महव हो जावे कि तन की भी ख़बर न रहे।

२ — प्रीति लोग जगह जगह लगा रहे हैं और वही दुख देने वाली है। मालिक की प्रीति सदा रहने वाली और हमेशा का आनन्द देने वाली है। दुनिया की प्रीति

नाशमान और दुखदाई है। जैसे जिससे कि गहरी मोहब्बत और प्रीति है, उस से मिलें, मगर उसकी तरफ़ मुख़ातिब न हों तो कैसे वह शख़्स ख़ुश होगा, इसी तरह जो मालिक से प्रीति करें और उससे मिलने को अभ्यास में बैठें मगर दुनिया के ख़्यालों में लिपट जावें तो कैसे वह मालिक राज़ी होगा। मालिक तो हरचन्द चाहता है कि मुझ से मिले, क्योंकि अन्तर में वह पुकार भी रहा है, मगर यह दुनिया की तरफ़ ही झोका खा जाता है। प्रेम जब आवे, तब सब ही काम बन जावे, अन्तर में सफ़ाई भी हो जावे और किसी क़िस्म की क़दूरत बाक़ी न रहे। यह प्रेम मालिक की निज दात है जिस को बख़्शिश हो जावे वह महा बड़भागी है। एक किनका प्रेम का फ़ौक़ियत रखता है सौ बरस के भजन और बन्दगी पर। थोड़ा सा भी झीना ख़्याल मालिक के चरनों का और थोड़ी भी बेकली और तड़प उस के दीदार की बनी रहे तो बहुत काम इसका बन सकता है। ऐसी तड़प और हिलोर के वास्ते प्रार्थना करनी चाहिये, वह ही अपनी मौज से जब मुनासिब होगा, बख़्शेंगे। प्रेम ऐसी भारी न्यामत है कि दुनिया का राजपाट सब उसके आगे तुच्छ और हक़ीर है। सो धीरे धीरे जब अन्दर में कोई पकड़ और चाह बाक़ी न रहेगी, तब प्रेम झलकेगा। इस में जल्दबाज़ी न करनी चाहिये। जिस तरह वह चलायें, तमाशा देखते हुए चलना चाहिये।

बचन ६८

परमार्थी को हमेशा विचार रखना चाहिये

१ — विचार से मतलब निरख परख करने से है। निरखना यानी देखना चीज़ों और कामों का और फिर

परखना यानी मालूम करना कि वह जाइज़ हैं या ना-जाइज़। जो काम ना-जाइज़ और फ़िज़ूल हैं, उनको छोड़ना चाहिये, जैसे कि बे-मतलब किसी के लड़ाई झगड़े में शामिल होना या अपने मतलब के लिये दूसरों की तकलीफ़ का ख़याल न करना या किसी की हक़-तलफ़ी करना या ग़ैर-वाजिब रुपया लेना या अपना बेजा तौर पर वक़्त ख़राब करना या औसत दरजे पर गुज़ारे के लायक़ जो ज़रूरी है, उस से ज़्यादा हासिल करने के लिये कोशिश करना या अपनी मान बड़ाई के लिये सरगरदाँ रहना और जो काम कि ज़रूरी और मुनासिब हैं, उनको हत्तुल इमकान करना चाहिये, जैसे अपने वक़्त फ़ुरसत में पोथी का पाठ या और परमार्थी कार्रवाई में मशग़ूल रहना और जीवों को भर मक़दूर सुख पहुँचाना, शील और छिमा को हर वक़्त काम में लाना, नमूद व नुमाइश बिलकुल न करना, और जितने सकारी अंग हैं, उन से काम लेना और विकारी अंगों को छोड़ना। ऐसा विचार हर वक़्त रखना ज़रूर है, न कि सिर्फ़ सतसंग के वक़्त। अगर अभ्यास में रस भी मिले लेकिन जो ऐसा विचार नहीं है तो वह ठीक कार्रवाई परमार्थ की नहीं है। ऐसा विचार उस वक़्त ठहरेगा, जब कि यह सतगुरु स्वामी को अपने सिर पर हर वक़्त मौजूद समझेगा। बग़ैर ऐसे विचार के और उस के मुवाफ़िक़ रहनी रहने के, जैसा चाहिये, परमार्थी फ़ायदा हासिल नहीं हो सकता है, क्योंकि जब तक विकारी अंग दूर न होंगे, सफ़ाई अंदरूनी हासिल न होगी और जब तक सफ़ाई न होगी, निर्मल रस नहीं मिलेगा। सो सतसंग के वक़्त तो किसी क़दर विचार रहता ही है, मगर जब घर गया और भोग सन्मुख हुआ, सब विचार भूल गया। ऐसे विचार में मन की दम दम मौत है, सो उसको पीस कर चूरा कर डालना होगा, पर यह काम बहुत मुश्किल है और बराबर

भूल चूक होती रहती है लेकिन अपनी कसरों को देखना और उनको कसर जानना और उन के दूर करने की कोशिश करना, यह भारी फ़र्ज़ परमार्थी का है। जब जब भूले या चूके, उसी वक़्त पछतावे और प्रार्थना माफ़ी के लिये करे और आइन्दा होशियार रहने के लिये मुस्तैद हो, पर दया राधास्वामी दयाल की सच्चे परमार्थियों पर ऐसी है कि जब जब भूल होती है, उसी वक़्त वह भूल मालूम हो जाती है। माफ़ी वास्ते भूल के फ़ौरन माँगनी चाहिये, न कि पछता कर

आगे पीछे बहु पछताऊँ, समय पड़े पर होवत चोरा

२ — इस संसार के भोग ऐसे लुभाने वाले हैं कि आदमी का विचार और होशियारी, जैसा कि चाहिये, काम नहीं देती है। जहाँ भोगों के सन्मुख हुआ और उन में लिपटा। ज़रा ज़रा मुआमले में मन बिगड़ता है और सतसंग में भी थोड़ी बहुत ऐसी ही हालत रहती है। मगर सतगुरु दयाल ताड़ मार बराबर जारी रख कर इस की गढ़त करते रहते हैं।

बचन ६९

परमार्थी को चाहिये कि मालिक की मौज के साथ मुवाफ़क़त करे

१ — आराम या तकलीफ़ जो आयद हों, सब को मौज मालिक की समझ कर ख़ुशी के साथ बरदाश्त करे। अगर वह आग में जला दे या पर्वत से गिरा दे तो भी राज़ी रहे। ग़रज़ यह है कि जो कुछ हालत आवे, उस में ख़ुशी से राज़ी रहे। जब ऐसी हालत परमार्थी की हो

जावेगी, तब उसका चित्त बड़ा ही मगन और उपराम रहेगा, गोया तमाम भार सिर पर से उतर गया। जिस किसी की ऐसी हालत है वही सच्चा दास है। वही सच्चा सेवक है और उसी की दशा मालिक की सी होगी। फिर देखना चाहिये कि मालिक किस तरह छिन छिन उसकी रक्षा और सँभाल करता है। देखो, माँ छोटे बच्चे की किस तरह सँभाल करती है। सर्द हवा चलती है तो उसको ओढ़ा देती है, गरमी पड़ती है तो पंखा झलती है। अपनी नींद और आराम का कुछ ख़्याल नहीं करती और हर वक़्त उस की निगरानी करती रहती है। अगर कोई कीड़ा या भुनगा उस पर आ पड़ता है तो माँ उसे दूर कर देती है और बच्चे को ख़बर भी नहीं होती है। इसी तरह मालिक अपने बच्चों की सँभाल और रक्षा बराबर कर रहा है। बहुत आफ़तें ऊपर से ऊपर टाल देता है और इस को ख़बर भी नहीं होती।

२ — सच्चा बालक वह है जिसने सब बल तोड़ कर, एक राधास्वामी दयाल का आसरा लिया है और जो कुछ दुख सुख उस पर आकर पड़ता है, उन्हीं के चरनों की तरफ़ रुजू लाता है। जैसे जब बादल गरजता है या आँधी आती है या कोई डरावनी सूरत नज़र आती है, तो कैसे बच्चा अपनी माँ की गोद में चला जाता है और उस से चिपट जाता है, इसी तरह परमार्थी पर जब कोई आफ़त आवे तो अन्तर में जो सच्चे मालिक के चरन यानी चैतन्य धार मौजूद हैं, उस से लिपट जावे। इस से यह मतलब नहीं है कि बाहर की कार्रवाई में जो जतन मुनासिब और ज़रूरी हैं, उनको छोड़ देना चाहिये। बल्कि जो तदबीर कि दुनियावी मुनासिब है, वह भी करे। लेकिन अन्तर में भरोसा यही रक्खे कि करता धरता कुल मालिक आप हैं। उन की मौज जैसी होगी, वैसा ही

नतीजा होगा और जतन का स्वरूप न हो जावे, जतन सिर्फ़ द्वारा है, मौज की कार्रवाई प्रकट होने का। अगर कोई कहे कि अब जतन करना क्या ज़रूर है, मौज आप सब कार्रवाई कर देगी तो यह भी बड़ी ग़लती और मौज के ख़िलाफ़ है, क्योंकि मालिक अन्तर के अन्तर निहायत गुप्त है। इसलिये वह चाहता है कि उस की कार्रवाई भी गुप्त रहे। हुज़ूर महाराज ने फ़रमाया है कि जब संत कोई कार्रवाई करना चाहते हैं तो अपने निज धाम में बैठ कर मौज करते हैं और वहाँ से काल के नाम हुक्म जारी होता है और फिर उस की कार्रवाई नीचे स्थान तक जारी हो जाती है।

३ — सवाल - काल की मारफ़त क्यों कार्रवाई कराई जाती है?

जवाब - अगर किसी की दोस्ती बादशाह से हो और वह उस से कहे कि यार हमारे यहाँ आज भंगी नहीं आया, ज़रा पाख़ाना साफ़ करदो तो वह यह करेगा कि भंगी को भेज देगा, ख़ुद जाकर यह कार्रवाई न करेगा(यह देश मिस्ल पाख़ाने के है)। जब कोई बादशाह किसी को कोई इनाम या तमग़ा देना चाहता है तो वह क़ायदे के मुवाफ़िक़ कमिश्नर या कलक्टर की मारफ़त भेजेगा। ख़ुद वह इनाम न देगा। चाहे कलक्टर इनाम पाने वाले से नाराज़ भी हो और ख़िलाफ़ भी हो मगर बादशाह के हुक्म की तामील उस को ज़रूर करनी पड़ेगी और उस इनाम में कलक्टर के हाथ से मिलने में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ सकता। मालिक जैसा जैसा जीव के वास्ते मुनासिब है यानी जिसमें इस का निज फ़ायदा मुतसव्वर है, कार्रवाई करता है। चाहे वह काम बाहर से उलटा मालूम हो, मगर उस में जीव के परमार्थी लाभ की मसलहत ज़रूर है। कबीर साहब ने फ़रमाया है—

कबीर ऐसा ना मिला, शब्द गुरू का मीत।
तन मन सौंपे मिर्ग ज्यों, सुने बधिक का गीत।।

४ — जैसे हिरन बीन बाजे को सुन कर मस्त हो जाता है और बधिक उसके तीर मार देता है, इसी तरह परमार्थी को होना चाहिये, तब काम बन सकता है। जब तक कि इसके बाहरी और अन्तरी बंधन न तोड़े जावेंगे तब तक यह चढ़ाई के क़ाबिल नहीं हो सकता और बंधन जब तोड़े जावेंगे तो थोड़ी बहुत तकलीफ़ ज़रूर होगी।

५ — दुनिया में और कोई मत ऐसा नहीं है कि जिसमें मन पर चोट पड़े, लेकिन राधास्वामी मत की कार्रवाई में मन के अन्तर के नुक़्ते पर चोट पड़ती है और इसी से यह घबराता है। अगर घबराये नहीं और मौज के साथ ऐसा ख़याल करके मुआफ़िक़त करे कि बग़ैर बन्धन टूटे मेरा कारज हरगिज़ नहीं बनेगा तो इसकी सफ़ाई होना जल्द मुमकिन है। लेकिन जो घबरा गया और बर्दाश्त न कर सका तो आहिस्ता आहिस्ता सफ़ाई की जावेगी। लेकिन जब सफ़ाई होगी, इसी तरह होगी। यह मत आम तौर पर जब ही प्रकट हो सकता है जब कि जीव सफ़ाई करके इस लायक़ बना लिये जावें कि अन्तर अभ्यास में लगें। पुराने ज़माने में जीव ईश्वर कोटि थे। वह अपने तीव्र बैराग से बहुत कष्ट उठा सकते थे और अंतर में लग सकते थे। लेकिन इस वक़्त में जीवों की हालत बहुत नाज़ुक है, न उस क़दर बैराग है और न तकलीफ़ बर्दाश्त करने की क़ाबलियत है। इस वास्ते राधास्वामी दयाल अपने निज रूप से तमाम पृथ्वी पर ऐसी मौज फ़रमा रहे हैं कि जिस से जीवों की सफ़ाई हो और इस मत में शरीक़ होने के क़ाबिल बनें। लड़ाई, मरी, क़हत जो आज कल बे हिसाब फैल रहे हैं, ऐसी

मौज के निशान हैं। इस तरह की कार्रवाई जैसी कि निज रूप से हो सकती है, प्रकट रूप से नहीं हो सकती, क्योंकि प्रकट रूप हर किसी को नज़र आता है तो जीव उस से लड़ने को तैयार होते हैं लेकिन गुप्त स्वरूप से उनका कुछ बस नहीं चलता, इसी मसलहत से मालिक ने अपने तईं हमेशा गुप्त रक्खा है। मगर वह अन्तरजामी है, सब देखता है और मुनासिब तौर पर काम करता है। यह कार्रवाई सफ़ाई की काल की मारफ़त कराई जाती है और इससे ज़रूरत काल की साबित होती है, जैसा कि बानी में फ़रमाया है।

काल रचा हम समझ बूझ के। बिना काल नहीं ख़ौफ़ जीव के।।
क़दर दयाल नहिं बिना काल के। मौज उठी तब अस दयाल के।।
दिया निकाल काल को वहाँ से। दख़ल काल अब कभी न यहाँ से।।

बचन ७०

जब बन्धन टूट जाते हैं तो बड़ा आनन्द और मगनता और निःचिंताई हो जाती है

सब तरह के बन्धन टूटने चाहिये। (१) धन का बन्धन, तो धन में सब तरह का धन आ गया। (२) मन का बन्धन, तो मन में अपना मन और सब वास्तेदारों का मन आ गया। (३) तन का बन्धन, तो अपना तन और रिश्तेदारों का तन आ गया। ग़रज़े कि सब तरह के बन्धन मान प्रतिष्ठा वग़ैरा जैसे कि वशिष्ठ जी ने कहे हैं, टूटने चाहिये। बाज़ वक़्त मामूली हालत में जीव ख़याल करने लगता है कि मेरा बंधन किसी ख़ास चीज़ का टूट गया, लेकिन जब उस पर कोई सदमा पड़ता है तो मालूम होता है कि किस क़दर बंधन धरा हुआ था।

बंधन टूटा हुआ जब समझना चाहिये, जब कि उस के भाव अभाव या हानि लाभ में उस को कोई दुख सुख न हो, जैसे कि ग़ैरों के दुख सुख में इस को कोई दुख सुख नहीं होता। सो यह बन्धन सब राधास्वामी दयाल आहिस्ते आहिस्ते तोड़ेंगे। कभी कोई झगड़ा पैदा करके, कभी बीमारी लाकर। ग़रज़े कि उन के पास बन्धन तोड़ने की अनेक जुक्तियाँ हैं और इस तरह पर रफ़्ते रफ़्ते मोह का बीजा जो मन में धरा है, जला दिया जाता है। जैसे कुटुम्बियों में लड़ाई हो जाना और एक दूसरे की तरफ़ से चित्त बिगड़ना, कुछ देर के लिए इस में मोह टूट गया, फिर आपस में मेल हो गया तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन जड़ बंधन की यानी मोह कमज़ोर हो गया। तन का बन्धन अलबत्ते भारी है। इसका टूटना जब समझना चाहिये, जब कि इसमें इतनी ताक़त हो जावे कि जब चाहे जब सुरत की धार को जिस अंग से चाहे, अलेहदा करले, जैसे कि पम्प में से पानी की धार को खींच लेते हैं और जब फिर चाहते हैं, नीचे उतार देते हैं। यह ताक़त गहरे अभ्यास के बाद हासिल होगी। जब यह हालत हासिल हो जावे तो इस को बड़ा आनन्द और मगनता और उपराम दशा मन की प्राप्त होगी। फिर उस वक़्त हर तरह की मौज से मुवाफ़िक़त करने को तैयार हो जावेगा, जैसे ज़ख़्म में जब शिगाफ़ लगा दिया जाता है और तमाम उसकी पीप और मवाद निकाल दिया जाता है तो कैसा आराम मालूम होता है और जो टीस कि पहिले होती थी, वह सब जाती रहती है। यही फ़ायदा अभ्यास का है कि अपनी सब वृत्ति को बाहर से हटा कर अन्तर शब्द में लगावे और उसका आनन्द ले। इसी का नाम अभ्यास है और इसी से सब बन्धन टूटेंगे।

* * * * * *

भाग पाँचवाँ

दीनता, सरन व प्रेम

बचन ७१

प्रेम की महिमा

१ — प्रेम यानी इश्क़ अजब जौहर है। यह मालिक की निज ज़ात है और हिरदे को रोशन, पाकीज़ा और सीतल करता है। जानवरों में तो यह जौहर है ही नहीं। अगर है तो बिल्कुल ख़फ़ीफ़। इनसान में अलबत्ता है और उसको मोह कहते हैं। इनसान भी जो कि आसुरी हैं यानी जिन में हैवानियत ज़्यादा है, उन में यह अंग कम है और उस को सेन्टिमेंन्ट (Sentiment) यानी आसुरी प्रीति कहते हैं। जिस क़दर चैतन्य विशेष है, उसी क़दर मुहब्बत यानी प्रीति ज़्यादा है। अगर मलीनता के साथ है तो वह मोह कहलाता है और जो निर्मल प्रीति है तो उसको प्रेम यानी इश्क़ कहते हैं। पतंग दीपक पर आशिक़ है। उस में ज़ाती और क़ुदरती प्रीति है। रोशनी देखने से ही उस की दृष्टि हर जाती है और अपने आपे को भूल जाता है। ऐसी प्रीति जिसकी मालिक से है, वही प्रेमी है और वही मालिक का प्यारा है। जिस पर मालिक निज दया फ़रमाता है, उस को अपनी ज़ात यानी प्रेम की बख़्शिश करता है।

गुरु प्रीति बढ़ी चितवन में। सुर्त खैंच धरी चरनन में।।
मेरी दृष्टि हरी दरशन में। अब प्रेम बढ़ा छिन २ में।।

२ — जिस को कि इश्क़ है, वह अपने तन मन का सुख आराम नहीं चाहता है, बल्कि अपनी सुध बुध भी भूल जाता है। जैसे कोई बीमार है और अगर किसी से

मोहब्बत है, वह सामने आ जावे तो बीमारी भूल जाती है, बल्कि छूट जाती है, वैसे ही अन्तर में दर्शन होने से अपने आपे की भी सुध नहीं रहती, अंग अंग उस के मोहित और हर्षित हो जाते हैं और बिना उस चरन रस के और कुछ नहीं भाता है।

बिन गुरु चरन और नहिं भावे, इस आनन्द में रहे समाय।
दर्शन करत पिंड सुध भूली, फिर घर बाहर सुध क्या आय।।

३ — पहिले जब यह जीव भक्ति मार्ग में क़दम रखता है, तब समझता है कि प्रीति करना बड़ा सहज काम है और स्वार्थ परमार्थ दोनों अच्छी तरह से बनते हैं। मगर जब तन मन इन्द्रिय जरजर होते हैं और हड्डी २ की धूल उड़ाई जाती है, तब ख़बर पड़ती है कि इश्क़ क्या चीज़ है। हाफ़िज़ ने कहा है कि ''इश्क आसां नमूद अव्वल, वले उफ़्ताद मुशकिलहा।''

जो मैं ऐसा जानती, प्रीति किये दुख होय।
नगर ढँढोरा फेरती, प्रीति न कीजो कोय।।

४ — मालिक के इश्क़ में घट में भारी जंग होती है। जैसे संसार में किसी से इश्क़ लग जाता है तो कुल कुटुम्बी ख़िलाफ़ हो जाते हैं, वैसे ही परमार्थ में न सिर्फ़ बाहरी कुल कुटुम्बी लड़ते हैं, बल्कि अन्तर में जो इस के और कुटुम्बी हैं यानी मन माया इन्द्रियाँ काल कर्म और पाँच दूत इन से लड़ाई करनी पड़ती है। इस को जिहादे अकबर कहते हैं। जैसे हंडरेड इयर्स वार (Hundred Years War) यानी सौ बरस की जंग वग़ैरा लड़ाई हुई हैं, वैसे ही यह चार जनम का युद्ध है। सती और सूरमा एक ही पलक में प्रान देते हैं, पर साध को जब तक तन मन का संग है, तब तक दिन रात लड़ना पड़ता है। कबीर साहब ने फ़रमाया है---

साध का खेल तो बिकट बेंड़ा, जती सती और सूर की चाल आगे।
सूर घमसान है पलक दो चार का, सती घमसान पल एक लागे।।
साध संग्राम है रैन दिन जूझना, देह परयन्त का काम भाई।
कहें कब्बीर टुक बाग ढीली करे,तो उलट मन गगन सों ज़मीं आई।।

५ — मन जो भोगों का आदी है और जिसका तन से बंधन है उस बंधन को तोड़ना और उस से न्यारा होना और घट में लड़ाई करना, जीव की ताक़त नहीं है। जैसे कृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा था कि लड़ाई करूँगा मैं, मगर करानी तुम्हारे हाथ से है, वैसे ही मालिक भी कहता है कि यह महाभारत की जंग करुँगा मैं, मगर कराई जीव के हाथ से जावेगी।

६ — दया और बख़्शिश से काम होता है। यह दया सिर्फ़ संत मत में होती है। और कहीं नहीं है। जीव को चाहिये कि मुतवातिर और निरन्तर चरनों में विनय (प्रार्थना) करता रहे और जैसे सीपी समुद्र में स्वाँति बूँद के लिये तरसती और तड़पती रहती है और हर दम मुख खोल कर बैठी रहती है और उसी बूँद से मोती उत्पन्न होता है, वैसे ही जीव को सतसंग रूपी जल में प्रेम रूपी मोती के लिये चाह रूपी मुख खोल कर बैठना चाहिये और जैसे पपिहा स्वाँति के लिये ''पिउ प्यारा पिउ प्यारा'' रटन करता है, वैसे ही इस को चरन अंबु (अमृत) के लिये निस दिन नाम रटन करना चाहिये।

स्वाँति बूँद जस रटत पपीहा, अस धुन नाम लगाये।

७ — रटन तीन प्रकार के हैं। शारीरिक, मानसी और रूहानी यानी ज़बान से, मन से और सुरत यानी रूह से। फ़ारसी में इन को ज़िक्र-उल-लिसान, ज़िक्र-उल-क़लब और ज़िक्र-उल-रूह कहते हैं। पहिले क़िस्म के सुमिरन में गोया लक़ लक़ (बक बक) करना है। दूसरे में वसवसा और ख़दशा (संशय और भरम)

होता है और तीसरे में राहत (आराम) होता है। रूह से रटन करने की ताक़त इस जीव में है, मगर अभी जागी हुई नहीं है, सोई हुई है। जैसे बच्चा है, सब ताक़तें उस में मौजूद हैं, मगर अभी जागी हुई नहीं हैं। जैसे खान पान वग़ैरा संसारी सामान व लवाज़मा यहाँ की ताक़तों को जगाने के लिये हैं, वैसे ही सतसंग, अभ्यास, परमार्थी कार्रवाई वग़ैरा रूहानी ताक़त को जगाने के लिये लवाज़मा हैं। इन को निरंतर यानी हमेशा करते रहना चाहिये।

८ — रूह से रटन किस को कहते हैं, अभी इस को ख़बर ही नहीं है। जब प्रेम की रमक़ यानी झलक इस में आवेगी, तब इस की जीवात्मा से आप से आप नाम का उच्चारण होता रहेगा और तब शब्द साफ़ सुनाई देगा। बानी में साफ़ २ कह दिया है---

नाम प्रताप सुरत अब जागी। तब घट शब्द सुनाये।।
शब्द पाय गुरु शब्द समानी। सुन्न शब्द सत शब्द मिलाये।।
अलख शब्द और अगम शब्द ले। निज पद राधास्वामी आये।।
पूरा घर पूरी गति पाई। अब कुछ आगे कहा न जाये।।

यानी पहिले सहस दल कँवल का शब्द, पीछे त्रिकुटी का शब्द, इसी तरह स्थान स्थान का शब्द सुनता हुआ और गुरु स्वरूप का ध्यान करता हुआ, सुधा रस पान करता हुआ और लीला बिलास देखता हुआ, जीव निज घर में बासा पाता है।

९ — भक्ति यानी इश्क़ निर्मल होना चाहिये। स्वार्थ, कपट और लपेट की भक्ति कुछ काम की नहीं। भक्तजन न धन चाहता है, न हुकूमत, न कोई गुण या जौहर, न सिद्धि शक्ति, न कोई स्थान का खुलना, न शब्द का सुनना, न सत्तलोक, न अनामी पद चाहता है यानी सिवाय दीदार और दर्शन के और कोई चाह या ख़्वाहिश उसके अन्तर में नहीं रहती है।

बिन देखे दीदार न मानूँ। जग संसार सभी विष जानूँ।।
अमृत कुण्ड रूप राधास्वामी। अचवूँ छिन छिन तब मन मानी।।
बिन राधास्वामी मोहिं कछु न सुहावे। चार लोक मेरे काम न आवे।।
ज्ञान ध्यान और जोग बैरागा। तुच्छ समझ मैंने इनको त्यागा।।
मैं तो चकोर चन्द राधास्वामी। नहिं भावे सत नाम अनामी।।

१० — यही सार अंश है, और सब लवाज़मा हैं। और यही भक्त जन की चाह और माँग है। जहाँ प्रीतम से मेला है, वहाँ परतीत का सवाल ही नहीं पैदा होता यानी जिसकी परतीत कराई जाती है, जब वही प्राप्त है तो फिर परतीत काहे की। सिर्फ़ शुरू में जब तक मेला नहीं हुआ है, तब तक परतीत बँधाई जाती है। परतीत यानी यक़ीन, तीन क़िस्म का है, इल्म-उल-यक़ीन, ऐन-उल-यक़ीन और हक़्क़ुल यक़ीन। पहला समझौती का यक़ीन है, दूसरा आँखों से जब देखता है और तीसरा ज़ात से जब मिल जाता है यानी तदरूप हो जाता है और तब ही पूरा यक़ीन होता है।

११ — जितने साध महात्मा हुए हैं, उन सभों ने एक ही बोली बोली है मसलन सूरदास वग़ैरा। इन के शब्दों में भगवन्त की भक्ति का बयान है। संसारी लोग इस बात को क्या समझ सकते हैं? अगर किसी से बादशाह-ज़ादे बोलें, चाहे उस बात की कुछ भी हैसियत न हो तो देखिये वह फूला अंग नहीं समाता है, पर जो कुछ साध महात्मा कहते हैं, उस की ज़रा भी क़दर नहीं करता। विलायत में औरतें मर रही हैं कि किसी सूरत से बादशाह-ज़ादे के साथ नाचें और जो कहीं किसी को इसका मौक़ा मिल गया तो गोया उसका उद्धार हो गया।

* * * * * *

बचन ७२

दीनता का स्वरूप

१ — दीनता का स्वरूप सच्ची ग़रज़मन्दी है, जैसे मरीज़ हकीम का और नौकरी चाहने वाला हाकिम का, क्योंकि वहाँ अपना मतलब अटका होता है, वैसे ही जिस को कि अपने जीव का कल्याण करने की ग़रज़ है, वह गुरू और मालिक के सनमुख सच्चा दीन अधीन होता है। जब तक ग़रज़मन्दी नहीं है, तब तक सच्ची दीनता भी नहीं है। दीनता, प्रेम का पैराहन है। आपे के बर-अक्स दीनता है। आपे में वृत्ति का पसरना और फैलाव है। दीनता में अन्तर सिमटाव है। जब तक आपे के घाट पर बैठा हुआ है, तब तक दीनता का आना मुश्किल है। जैसे आँख और कान के द्वारे पर जब धार आती है, तो ज़रूर देखता और सुनता है, वैसे ही आपे के घाट पर ज़रूर अहंकार होता है। दीनता ऐसी होवे जिस में इस को रस और मज़ा आवे। दीनता निज दात है। जिस पर दया है, उस को यह बख़शिश होती है। बैराग और अनुराग, इन के हम्-मानी दीनता और प्रेम हैं। दीनता खान है सील क्षमा संतोष दया की, यानी यह सब उस के साथ हैं।

२ — मालिक को दीनता प्यारी है। जो दीनता सच्ची है तो न मन की चंचलता का फ़िक्र करे और न रास्ते के तोशे का सोच करे। मालिक कहता है कि जो मेरे पास आओ तो वह चीज़ लेकर आओ जो मेरे पास नहीं है और वह सच्ची दीनता है। जैसे गरमी में रोशनी है, वैसे ही भक्ति में दीनता है। मगर जैसे बग़ैर रगड़ने के रोशनी प्रकट नहीं होती, वैसे ही बग़ैर दुख तकलीफ़ के दीनता नहीं आती और जैसे स्टीम (भाप) के बग़ैर कल नहीं

चलती है, इसी तरह प्रेम और दीनता के बिना अंतर में चाल नहीं चलती है। मालिक दीन दयाल है। जब यह दीन होता है तब मालिक दया करता है। दीनता ऐसी होनी चाहिये जैसे कंगला भूखा प्यासा रोटी के लिये दीन अधीन होता है और सख़्त सुस्त की बरदाश्त करता है।

दीन हीन जानो अपने को। निपट नीच मानो अपने को।।
अब अहंकार करो क्या किससे। मौत धार दम दम में बरसे।।
जैसे जग में महा भिखारी। दीन ग़रीबी उन चित धारी।।
कोई उसको कुछ कह लेवे। मन को अपने ज़रा न देवे।।
तुम सतसँग कर क्या फल पाया। उनका सा भी मन न बनाया।।
अब ऐसा तुम्हें करना चाहिये। अपने मन आधीनी धरिये।।

वीराँ किया जब आपको बस्ती नज़र पड़ी।
और नेस्त जब कि हम हुए हस्ती नज़र पड़ी।।
देखा कि ख़ाक़सारी ही आली मुक़ाम है।
ज्यों ज्यों बलन्द हम हुए पस्ती नज़र पड़ी।।

मान मनी का रोग पसरिया। बड़े बने जिन मार सही।
छोटा रहे चित्त से अन्तर। शब्द माहिं तब सुरत गई।।

३ — मालिक के साथ और जो अपने से बड़े हैं, उन से दीनता करना सहज है। मगर जिन को अपने से नीच समझते हैं, उन से दीनता करना मुशकिल है। जो कि अपने से कम-तर हैं, उन से जब कोई दीनता करता है, दया फ़ौरन नाज़िल होती है। जैसे आँख कान देखने और सुनने के लिये द्वारे हैं, इसी तरह दीनता दया लेने के लिये द्वारा है। काल उलटी सुलटी हालत करके इस के चित्त में विक्षेपता पैदा करता है। इसको चाहिए कि अपने को नीचा डाल दे। नीचा डालने से काल के औज़ार को तोड़ देता है और जो हेकड़ी की तो काल ने जीत लिया।

नानक नन्हा हो रहे, जैसी नन्ही दूब।
और घास जल जायगी, दूब ख़ूब की ख़ूब।।

४ — जिस क़दर हो सके, अपने को दीन, हीन, हेच, तुच्छ, अबल और अधीन समझना चाहिये। जो कुछ बल, पौरुष और गुण है, सब राधास्वामी दयाल का है।

मैं गुरबर्ती राधास्वामी के चरन की।
लाज रखो मेरी काल से अब की।।
तुम्हरे बल से भई हूँ निचिन्ती।
अब मन में नहिं शंका धरती।।
सूर किया स्वामी खेत जिताया।
मार लिया मैंने मन और माया।।

निर्धन निर्बल क्रोधिन मानी, मैं गुन अपने अब पहिचानी।
स्वामी दीन दयाल हमारे, मो सी अधम को लीन उबारे।।

५ — जो कि निर-आपा है, वह बादशाह की भी परवाह नहीं करता है। एक रोज़ सिकन्दर, डायोज़िनीज़ के पास गया। उससे पूछा, क्या आप को कुछ चाहिये? जवाब दिया कि यही चाहता हूँ कि आप तशरीफ़ ले जाइये, मुझे आप का तशरीफ़ लाना बोझ मालूम होता है। इसी तरह औरंगज़ेब सरमद के पास गया। वह मस्त थे। नंगे रहते थे। औरंगज़ेब ने पूछा कि नंगे क्यों रहते हो? जवाब दिया कि जो गुनहगार हैं, उन के लिये कपड़ों की ज़रूरत है और जो गुनहगार नहीं हैं, उन को तन ढकने की ज़रूरत नहीं है। औरंगज़ेब ने हुक्म दिया कि इन को फाँसी चढ़ा दो और आँखें बन्द करके ले जाओ। कहा कि जिन की अन्तर की आँख खुली हुई है, उन की बाहर की आँख बाँध करके क्या करोगे? फिर आख़िर सूली पर चढ़ गये। यह सरमद, शाह दाराशिकोह के गुरु थे और उन की साध गति थी। तन में उन का बन्धन नहीं था। इसलिये ख़ुशी से सूली पर चढ़ना क़बूल किया। और दाराशिकोह को भी वक़्त लड़ाई के कहा था कि सिर दे दो, कर्म कट जायगा, क्योंकि बहुत आदमी

तुम्हारे बाइस क़तल हुए हैं। कहने का मुद्दआ यह कि इन्होंने अहंकार नहीं किया, बल्कि दीनता ही पसन्द की।

६ — दीनता जानवरों को भी प्यारी है, मसलन दूसरी गली या गाँव का कुत्ता जब और कुत्तों के सामने आता है, तब अगर अपनी दुम पीछे छिपावे तो वह समझते हैं कि बिचारा डर गया, उस को कुछ नहीं कहते और जो दुम न दबाई तो समझते हैं कि हेकड़ है और फ़ौरन लड़ाई हो जाती है। शेर जैसा जानवर भी दीनता से क़ाबू में आता है तो इन्सान दीनता कैसे पसन्द न करेगा? दीनता करना गोया आग पर पानी डालना है।

७ — दीनता दो क़िस्म की है। एक समझौती की, दूसरी ज़ाती। जब तक मन इन्द्रियों के घाट पर बैठा हुआ है, तब तक समझौती की दीनता है और जब चरन धार से मेला होगा, तब ज़ाती दीनता आवेगी। जहाँ आपा है, वहाँ दीनता नहीं है।

यह तो घर है प्रेम का, ख़ाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुईं धरे, तब पैठे घर माहिं।।
(सीस मुराद आपे से है)

८ — आपा किस को कहते हैं यानी परदे के भीतर बैठ कर कार्रवाई करना और ऊपर से जो धार आ रही है, उसकी ख़बर न रखना और समझना कि यह मेरी ही ताक़त है और मैं ही कार्रवाई करता हूँ, इस को आपा कहते हैं।

९ — दीनता किस को कहते हैं यानी अपने फ़ोकस (Focus) यानी मर्कज़ से हटना और दूसरे के आधीन होना यानी वृत्ति का अन्तर में सिमटना, इस को दीनता कहते हैं और वृत्ति के बाहर पसरने यानी फैलने को अहंकार कहते हैं और जिस जगह पर यह कार्रवाई

करता है उसको प्लेन आफ़ ऐक्शन (Plane of action) कहते हैं।

१० — अभ्यास में भी आजिज़ी मुफ़ीद है यानी अपना बल पौरुष लगाना हारिज है। इस की सुरत की धार उलटी बह रही है। इस को अन्तर में उलटा कर ऊपर चढ़ाना है। आपे यानी अहंकार से सुरत की धार का बाहर फैलाव होता है और दीनता से अन्तर सिमटाव होता है। दीनता ऐसी होनी चाहिये कि हर-दिल-अज़ीज़ हो जावे यानी हर कोई इस को पसंद और प्यार करे। इस को चाहिये कि अपने को किंकर समझे (किंकर यानी जो कुछ नहीं कर सकता)।

कबीर रोड़ा हो रह बाट का, तज आपा अभिमान।
लोभ मोह तृष्णा तजे, ताहि मिले निज नाम।।
रोड़ा हुआ तो क्या हुआ, पन्थी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे पैंड़े खेह।।
खेह भई तो क्या हुआ उड़ उड़ लागे अंग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर निपंग।।
नीर भया तो क्या हुआ, जो ताता सीरा होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हर ही जैसा होय।।
हर भया तो क्या भया, जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हर भज निर्मल होय।।
निरमल भया तो क्या भया, जो निर्मल माँगे ठौर।
मल निरमल से रहित हैं, ते साधू कोई और।।

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईरषा, दुर्लभ तजनी येह।।
माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहिं जाय।
मान बड़े मुनिवर गले, मान सबन को खाय।।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे बड़ी खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।
जहाँ आपा तहाँ आपदा, जहँ संसै तहँ सोग।
कहें कबीर यह क्यों मिटें, चारों दीरघ रोग।।

ऊँचे पानी ना टिके, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भर पिये, ऊँच पियासा जाय।।

लेने को सतनाम है, देने को अन दान।
तरने को है दीनता, डूबन को अभिमान।।
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान।।
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समायँ।।

बचन ७३

सच्ची प्रीति का निशान क्या है

१ — जहाँ सच्ची प्रीति है, वहाँ हरचन्द कि अपना कोई मतलब नहीं निकल रहा है तो भी जब तक उसको नहीं देख लेता है तब तक चैन नहीं आता है। जैसे मइया की प्रीति अपने बच्चे से होती है, बेटा अगर परदेश में है और मइया का कोई स्वार्थ उससे नहीं निकलता है तो भी उस के देखने के लिये तड़पती है। वैसे ही परमार्थ में जहाँ कि स्वार्थ का लवलेश नहीं है, सिर्फ़ दर्शन और बचन में प्रीति है, जब तक कि इसको यह प्राप्त नहीं होते, तब तक तृप्ती और शाँति नहीं आती। यह शुरूआत इश्क़ की है। संसार में भी जहाँ इश्क़ है, वहाँ सिवाय अपने माशूक़ के मिलने के और कोई चाह और ख़्वाहिश नहीं होती है यानी मुख्यता इसी की रहती है और कोई स्वार्थी अंग नहीं रहता। पैग़म्बर भी जो आये, उन्होंने भी इश्क़ की महिमा करी और परमार्थ में जो कि सच्चे प्रेमी हैं, उन को अन्तर में दर्शन और बचन का ज़रूर थोड़ा बहुत सहारा मिलता है।

२ — शेर का बच्चा जब पाला जाता है, तब उसको कच्चा माँस और ख़ून नहीं खिलाते हैं, ताकि इसको आदत न पड़ जावे। वैसे ही परमार्थ में भी जब ज़रा स्वार्थ की चाट आ जाती है तो वह हारिज होती है। खान पान आराम मान बड़ाई हुक्म चलाना वग़ैरा यह सब स्वार्थी अंग हैं। इन की चाह ले कर जो शरीक होता है, वह देर अबेर ज़रूर धोखा खाता है। कारज मात्र स्वार्थ का होना, इसमें कोई मुज़ायक़ा नहीं है। मगर मुख्यता परमार्थ की होनी चाहिये। अगर और कोई स्वार्थ नहीं अटका हुआ है तो आप बन बैठता है यानी चेले चाँटी कर लेना, औरों को उपदेश करना, यह भी एक क़िस्म का स्वार्थ है। जिस को कि आदत है या मान अंग धसा हुआ है, हज़ार समझाओ बुझाओ, हज़ार जतन कोशिश करो, हर्गिज़ नहीं मानता और जब तक कि स्वार्थ नहीं निकलता, मज़ा नहीं आता, जैसे कुत्ता घर में पाला जाता है, खीर पूरी सब चीज़ खाने को मुहइया करदो तो भी शुरू में जो माँस खाने की आदत है, वह जब तक कि दूसरे घर में जाकर हड्डी लाकर नहीं चूसता, चैन नहीं आता है। जो कि निकृष्ट हैं, उन के लिये खान पान वग़ैरा स्वार्थ का इन्तज़ाम किया जाता है, मगर उस में किसी वक़्त तबादला ज़रूर होता है।

३ — मुक़द्दम बाहर में दर्शन और बचन हैं और अंतर में भी रूप और शब्द हैं। यही रूप और शब्द इस के संग चलते हैं और अनामी पद में जहाँ कि रूप और शब्द नहीं हैं, वहाँ पहुँचाते हैं। इसको चाहिये कि प्रेम स्वरूप हो जावे। मालिक भी प्रेम स्वरूप है। सुर्त भी प्रेम रूप है। दोनों गुप्त हैं। मगर यह अभी तन मन और आपे का रूप हो रहा है। यह पर्दे जब हटाये जावेंगे यानी आपे को वार दिया जावेगा, तब इसका रूप, गुरू का रूप और नाम

का रूप, सब एक हो जावेंगे यानी सिर्फ़ प्रेम रह जावेगा। क़ौल नाभा जी-

भक्त भक्ति भगवंत गुरु, नाम चतुर बपु एक।
तिन के पग बंदन करत, नाशें विघ्न अनेक।।

अपने मालिक पै तू दे आपे को वार।
जब नहीं तू तब रहा मालिक दयार।।
प्रेम जब आया सभी को रद किया।
एक प्रीतम रह के, बाक़ी बह गया।।

४ — कहने का मुद्दआ यह है कि स्वार्थ का न होना और दर्शन बचन की अभिलाषा होना, यही सच्ची प्रीति का निशान है। मगर इस के जतन और कोशिश से कुछ नहीं होता है। मइया बच्चे को प्यार करती है, वह इस के लिये जतन और कोशिश नहीं करती है। इस के अन्तर में प्रीति का बीजा मौजूद है। वह आप से प्रकट होता है। वैसे ही जिस में कि भक्ति का तुख़्म यानी बीज मौजूद है, उस के अन्तर में आप से आप भक्ति का कुल्ला फूटता है। अलबत्ता इस के बढ़ाने के लिये अभ्यास की ज़रूरत है और यही जतन है। मगर होगा सब दया से।

संत दया बिन कोई न पावे। बिना संत कुछ हाथ न आवे।।
करनी भी सब संत बताई। बिना मेहर पचना है भाई।।
ताते मुख्य मेहर अब रही। सरन पड़ो राधास्वामी कही।।

बचन ७४

भक्ति और सरन की महिमा

१ — संत मत में भक्ति की महिमा और मुख्यता की गई है। जहाँ और सब गुण हैं, भक्ति नहीं है, तो कुछ

नहीं है। और जिस में कोई गुन नहीं है, भक्ति है तो सब कुछ है। वही भक्त है और वही भगवन्त का प्यारा है। अगर सुरत शब्द अभ्यास भी करता है, पर यह अंग नहीं है तो ख़ाली और थोथा है।

भक्तिहीन विरंच क्यों न होई। सब जीवन सम प्रिय मम सोई।।
भक्तिवन्त जो नीचहु प्राणी। प्राण से अधिक सो प्रिय मम बानी।।

२ — अर्थ - जो ब्रह्मा भी है और उस में भक्ति यानी चरनों का प्रेम नहीं है तो सब जीवों के समान मुझ को प्यारा है, लेकिन जो कोई कैसा ही नीच हो और उस के मन में भक्ति यानी चरनों का प्रेम है, वह मुझ को अपने प्राणों से भी ज़्यादा प्यारा है।

३ — भक्त जन भक्ति की रीत पल पल पालता है। पल पल पालना क्या है? निस दिन चरन सेव करना यानी यही चाहता है कि चरन मिलें और न सत्तलोक चाहता है, न अनामी पद। और जहाँ कोई दरजा या साध गति हासिल करने की चाह है, वहाँ भक्ति नहीं है, ख़ुद-ग़रज़ी है। इस को परमार्थी ख़ुद-ग़रज़ी कहते हैं। और जो कि भक्त जन है, वह कहता है, सोहं रारं ओअं मुझ को कोई स्थान नहीं चाहिये मैं तो केवल चरन चाहता हूँ।

बिन राधास्वामी मोहिं कछु न सुहावे। चार लोक मेरे काम न आवे।।
ज्ञान ध्यान और जोग बैरागा। तुच्छ समझ मैंने इन को त्यागा।।
मैं तो चकोर चन्द राधास्वामी। नहिं भावे सतनाम अनामी।।

४ — जहाँ भक्ति का बीज यानी तुख़्म है, वहाँ कुछ और ही खेल है और जहाँ बीज नहीं है, वहाँ कुछ और ही फेर है। भक्ति यानी प्रेम के किनके से कारज बनता है।

प्रेम का किनका बख़शिश देव।
सर्व अंग मोहिं अपना कर लेव।।

५ — अगर कोई भूल चूक नहीं है और भक्ति से विहीन है तो सब माफ़ भी, न माफ़ है। और जो कोई भूल चूक है, मगर भक्ति की मुख्यता है तो सब न माफ़ भी, माफ़ है और वही गोद में खेलता है। अगर किसी वक़्त भक्त जन से बड़ी भूल चूक हुई है, जिस से इस की ज़िल्लत होती है, मगर उस का नतीजा परमार्थी है, तो वह बेहतर है। गौतम की नारि जो सिला हुई थी, उस पर जब रामचन्द्र ने अपना चरन छुवाया, तब जागी और अपना भाग सराहा कि अगर यह ज़िल्लत न होती तो चरन कैसे मिलते? जिस को सब सुख हैं और भक्ति नहीं है तो सब धूल है और जिस को सब दुख हैं और भक्ति है, उस को सब आनन्द है।

६ — भक्ति सरन स्वरूप है यानी जहाँ भक्ति है, वहाँ सरन है। कृष्ण महाराज ने भी गीता में अर्जुन को कहा है कि सब कर्म धर्म छोड़ कर एक मेरी सरन दृढ़ करो।

सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वां सर्व पापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुच।।

अर्थ - सब धर्मों को यानी लौकिक और वैदिक धर्मों को छोड़ कर एक मेरी सरन को प्राप्त करो।

७ — अर्जुन शंका करता है कि लौकिक और वैदिक यानी लोक के और वेद के धर्मों को छोड़ दूँगा तो मुझ को पाप होगा, इसका जवाब कृष्ण महाराज दूसरी कड़ी में देते हैं कि—

"मैं तुझ को सब पापों से छुड़ा दूँगा, तू सोच मत कर"

८ — सरन किस को कहते हैं? दूसरे के आधीन होना। उसी को सरनागत कहते हैं। अपने आपे की रक्षा और हिफ़ाज़त के लिये दूसरे का आधीन होना, यह

संसारी सरन है और जहाँ अपने आपे की रक्षा और हिफ़ाज़त से कोई सरोकार नहीं है, सिर्फ़ अपने प्रीतम यानी मालिक से मिलने की चाह है, वह परमार्थी सरन है। मालिक और कहीं नहीं मिलता है, भक्तों के हिरदय में उस का निवास है। अगर उस से मिलना चाहो तो वहाँ जाओ। वह भी प्रेम स्वरूप है, तुम भी प्रेम स्वरूप हो जाओगे।

प्रेम भक्ति की ऐसी महिमा। ग्रहण करो यह अमृत खान।।

हक़ ने पैग़म्बर को समझाया कि मैं।
मिल नहीं सकता ज़मीं असमान में।।
ऊँचे और नीचे ठिकाने में नहीं।
अर्श कुर्सी पै भी मैं रहता नहीं।।
दिल में भक्तों के मैं रहता हूँ सदा।
जो मुझे चाहे तो माँग उन से तू जा।।

नाहम बसामि बैकुण्ठे योगिनाँ हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ती तत्र तिष्ठामि नारदः।।

अर्थ - हे नारद! न मैं बैकुन्ठ में बसता हूँ और न योगियों के हिरदय में निवास करता हूँ, लेकिन जहाँ मेरे भक्त मेरा गुणानुवाद गाते हैं, वहाँ मेरा निवास है।

बचन ७५

प्रीति का इज़हार क्या है

१ — प्रीति का इज़हार याद है। जब तक याद नहीं है, तब तक सच्ची और पूरी प्रीति नहीं है। ऐसी प्रीति कब आती है? जब परमार्थ का असर इस के अन्तर में होता है। अगर कोई सतसंग भी करता है, नेम से

अभ्यास भी करता है, सेवा भी करता है, मगर वह जो अंतर की याद है, वह नहीं है तो कुछ नहीं है। ज़ाहिर है कि अभी परमार्थ का असर नहीं हुआ है। सच्ची प्रीति का निशान यह है कि याद और खटक हरदम बनी रहे। जैसे परदेश में जब कोई जाता है तो चित्त उस का अपने कुटुम्बियों में लगा रहता है, चाहता है कि किसी तरह जल्दी से काम ख़तम करके चला जाऊँ। एक दिन इस को बरस के बराबर नज़र पड़ता है, वैसे ही परमार्थ में भी उस देश के जाने की विरह और खटक अंतर में होनी चाहिये। पहिले उस देश और मालिक की ख़बर इसको होनी चाहिये, बाद अज़ाँ उस से मिलने की विरह और तड़प होगी। तुलसी साहब ने कहा है-

व्याकुल विरह दिवानी, झड़े नित नैनन पानी।
हर दम पीर पिया की खटके, सुध बुध बदन हिरानी।।

पूछो कभी ऐसी विरह तुम्हारे अन्तर में जागी है? कभी रोना भी आया है?

हँस हँस कन्थ न पाइयाँ, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिउ मिले, तो कौन दुहागिन होय।।

२ — जब तक अन्तर में चाह और बासना है, तब तक ऐसी तड़प और याद नहीं आती और तब तक इस की जो परमार्थी कार्रवाई है, शुभ कर्म है, उपासना नहीं है।

३ — वैसे सतसंग में अगर कोई अपने को गुप्त संत और साध कहलावे तो उस को इख़्तियार है, जो चाहे सो करे। मगर जो कि गुप्त संत हैं, वह कभी सतसंग में आते ही नहीं। उन को आने की ज़रूरत नहीं है। उन को तो स्वयं सब अन्तर का भेद मालूम है। उन का काम रचना की सम्हाल करने का है, जीवों के उद्धार करने का नहीं है। कहने का मुद्दा यह है कि ऐसी प्रीति और

याद सिर्फ़ गुरुमुख को होती है, जो कि मालिक का निज अन्स और मुसाहब है। आम जीवों की ऐसी हालत नहीं होती है। वह जब कुछ अरसे सतसंग और अभ्यास करते हैं, तब उनके अन्तर में प्रीति जागती है और जो गुरुमुख हैं, वह सतगुरु के सन्मुख आने से ही फ़ौरन जाग उठते हैं।

४ — आम जीवों को कब ऐसी प्रीति आती है? जब उन को गहरा दुख, गहरा संताप होता है, ज़ेरबारी और लाचारी होती है। हर तरह, तंग, ख़्वार, और ख़स्ता होते हैं, तब संसार से घबराते हैं, तब चित्त को चरनों में लगाते हैं। मगर मन का ऐसा स्वभाव है कि जब तक दुख है, तब तक तो चेतता है और जहाँ दुख गया, फिर भूल जाता है और वही कार करता है।

दुखों से डर कर कुछ कुछ लगता।
गये दुख वोहीं तुरत फड़कता।।

५ — इसलिये जिस पर मालिक की निज दया है, उस पर दुख और संताप का दौरा मुतवातिर चलता रहता है। ज़ेरबारी और लाचारी से हर तरह जब तंग होता है, तब इस की आसा और मनसा संसार से हट कर मालिक की तरफ़ रुजू होती है।

गुरु राखो हिरदे माहीं। तो मिटे काल परछाहीं।।
भोगों की आसा त्यागो। मन्सा तज जग से भागो।।
आसा गुरु शब्द लगाओ। मन्सा गुरु पद में लाओ।।
आसा और मन्सा मोड़ी। मन इन्द्री गुरु में जोड़ी।।
दिन रात रहे गुरु ध्याना। गुरु बिन कोई और न जाना।।
गुरु स्वाँस गिरास न बिसरे। तू पल पल गा गुरु जस रे।।

६ — गुरू नाम मालिक का है। और किसी को गुरु पदवी का अधिकार नहीं है। अंधेरे में जो परकाश करे, वही गुरु है। या तो वह मालिक ख़ुद गुरू है, या जो कि उस से मिल कर तदरूप हो रहा है, वह भी गुरु पदवी

धारन कर सकता है। उस में और मालिक में कोई भेद नहीं है। मालिक आप दया करके जीवों के उद्धार के लिये आये और मौज होगी तो फिर भी आवेंगे। और बानी में जो कहा है।

गुरु प्यारे करें आज जगत उद्धार

तो जगत से मतलब सिर्फ़ यह पृथ्वी लोक नहीं है। जहाँ तक कि माया देश है, सब का उद्धार करेंगे।

७ — परमार्थी दो क़िस्म के होते हैं। एक निर्मल परमार्थी, दूसरे स्वार्थी परमार्थी यानी स्वार्थ से मिला हुआ जिस का परमार्थ है। हुज़ूर साहब को इतनी भी ख़बर नहीं थी कि कितनी खिड़कियाँ स्वामीजी महाराज के कमरे में हैं। ग़रज़ कि सिवाय निर्मल भक्ति के और कोई मतलब न था। और दूसरे लोगों का हाल यह है, मसलन किसी को सतसंग के मुताल्लिक़ कोई कारोबार सुपुर्द किया गया, जब तक कि इख़्तियारात थे तब तक तो बड़ी भक्ति और भाव रहा और जब इख़्तियार छिन गये तब बे-दम और बे-जान हो गये और जो कुछ भक्ति थी, पच पुच गई। ज़ाहिर है कि वह स्वार्थी हैं। निर्मल भक्ति वह है, जिस में कोई लपेट न हो और वही मालिक को पसंद और प्यारी है। और मालिक भी वक़्तन फ़वक्तन इसका इम्तिहान लेता है कि किस क़दर सतसंग के काम में इस की तवज्जह है और किस क़दर अपने स्वार्थ में अटका हुआ है। चूँकि यह सतसंग सच्चा सतसंग है यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल का सतसंग है, वह जैसे तैसे इस के मन को तंग करके और खैंचा-खाँची कर के उद्धार ज़रूर करेंगे।

८ — सवाल - गुरुमुख किस को कहते हैं?

जवाब - गुरुमुख एक ही होता है। वैसे गुरुमुख यानी जिस ने गुरू की मुख्यता मुक़द्दम रक्खी है, वह भी गुरुमुख है। मगर बानी में जो कहा गया है कि—

गुरुमुख की गति सब से भारी।
गुरुमुख कोटिन जीव उबारी।।
कहाँ लग महिमा गुरुमुख गाऊँ।
कोई न जाने किस समझाऊँ।।

वह गुरुमुख और है। वह मालिक की निज अंस है। एक तो भण्डार में से चैतन्य धार आ के नर शरीर में कार्रवाई करती है, उस को अवतार कहते हैं। दूसरी उसकी निज अंस आती है, जिस को पुत्र या निज मुसाहब कहा है। उस को गुरुमुख कहते हैं। वह फ़ौरन अभ्यास करके अन्तर के पट खोल कर संत गति को हासिल करता है। जब रचना नहीं हुई थी, तब कितनी ही सुरतें ग़िलाफ़ में अचेत हालत में पड़ी थीं। जब धार उमड़ी, तब उस ने ग़िलाफ़ को हटाया और जो कि हंस कोटि थे यानी जिन में विशेष चैतन्य था, उन को वहाँ मुक़ीम किया और बाक़ी सुरतें नीचे रचना में आईं, जिनको जीव कहते हैं। मगर जो गुरुमुख है वह मालिक की निज अंस यानी निज ज़ात है। उस का ख़ास अंग है। वह नूरानी हिस्से में से है। इससे और जीवों का उद्धार होता है। प्रेम बानी में जो शब्द है-

मन तू कर ले हिये धर प्यार। राधास्वामी नाम का आधार।।

उस में साफ़ कह दिया है,

राधास्वामी परम पुरुष जग आये।
हंस जीव सब लिये मुक्ताये।
और जीवन पर बीजा डार।।

यानी जो कि हंस हैं, उन का तो उद्धार करते हैं, बाक़ी जीव जन्तु पर बीजा डालते हैं। जब २ संत

अवतार आता है, तब तब ऊँचे देश की सुरतें जैसे त्रिकुटी, सुन्न और सुन्न शिखर की उन के संग आती हैं। उन को और ऊँचे देश में जाने का मौक़ा उस वक़्त ही मिलता है।

९ — ब्रह्म का जो अवतार होता है, उसको कलाधारी कहते हैं। वैसे ही कुल मालिक का जो कलाधारी है, उस को गुरुमुख कहते हैं यानी उस को सर्व शक्ति हासिल होती हैं। वह तो मालिक का रूप है। उसके ज़रिये से सब जीवों को फ़ैज़ पहुँचता है। जो ख़ास करके सतसंग में लगाये गये हैं, उनको धुर धाम तक पहुँचाते हैं। और बाक़ी जो इधर उधर के हैं, उन को सत्तलोक के दीपों में कहीं न कहीं निवास देते हैं।

बचन ७६

प्रेम की महिमा

१ — संत मत प्रेम मार्ग यानी इश्क़ का मत है। बार बार तवज्जह का किसी जानिब रुजू होना, इसको प्रेम कहते हैं। जिस में कि प्रेम है, वह कभी खाली नहीं बैठता। भजन, ध्यान, सुमिरन, पोथी का पाठ, चर्चा करना या सुनना, यही कार करता रहता है। अभ्यास जो बताया गया है, वह भी सहज जोग है। हर कोई कर सकता है। हठ जोग नहीं है मसलन प्राणायाम या मुद्राओं का साधन या नेवली कर्म वग़ैरा। इन में अपने बल पौरुष और पुरुषार्थ पर ज़ोर देते हैं और सुरत शब्द जोग में सहज स्वभाव चित्त की वृत्ति को अन्तर में समेटना और चढ़ाना होता है। इस को पैस्सिव (निर्आपा) होना चाहिये।

काइनेटिक (कारकुन) न होवे यानी अपना आपा न ठाने। शुरू में अभ्यास कर के मन जब थकेगा, तब हारेगा और अपना बल छोड़ेगा, तब दया के आसरे रहेगा। इस तरह जब आपा दूर होगा, तब प्रेम प्रकट होगा।

२ — प्रेम ऐसा हो कि दिन रात उधेड़ बुन लगी रहे। जैसे पागल आदमी बक बक किया करता है, वैसे ही इस की भी हालत होनी चाहिये। संसारी इश्क़ में लोग अपना ख़ाना ख़राब कर देते हैं, परमार्थ में अगर अपना घर उजाड़ नहीं किया तो वह कैसा इश्क़ हुआ? संसारी इश्क़ का असर अन्तःकरण के स्थान पर होता है और परमार्थी इश्क़ का सुरत के घाट पर असर होता है। जैसे मन्दिर दीप बिना, देह नैन बिना, रैन चन्द्र बिना, तरकारी नोन बिना, अन्जन (कल) स्टीम (भाप) बिना, नारी पुरुष बिना, वैसे ही प्राणी प्रेम बिना ख़ाली समझना चाहिये। जैसे सीपी स्वाँत बूँद के लिये समुद्र में तड़पती है, वैसे ही सतसंग रूपी जल में प्रेम बूँद के लिये तड़पना चाहिये। जैसे दियासलाई में मसाला लगा हुआ है, बिना रगड़े रोशनी प्रकट नहीं होती है, वैसे ही पहले प्रेम इस की सुरत में जागना चाहिये, तब प्रेम की धार से मेला होगा मगर पाँच दूत और आपे का पर्दा पड़ा हुआ है। इसलिये प्रेम प्रकट नहीं होता है।

३ — प्रेम दो क़िस्म का है। एक समझौती का, दूसरा ज़ाती यानी एक अन्तःकरण के स्थान का और दूसरा सुर्त के घाट का। जब तक समझौती का प्रेम है, तब तक जो परमार्थी कार्रवाई है, वह शुभ कर्म में दाख़िल है और जब ज़ाती प्रीति जागती है तब उपासना यानी भक्ति शुरू होती है। मन रसों का रसिया है। जैसे संसार में जिस में इस को रस आता है वही काम करता है, वैसे ही परमार्थ में जब इस को रस आता है, तब

परमार्थी कार्रवाई ख़ुशी और उमंग से करता है। प्रेम सार यानी तत्व वस्तु है। और सब यानी जोग बैराग ज्ञान ध्यान लवाज़में हैं, जैसे वस्त्र भूषण आराइश के लिये होता है। प्रेम मग़्ज़ है। और सब छिलका हैं। मींगी से ख़ाली हैं। प्रेम अनाज और दरख़्त का मूल यानी जड़ है। और सब भूसा और डालियाँ हैं।

४ — जैसे संसारी भोग भोगने के वक़्त जो कोई मानै और हारिज होता है, वह बुरा लगता है, बल्कि दुश्मन नज़राई पड़ता है, वैसे ही तन मन इन्द्रियाँ जो कि पर्दा हैं, प्रेमी को दुश्मन नज़राई पड़ती हैं। सुरत जब निर्मल होती है, तब प्रेम प्रकट होता है। अभी अगर प्रेम नहीं है, तो प्रेम की तसवीर संत पंथी को पहिले मिलती है। फिर तो जैसे पपिहा स्वाँति बूँद के लिये ''पिउ प्यारा पिउ प्यारा'' पुकारता है, वैसे यह भी निस दिन नाम का रटन करता है। ज़बरदस्ती और खैंचातानी फ़िज़ूल है। जो कुछ होता है, प्रेम से होता है। चंडूबाज़ के पास जो कोई बैठता है, वह भी चंडूबाज़ हो जाता है, वैसे ही प्रेमी और भक्तों का संग करने से, यह भी प्रेमी हो जाता है।

५ — संसारी मुहब्बत को मोह कहते हैं और परमार्थी मुहब्बत को प्रेम कहते हैं। संसारी प्रीति मन की है और परमार्थी सुरत की है। प्रेम गोया पंख है उड़ने के लिये। जैसे पतंग डोरी के आधार पर उड़ता है, वैसे ही सुरत प्रेम की धार के ज़रिये चढ़ती है। जैसे कहानी में सुना है कि तोता आशिक़ माशूक़ की ख़बर लाता है और सुनते ही बिना देखे और मिले इश्क़ पैदा होता है, वैसे ही सतगुरु से राधास्वामी दयाल की ख़बर सुनते ही इश्क़ लगना चाहिये। जब तक कि ऐसा इश्क़ नहीं है, कार्रवाई करते रहना चाहिये। जब सुरतवंत होगा यानी संस्कार

जागेगा और भाग बढ़ेगा, तब एक रोज़ इस में भी ऐसा प्रेम पैदा हो जायगा।

सुरतवन्त अनुरागी सच्चा, ऐसा चेला नाम कहा।
गुरु भी दुर्लभ चेला दुर्लभ, कहीं मौज से मेल मिला।।

६ — संत मत में प्रेम की महिमा है। प्रेम से विकार सब दूर होते हैं, जैसे एक चिनगी से सब घास का ढेर भस्म हो जाता है। एक प्रेम हो तो फिर भजन का भी सोच न करे।

प्रेम अग्नी अपने हिरदे बालिये। फ़िक्र भजन और बन्दगी का जालिये।।

अगर रहनी गहनी और करनी अच्छी है, प्रेम नहीं है तो भी ख़ाली और धूल है।

प्रेम बिना सब करनी फीकी। नेकहु मोहिं न लागे नीकी।
घट धुन रस दीजे।।

जोग वैराग ज्ञान सब रूखे। यह रस उन में दीखे न ताय।।
बड़ भागी कोइ बिरला प्रेमी। तिन यह न्यामत मिली अधिकाय।।

हुई मैं राधास्वामी चरनन दास। ज्ञानी और जोगी खोदें घास।।

७ — ऋषि मुनि सब अहंकारी थे। प्रेम से ख़ाली थे। इसलिये दरबार से महरूम रह गये। प्रेम ऐसा होना चाहिये, जैसे माता का पुत्र से, चकोर का चन्द्रमा से, हिरन का नाद से, पतंग का दीपक से, मछली का नीर से, कामी का कामिन से, पपीहा का स्वाँति से और साँप का मुरली की आवाज़ से। ऐसी प्रीति जब गुरू से हो, तब कुछ अन्तर में चाल चले।

माता को जस पुत्र पियारा। और कामी को कामिन जान।
मछली को जस नीर अधारा। चात्रिक को जस स्वाँति समान।।
ऐसा गुरु प्यारा जब होगा। तब कुछ आगे पन्थ चलान।
कहना था सो सब कह दीन्हा। अब तू चाहे मान न मान।।

८ — अन्तःकरण का जो प्रेम है, उस का जोश ख़रोश बहिरमुख है। वह क़ाबिल एतबार के नहीं है। और सुरत के घाट का जो प्रेम है, वह अन्तरमुख और गुप्त है और दिन दिन अफ़ज़ूँ होता जाता है। जैसे नशेबाज़ होते हैं कि दिन दिन नशा बढ़ता जाता है, नशे में चकनाचूर, मख़मूर और मसरूर होते जाते हैं, ख़ुमार उतरता ही नहीं है, वैसे ही जिस ने प्रेम का प्याला पिया है, वह आठों जाम उसी रस में महव, मगन और सरशार रहता है।

पी ले प्याला हो मतवाला, प्याला नाम अमीं रस का रे।।

प्रेम प्रेम सब कोइ कहे, प्रेम न चीन्हे कोय।।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय।।

९ — और जैसे यरक़ान यानी कँवल की बीमारी वाली आँखों को सब पीला नज़राई पड़ता है और नशेबाज़ को दरख़्त वग़ैरा झूमता नज़र पड़ता है, वैसे ही प्रेमी को हर जगह मालिक नज़राई देता है।

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है

बजुज़ मस्ती व मदहोशी दिगर चीज़े नमी दानम

१० — पहले विरह, पीछे प्रेम आता है। विरह में तपिश और प्रेम में शीतलता है।

विरह जलन्ती देख कर, साईं आये धाय।
प्रेम बूँद सों छिड़क के, जलती लई बुझाय।।

विरह जलन्ती मैं फिरूँ, मोहिं विरह का दुक्ख।
छाँय न बैठूँ डरपती, मत जल उट्ठे रुक्ख।।

जब प्रेम आवे, ऐसी चाह हो कि प्रेम बढ़ता ही जावे, शांति न आने पावे।

साध सँग कर सार रस, मैंने पिया अघाई।
प्रेम लगा गुरु चरन में, मन शांति न आई।।
तड़प उठे बेकल रहूँ, कस पिया घर जाई।
दर्शन रस नित नित लहूँ, गहे मन थिरताई।।

अगर प्रेम की धार न हो तो किनका ही बख़्शिश होवे, उसी से काज सरेगा।

प्रेम का किनका बख़्शिश देव। सर्व अंग मोहिं अपना कर लेव।।

११ — कहने का मुद्दा यह है कि जिस पर दया है, उस को प्रेम की दात मिलती है। इस के जतन से कुछ नहीं होता है। जतन मन का काम है। सुरत की कार्रवाई प्रेम की है। मुन्तज़िर रहना चाहिये। सब को एक रोज़ प्रेम की बख़्शिश होगी। जैसे दरबार में बादशाह के सन्मुख अगर कोई नज़राना ले जाता है तो उस के बदले बादशाह इस को ज़्यादा इनाम इकराम देता है, वैसे ही जो कोई मालिक के चरनों में बिला नाग़ा पुकार प्रार्थना करता रहता है और सच्ची चाह अपने जीव के कल्याण की रखता है तो मालिक उस को प्रेम की दौलत बख़्शिश करता है। इलाज इस का सतसंग है। जिस क़दर बन पड़े, तवज्जह के साथ सतसंग करना चाहिये। एक रोज़ ज़रूर प्रेम की बख़्शिश होगी।

बचन ७७

जौहर यानी प्रेम और आपे की कार्रवाई का फ़र्क़

१ — फूल इस बात का मोहताज नहीं है कि लोग समझें कि उस में ख़ुशबू है। जोति यह नहीं चाहती कि

औरों को ख़बर हो कि मैं प्रकाशित हूँ। दरख़्त जिस में मेवा इस क़दर ज़ियादा है कि उस की डालियाँ नीचे झुक जाती हैं, वह नहीं चाहता है कि लोगों को मालूम होवे कि मैं फलदार हूँ। ऐसे ही जिस में कि जौहर यानी प्रेम है, वह इस बात का ख़्वास्तगार नहीं होता कि आलम में आशकारा होवे कि मुझ में जौहर है। वह अपने में आप मगन है। जैसे मालिक अपने में आप सरशार और मगन है, वैसे ही उस की निज अंश जिस में जौहर है, अपने प्रेम दीनता, ग़रीबी और रस में महव और मसरूर है। अपने औसाफ़ का इज़हार आप नहीं करता, अलबत्ता फूल की ख़ुशबू जब भरपूर होती है, तब आप से आप औरों पर असर पहुँचता है। इसी तरह जिस में कि जौहर यानी प्रेम है और वह जब भरपूर होता है, तब उस की सुगन्ध उड़ती है और लोग आप से आप दौड़ते चले आते हैं।

२ — जैसे चुम्बक जब हलक़ा बाँधता है तो लोहा वग़ैरा जो उसके क़रीब हैं आप से आप उन पर कशिश होती है और चुम्बक के पास खिंचते जाते हैं। इस तरह जिस में कि जौहर है, जब उसका हलक़ा बँधता है, तब बग़ैर किसी बाहर के बहाव बिखेर और फैलाव के वह अपनी तरफ़ अधिकारी जीवों को खैंचता है यानी वह ख़ुद चेष्टा नहीं करता है, क़ुदरती तौर पर उस में कशिश है, जिस से जीव खिंचते चले आते हैं। और जहाँ कि अपना जतन कोशिश और महिमा का इज़हार है, वहाँ आपे की कार्रवाई है, जौहर की नहीं है। फूल जब खिलता है, मधुकर और शहद की मक्खी आप से आप सुगन्ध लेने आते हैं। चिराग़ जहाँ जलता है, पतंग अज़-ख़ुद दौड़ते चले आते हैं। फूल और चिराग़ उन को नहीं बुलाते हैं। वैसे ही जिस में कि जौहर है, वह लोगों को नहीं बुलाता

है और न ख़ातिरें करता है, मगर जीव आप से आप खिंचते चले आते हैं।

३ — जहाँ नुमाइश है वहाँ आपा है और वह काल की कार्रवाई है। जो कि समझदार हैं उन को नुमाइश से नफ़रत आती है। बाज़े लोग अपने हसब नसब और गुन की महिमा और तारीफ़ आप करते हैं और इस से उन को तसकीन आती है। ऐसे जीव निहायत ओछे पात्र हैं और समझना चाहिये कि आपे की गिरफ़्त में हैं। और जिस में कि जौहर है, उस में नम्रता और दीनता है। जिस क़दर बन पड़ता है, अपने औसाफ़ को छिपाता है। जैसे लोग धन हीरा जवाहिर वग़ैरा औरों से छिपाये रखते हैं, वैसे ही अपने गुणों को भक्त जन छिपाये रखता है। यह जौहर और आपे की कार्रवाई का फ़र्क़ है और यही इस चर्चा का मतलब है।

४ — जब किसी की तारीफ़ की जाती है तो अक्सर लोग मगन होते हैं और अन्तर में फूल जाते हैं और ख़ुशामद करने वाले को सलाम करते हैं कि आपने क़दर-दानी की, लेकिन जो कि भक्त जन हैं, उन की जब कोई तारीफ़ करता है तो मुँह मोड़ लेते हैं, बल्कि रो देते हैं और सराहने वाले को अपना दुश्मन समझते हैं। भक्त जन के लिये तो यह हुक्म है।

गुरु की ताड़ और मार सह धर कर पियार।
मूर्खों की अस्तुती पर ख़ाक डार।।

* * * * * *

बचन ७८

अर्थ शब्द

''आज आई बहार बसन्त''

आज आई बहार बसन्त, उमँग मन गुरु चरनन लिपटाय।।
दया धार गुरु जग में आये, भक्ती की फुलवार खिलाय।।
प्रेम बदरिया वर्षा लाई, नइ नइ धुन घट शब्द सुनाय।।
सभी सुहागिन खेलन आईं, गुरु सँग अचरज फाग रचाय।।
तन मन धन की धूल उड़ावत, प्रेम प्रीति का रँग घुलाय।।
गुरु चरनन पर बारम्बारा, डार डार रँग हिये हरखाय।।
भक्ति दान फगुआ लिया गुरु से, इक इक अपना काज बनाय।।
राधास्वामी दीन दयाल कृपाला, सब को लिया निज चरन लगाय।।

बसंत यानी जहाँ अन्त में जाकर बसना है, उस के बाहर का समा वह है, जब कुल मालिक सतगुरु रूप धर कर जग में आते हैं और यह उन के चरनों में उमंग के साथ लगता है। जैसे कि बहार में फल और फूल होते हैं, इसी तरह भक्ति के उसी वक़्त फल और फूल खिलते हैं और जैसे बहार में वर्षा होती है, इसी तरह जब सतगुरु आते हैं, तब अन्तर में प्रेम की वर्षा होती है और नई नई शब्द की धुनें सुनाई देती हैं। जैसे दुनिया में जिस का पति होता है, वह सुहागिन कहलाती है, ऐसे ही जिन को संत सतगुरु परम पति मिले, वह सब सुहागिनें यानी प्रेमी सुरतें उन के चरणों में खेलती हैं और अचरज रूपी फाग उन के साथ रचाती हैं यानी भक्ति का विलास करती हैं। जैसे होली में धूल उड़ाई जाती है, वैसे तन मन धन जो धूल के समान हैं, उन को भक्त जन उड़ाते हैं यानी तन मन धन को सतगुरु के चरणों में निछावर करते हैं। और जैसे रंग से होली खेल कर फगुआ लिया जाता है, वैसे ही भक्त जन प्रेम रूपी रंग घोलते हैं और

गुरु चरणों में डाल कर मगन होते हैं यानी उन के चरणों में प्रेम प्रीति कर के मगन होते हैं और फगुआ यानी भक्ति दान ले कर सब कोई अपना काम बनाते हैं। ऐसी होली जो कोई सतगुरु के साथ खेलता है यानी प्रेम प्रीति करता है, उस को राधास्वामी दयाल अपने निज चरणों में मिला देते हैं।

बचन ७९

सरन की महिमा

१ — सरन का दर्जा बड़ा भारी है। बड़े भाग उनके हैं, जिनको सरन प्राप्त है। जब तक बंधन है, तब तक जीव सरन पूरे तौर से ले नहीं सकता है। बंधन ही से दुख तकलीफ़ उपजती है और जब कर्म काटे जाते हैं, और सफ़ाई होती है, तब जीव सरन को भूल जाता है और अपना बल पौरुष चलाता है। इसको चाहिये कि अपने को दीन, हीन, नीच, ना-लायक़, अबल, आधीन, मन माया में गिरफ़्तार, लिपटा और सना हुआ समझे और पछतावा और अफ़सोस करे। जब तक कि आपा मौजूद है, तब तक सरन नहीं है। आपा यानी मन का मान इस का निकालना बड़ा मुश्किल है। जैसे छिपकली की दुम कट जाने पर भी जो ज़िन्दा रहती है या रस्सी जल जाती है तो भी ऐंठन उसकी नहीं जाती है, वैसे ही मन के और अंग मर जाते हैं, फिर भी यह मान अंग नहीं मरता है। इसलिये राधास्वामी दयाल शुरू ही से मन को मसल मसल के, रगड़ रगड़ के, खूँद के, रूँद के, ज़ेर और ज़लील करके मारते हैं। जैसे साँप को गरदन से पकड़ते और मारते हैं, इसी तरह मन का भी सीस यानी

आपा पहले काटते हैं, क्योंकि यही सब विकारों का मूल यानी जड़ है।

२ — जब यह सरन लेता है तब इस को मालूम होता है कि जो कुछ होता है, राधास्वामी दयाल की मौज से होता है और कहता है—

जो कुछ करें करें राधास्वामी।
और न कोई दृष्टी आत।।

३ — मगर सिर्फ़ ज़बानी कहने से कुछ नहीं होता। चाहिये कि सरीहन इस को नज़राई पड़े कि मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ। सब उन्हीं के हुक्म से होता है। राधास्वामी दयाल जिस पर निज दया फ़र्माते हैं, उस का बल पौरुष सब छीन लेते हैं और जो अंग जिस में ज़बर है, वही प्रकट करके सफ़ाई करते हैं, मसलन कोई क्रोधी है या कामी है या किसी में ईर्षा और विरोध प्रबल है तो उसी अंग में ज़्यादा बरतावा कराके उस अंग को प्रकट करते हैं और बाद इस के जो रंज अफ़सोस और पछतावा होता है, उस से इसका मसाला ख़ारिज होता है और सफ़ाई होती जाती है और यह समझता है कि मैं पहले से भी गया गुज़रा हो गया, मगर असल में दया है यानी सफ़ाई हो रही है।

४ — भक्त जन जिसको कि परख पहिचान है, अपने तईं आपे और कर्म में गिरफ़्तार देखता है। हरचन्द दुख तकलीफ़ उठाता है, मगर सरन का सहारा और आधार रखता है। वह जब और लोगों को इसी तरह आपे और कर्म की क़ैद में मुबतिला देखता है, तब उन पर भी दया भाव लाता है कि किसी सूरत से बिचारे सरन में आ जावें और काल कर्म की ग़िरफ़्त और पंजे से निकल जावें। यह चाह और उस की कार्रवाई आपे में दाख़िल

नहीं है। कहने का मुद्दा यह है कि सरन का दरजा भारी है। अगर कोई अभ्यास भी करता है, सुर्त मन भी गगन में चढ़ाता है, मगर सरन नहीं है तो दरबार से ख़ारिज है। जैसे ब्रह्म है जो तीन लोक का नाथ है, मगर चूँकि उस को सरन सतगुरु की प्राप्त नहीं है, इसलिये दरबार में दख़ल पाने से महरूम है।

कौन करे आरत सतगुरु की।।टेक।।
ब्रह्मादिक सब तरस रहे हैं, मिली नहीं यह पदवी।।
कोट तेतीसों राग बैरागी, इन्द्र मुनिन्दर भटकी।।
सतगुरु बिना खोज नहिं पाया, करम भरम बिच अटकी।।
बड़े भाग जानो अब उनके, जिन को सरन परापत गुरु की।।

५ — निर-आपा और निर-अहंकारी जब होगा, तब यह जीव सच्ची सरन लेगा और तब मालिक की परख पहिचान आवेगी और उस को हाज़िर नाज़िर समझेगा और जैसे कोई बादशाह की सरन लेता है तो किसी की परवाह नहीं करता, इसी तरह जब यह राधास्वामी दयाल की सरन लेता है, तब काल कर्म से निडर हो जाता है। अपना भाग सराहता है और मगन होता है।

गुरु सरन आज मैं पाई। मेरे आनन्द अधिक बधाई।।

६ — जब तक कि कर्म नहीं चुका है, तब तक सरन पूरी नहीं है यानी जिस क़दर जिस के काल कर्म का कर चुका हुआ है, उसी क़दर उस की सरन है और जितना बाक़ी है, उतनी ही सरन में कसर है।

सतगुरु सरन गहो मेरे प्यारे। कर्म जगात चुकाय।।

कोई गहो गुरू की सरन सम्हार।

यह शब्द बड़े काम के हैं और इन में इस चर्चा का सार है।

* * * * * *

बचन ८०

पतिव्रत यानी गुरुमुखता का वर्णन

१ — पतिव्रता स्त्री की मिसाल गुरुमुख से सर्वांग करके पूरी और ठीक होती है। जैसे जो पतिव्रता स्त्री है, उसके पति की जो ख़्वाहिश होती है, सो उस की भी होती है और अपने दुख सुख का वह कुछ भी ख़याल नहीं करती है। जिस में उस का पति राज़ी, उसी में वह भी राज़ी होती है और हर वक़्त पति की याद उस के हृदय में बनी रहती है, ऐसे ही परमार्थ में जो गुरुमुख है, जो मालिक की मौज होती है, वही उसकी भी ख़्वाहिश होती है और उसी में वह राज़ी रहता है, कभी दुख में घबराता नहीं है, बल्कि अपने दुख सुख की ख़बर भी नहीं रखता और हर वक़्त मालिक की याद में रहता है और उलटी सुलटी हालत में ख़ुशी के साथ मौज से मुवाफ़िक़त करता है। ऐसा नहीं कि लाचारी से मौज से मुवाफ़िक़त करे और दिल में ना-पसंद हो। अगर ऐसा है तो उस का दूसरा दरजा है।

२ — अगर किसी स्त्री के पास ज़र जेवर है और हर तरह का उस को पति का सुख और आराम है, इसलिये वह पति के मरज़ी पर चलती है और जब ज़रा सा उस में फ़रक़ पड़ा, तब नाराज़ होती है तो यह कोई पतिव्रत नहीं है, ऐसे ही अगर किसी के पास जब तक दुनिया का सामान वग़ैरा मौजूद है, तब तक वह भक्ति करता है और शुकराना अदा करता है और जब ज़रा सा उसमें फ़र्क़ पड़ा, तब भूल गया और भक्ति में ढीला हो गया और वक़्त तकलीफ़ के मौज से ना-मुवाफ़िक़त करने लगा तो यह गुरु-व्रत नहीं है।

३ — जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति के घर में रहती है और जो कुछ सामान पति ने उस के लिये मौजूद किया है, उस में राज़ी रहती है उसी तरह जो गुरुमुख है, उस के लिये यह संसार गोया मालिक का घर है, उस में से जो कुछ थोड़ा बहुत मालिक ने उसको दिया है, उस में राज़ी रहता है, कभी और ज़्यादा होने की चाह नहीं उठाता है। गुरुमुख मालिक का निज अंस है। उसकी गति भारी है। उसके संग बहुतेरे जीवों का उद्धार हो जाता है।

गुरुमुख की गति सब से भारी। गुरुमुख कोटिन जीव उबारी।।
कहँ लग महिमा गुरुमुख गाऊँ। कोई न जाने किस समझाऊँ।।

४ — जैसे कोई स्त्री विभचारिनी होती है, वैसे ही जो कि मत में शरीक होकर और उपदेश लेकर फिर छोड़ जाते हैं, वे मनमुख हैं। बाज़ की स्त्री ऐसी लड़ाकी होती है कि वह उसके ख़ौफ़ से सतसंग छोड़ देता है। जैसे एक शख़्स था, जोरू के डर से भाग गया और सतसंग भी उसने छोड़ दिया। ऐसे जीव मनमुख कहलाते हैं यानी मन की समझौती पर चलते हैं। वे देर अबेर ज़रूर धोखा खावेंगे और गिरते पड़ते रहेंगे। सतसंगी को चाहिये कि जिस वक़्त रूखा फीकापन दुख और तकलीफ़ उसको हो उस वक़्त अपनी परख करे कि किस क़दर प्रीति प्रतीत उसकी मालिक के साथ है और जो गुरू के कहे में चलेगा, वही महल में दख़ल पावेगा।

महल माहिं धस जाय, गुरुमुख को रोके नहीं।
मनमुख भटका खाय, चढ़ उतरे गिर गिर पड़े।।
ठीका ठौर न पाय, क्योंकर गुरु समझावहीं।
मन मत छोड़े नाहिं, गुरु को दोष लगावहीं।।

५ — बग़ैर गढ़त के यह मन सीधा हरगिज़ नहीं होगा और गढ़त ज़रूर होगी। अगर अभी बाज़ संसारी

चीज़ों को छोड़ने में तकलीफ़ होती है, तो मौत के वक़्त जब सर्वांग करके यहाँ से अलेहदगी होगी, तब क्या हाल होगा? इसलिये राधास्वामी दयाल जीवों की गढ़त ज़रूर करेंगे यानी मौत के पेश्तर सफ़ाई की जायगी। कुल चाहों को दूर किया जावेगा। तब क़ाबिल ऊँचे देश के ठहरने के होगा। जीव अकसर भूल जाता है, फिर फिर गिरता है, संसारी भोगों में लिपटता है, मगर राधास्वामी दयाल दया करके संभालते हैं और जो गढ़त और सफ़ाई न की जावे, ऐसे ही सतसंगियों को ऊँचे देश में चढ़ा दिया जावे तो और लोग शिकायत करेंगे कि हम ने क्या क़सूर किया जो हम को चढ़ाया नहीं जाता, इसलिये सब की गढ़त ज़रूर की जावेगी और गढ़त के कई नमूने हैं, जैसे मामूली पत्थर को स्थूल औज़ारों से गढ़ते हैं और जो संग-मरमर का पत्थर है, उस को सूक्ष्म औज़ारों से, और सोना या हीरे के लिये और ज़्यादा नाज़ुक औज़ार इस्तेमाल करते हैं। ऐसे ही कर्मों के अनुसार हर एक की गढ़त होती है। जो कि भक्तजन हैं, उन को ज़्यादा तकलीफ़ नहीं होती है और जिस क़दर भक्ति पक्की होती जावेगी, उतना ही उन का आपा दूर होगा और सुरत रूपी आपा क़ायम होता जावेगा।

६ — परमार्थियों का अगर किसी वक़्त आपस में लड़ाई झगड़ा भी होता है तो उस में से ज़रूर कोई न कोई परमार्थी फ़ायदा निकलता है, मसलन अगर कोई लड़ कर सतसंग छोड़ जावे तो जैसे बाग़ की घास को जब माली निकाल देता है, तब जो और पौधे हैं, उनकी परवरिश ज़्यादा होती है, उसी तरह ऐसे लोगों के छोड़ जाने से सतसंग की रौनक़ बढ़ती है। भक्त जन अगर किसी वक़्त भूल चूक भी करता है तो पछताता है, झुरता है, इस से चैतन्यता बढ़ती है और फिर वह आइन्दा

होशियारी के साथ अपना बरताव करता है। जब उस की पूरी तरह से गढ़त और सफ़ाई हो जाती है, तब उसके मस्तक में शब्द रूपी हीरा रक्खा जाता है। जैसे कि हीरा जिस सन्दूक़ में रक्खा जाता है, उस सन्दूक़ की ज़्यादा हिफ़ाज़त के वास्ते उस पर मख़मल वग़ैरा का ग़िलाफ़ चढ़ा देते हैं, इसी तरह जिस घट में कि शब्द रूपी हीरा रक्खा जाता है, उसकी हर तरह से रक्षा और हिफ़ाज़त होती है। कोई दुख या तकलीफ़ उस को छू नहीं सकती। असल में दुख अपनी कसरों से होता है।

कसर सब मन की है अपने।
संग में दुक्ख नहीं सुपने।।

७ — जैसे पतिव्रता स्त्री और जीवों से लाज करती है, कभी दूसरे का मुँह नहीं देखती है और अपना मुँह छिपाये रहती है, ऐसे ही गुरुमुख भी अपने को काल कर्म से छिपाये और हटाये रखता है यानी विकारी अंगों में नहीं बर्तता है।

मैं गुरुबरती राधास्वामी के चरन की।
लाज रखो मेरी काल से अब की।।

नैनों अन्तर आव तू, नैन झाँप तोहि लेउँ।
ना मैं देखों और को, ना तोहि देखन देउँ।।
पतिवर्ता के एक तू, तुझ बिन और न कोय।
आठ पहर निरखत रहे, सोई सुहागिन होय।।

पतिवर्ता पति को भजे, पति भज धरे विश्वास।
आन दिशा चितवे नहीं, सदा जो पिय की आस।।

और जो विभिचारन है यानी मन के विकारों में जिसका बरताव है, उस की बात दूसरी है।

नारि कहावे पीव की, रहे और संग सोय।
जार सदा मन में बसे, ख़सम ख़ुशी क्यों होय।।

विभचारन विभचार में, आठ पहर हुशियार।
कहें कबीर पतिवर्त बिन, क्यों रीझे भरतार।।

८ — जैसे यहाँ सतसंग में जो औरत लड़के वाली है, जब लड़का रोता है, तब निकाली जाती है, ऐसे ही सत्तलोक से भी सुरतें जिनमें कि माया की मिलौनी थी, जब वह प्रकट हुई, तब निकाली गईं, क्योंकि वहाँ के हंसों के आनन्द में फ़रक़ पड़ता था, ऐसे ही यहाँ सतसंग में लड़कों के रोने से सतसंग का जो रस और आनन्द है उस में फ़र्क़ पड़ता है। औरतों को जब सतसंग का हर्ज आप मालूम पड़ेगा, तब लड़कों से उन को बड़ी नफ़रत आवेगी, बल्कि उनको अपना दुश्मन समझेंगी और मोह एक दम टूट जायगा। औरतों को लड़कों में बड़ा मोह होता है। जिसके लड़का नहीं है, वह आज़ाद है। और जो मर्द हैं, वह बड़े मज़े में हैं, पर उनमें भी जो संसारी गुनावन उठाते रहते हैं, उनको सतसंग का रस नहीं आता है।

९ — पतिव्रता का दृष्टान्त जो ऊपर दिया गया, सर्वांग करके गुरुमुख के लिए पूरा है। एक शख़्स ने कबीर साहब से पूछा कि गुरुमुख किस को कहते हैं। कबीर साहब ने कहा कि अच्छा हम तुम को दिखाते हैं और अपनी ढरकी (कपड़ा बुनने का औज़ार) पीठ पीछे छिपा कर अपनी स्त्री लोई को कहा कि ढरकी तू ने कहाँ रक्खी है? ढूँढ़ ला। लोई ने हरचन्द देखा था कि अभी ढरकी उनके हाथ में थी, पर ख़याल किया कि वह कभी असत्य नहीं कहेंगे, ज़रूर मेरी चूक होगी, सो ढूँढ़ने लगी। कबीर साहब ने कहा, रात के वक़्त अंधेरे में कैसे तुम को नज़र आयगी, बत्ती जला के देखो। इस पर (अगरचे दिन था) वह बत्ती जला कर ढूँढ़ने लगी, तब ढरकी मिल गई। कबीर साहब ने उस शख़्स से कहा,

इसी का नाम गुरुमुख है। जो कुछ गुरू कहें उसी को सत्य समझे। उलटी सुलटी हालतें मौज से इस की परख करने के लिये होती हैं। इससे यह मन पक्का होता है।

१० — दृष्टांत २ - एक स्त्री की बात है कि उसका पति कुष्ठी था और वह पतिव्रता थी। और तन मन धन से पति की सेवा करती थी। एक रोज़ उसके पति ने किसी वेश्या को देखा और उस पर मोहित हो गया। अपनी स्त्री से कहा, मुझे इस वेश्या के घर ले चल, स्त्री बड़ी ख़ुशी से, उस को अपनी चड्ढ़ी पर चढ़ा कर ले गई। दुनिया की स्त्रियाँ तो ऐसी बात पर अपनी जान दे देती हैं, लेकिन उसने तो तन मन धन अपने पति के अर्पण किया था, सो बहुत ही ख़ुशी से उस की आज्ञा मानी। जब वेश्या के घर पहुँची, तब मालिक उस पर प्रसन्न हुआ और अन्तर में उस को प्रेरना हुई कि जो कुछ चाहे वह माँग ले। स्त्री ने कहा कि जो मेरे पति की इच्छा, वह मेरी भी इच्छा है। तब पति को प्रेरना हुई। उस ने कहा जो मेरी माशूक़ यानी वेश्या की इच्छा, वही मेरी इच्छा है। फिर वेश्या को प्रेरना हुई कि जो कुछ चाहे, माँग। उसने ख़याल किया कि मेरा तो यार सारा शहर है, सब का उद्धार होवे तो अच्छा है। बस उसकी माँग पर फ़ौरन सारे शहर का उद्धार हुआ। अब देखिये सिर्फ़ एक भक्तिन के परताप से सारा नगर तर गया, तो जो मालिक के प्रेमी जनों से प्रीति का नाता जोड़ेगा और उनका संग करेगा तो उद्धार कैसे न होगा?

११ — कहने का मुद्दा यह है कि सुख में सुखी न हो और दुख में दुखी न हो, मौज से मुवाफ़िक़त करो, मेहर का भरोसा रक्खो, संसार से उपराम रहो, प्रेम प्रीति

चरणों में बढ़ाते रहो, आसा बासा निज देश की दृढ़ रक्खो, इस देश को छोड़ो, उस देश में पहुँचो। यही सच्चा परमार्थ है और यही सच्चा लाभ है।

बचन ८१

गुरु चरन धूर हम हुइयाँ।
तुम सुनो हमारी गुइयाँ।।
क्या क्या सुख कहूँ गुसइयाँ।
बिन भाग नहीं कोई पइयाँ।।

१ — भक्त जन कहता है कि मैं मालिक के चरनों की धूर हूँ। हे सहेलियों! तुम मेरी बात सुनो। उस के चरन रस का जो सुख और आनन्द है, उसका किस तरह वर्णन करूँ? बिना भाग के कोई उस चरन रस को नहीं पा सकता है। जब तक आपा है, तब तक चरनों की धूर नहीं हो सकता। जहाँ आपा है, वहाँ यह मुजस्सिम और मुंजमिद है। जब आपा टूटेगा, तब मन चूर होगा, और तब ही चरन धूर होगा। और जब चरन धूर हो जावेगा, तब हर हालत में चाहे उलटी हो, चाहे सुलटी, मालिक की मौज अनुसार बरतेगा और उस में राज़ी रहेगा। और जब अन्तर का रस आवेगा, तब निहायत ही मगन हो जायगा और मालिक का शुकराना अदा करेगा और तन धन जो कुछ यहाँ के पदार्थ हैं सब चरनों पर क़ुरबान और न्यौछावर कर देगा और फिर इस तरफ़ के भोगों पर निगाह भी नहीं करेगा। दुनिया में भी जो कोई मदद करता है, तो लोग उस के शुकर-गुज़ार होते हैं और वह शख़्स उन को प्यारा लगता है, इसी तरह

अन्तर में जब सहारा मिलता है और परमानन्द प्राप्त होता है, तब मालिक का शुकराना अदा करता है। और उलटी सुलटी हालत जो कुछ आयद हो, उस में रंज नहीं करता, बल्कि उस में अपना नफ़ा समझता है और यक़ीन करता है कि मेरा प्रीतम जो कुछ करेगा, उस में फ़ायदा ही होगा, बल्कि दुख और तकलीफ़ जब होती है, तब और ज़्यादा प्रीति मालिक के चरनों में उसकी पक्की होती है।

२ — दुनिया में भी जहाँ जिसकी सच्ची मुहब्बत है, वहाँ दुख और तकलीफ़ जो कुछ पेश आती है, उसको ख़ुशी से झेलते हैं। कभी दुखी नहीं होते। बल्कि प्रीतम से जो कुछ तकलीफ़ मिलती है, उसको वह ग़नीमत समझते हैं और जिस क़दर उससे मिलने के लिये तकलीफ़ उठाते हैं, उतनी ही ज़्यादा प्रीतम उनसे प्रीति करता है। ऐसे ही यहाँ भी जिस किसी की मालिक से मुहब्बत है, उस पर उलटी सुलटी हालत जो कुछ गुज़रती है, उसमें वह मगन होता है। कभी घबराता नहीं है। अगर घबराया तो प्रीति में कसर है। और जिसकी सच्ची प्रीति है, उसके हिरदय में दिन रात मालिक का प्रेम छाया रहता है। दुनिया का काम काज करते वक़्त भी थोड़ा बहुत प्रेम बना रहता है और जिस वक़्त कि काम से फ़ारिग़ होके चरनों में चित्त जोड़ता है, फ़ौरन प्रेम रंग में रंगीन और सरशार हो जाता है। जैसे लड़के के हिरदय में हर वक़्त अपनी मइया की मुहब्बत छाई रहती है, जिस वक़्त खेल कूद करता है उस वक़्त थोड़ा बहुत भूल भी जाता है, मगर उसके हिरदय में मुहब्बत की डोरी लगी हुई है, जिस वक़्त मइया की याद आई, फ़ौरन उसकी तरफ़ दौड़ता है और जाकर गोद में लिपट जाता है और चिपट जाता है। ऐसी प्रीति मालिक से तब

आवेगी, जब चरन धूर होगा और धूर तब होगा, जब मन चूर होगा और मन चूर तब होगा, जब आपा दूर होगा और जब आपा दूर होगा, तब यह सूर होगा, तब तूर सुनेगा, नूर झलकेगा, मूर से मिलेगा और पूरे पद को जाके प्राप्त होगा।

३ — चरन सहसदल कँवल में हैं। जब यह वहाँ पहुँचे, तब चरन धूर होवे। जैसे पानी को आग देते हैं, तब भाप और गैस रूप होकर ऊपर चढ़ता है, ऐसे ही मन का जहाँ थाना है वहाँ उसको भी जब विरह की आग लगेगी, तब सूक्षम होकर ऊपर की तरफ़ चढ़ेगा और जाकर सहसदल कँवल में चरन धूर होगा। सतसंग करके मन को जब तोड़ेगा, तब क़ाबिल बनेगा।

सतसँग करना मन तोड़ सरन संतन की।
अन्तर अभिलाषा लगी रहे चरनन की।।

४ — जो कि चरन धूर हुआ है, उसने जिस वक़्त कि ध्यान की कमान खैंची यानी गुरु स्वरूप का ध्यान किया और अन्तर में स्वरूप प्रकट हुआ, फ़ौरन उस की सुरत जैसे तीर छूटता है, वैसे ही अन्तर में चढ़ती है और जैसे बाहर जब तीर छोड़ते हैं तो निशाना बाँधते हैं, वैसे ही सहसदल कँवल का जो शब्द है, वह इसका निशाना है। त्रिकुटी में गुरु स्वरूप का दर्शन होता है। सत्तलोक में सत्त शब्द से मेल होता है और फिर राधास्वामी धाम में जाकर समाता है। त्रिकुटी सत्तलोक और राधास्वामी धाम, यह उसके ठेके हैं और इन तीनों स्थानों में आरती होती है। त्रिकुटी में गुरू की, सत्तलोक में सतगुरु की और राधास्वामी धाम में राधास्वामी दयाल की।

५ — मन की ऐसी हालत है कि इन्द्रियों का रस, जो कि एक किनका और ज़र्रा है और निहायत ही ओछा

है, उसके पीछे दौड़ता फिरता है और अन्तर का जो निर्मल रस है, उसको नहीं लेना चाहता। फिर क्या किया जावे? असल में यह उसके सतसंग की कसर है। जिसका मन कि थोड़ा बहुत चूर हुआ है, उसने जिस वक़्त कि गुरू का ध्यान सम्हाला, फ़ौरन थोड़ा बहुत उसका गुरू से मेला हो गया और हर वक़्त वह अपने सिर पर गुरू का हाथ देखता है।

मेरे मस्तक हाथ गुरू का, मैं हुआ ग़ुलाम गुरू का

गुरु धरा सीस पर हाथ, मन क्यों सोच करे

और जिसका मन अभी चूर नहीं हुआ है, उसका यह हाल है कि उसको कभी प्रीति प्रतीत आती है और कभी डिगमिग हो जाती है। अगर ज़्यादा दुख और तकलीफ़ हुई तो बिल्कुल अभाव ले आता है। इस तरह की हालत इस पर अक्सर गुज़रती रहती है।

६ — कोई तो ऐसे हैं कि घंटे दो घंटे अभ्यास करते हैं, पर उस में ऊंघते और गुनावन करते रहते हैं। लोग समझते हैं कि बड़े अभ्यासी हैं मगर हैं असल में कोल्हू के बैल कि बैठे घर ही में हैं, और समझते हैं कि हम पचास कोस चले हैं।

आसन मारे क्या हुआ, मरी न मन की आस।
तेली केरा बैल ज्यों, घर ही कोस पचास।।

इस तरह न प्रेम आता है और न अन्तर में चाल चलती है। उलटा अहंकारी होता है। और जो दो घंटे अभ्यास दुरुस्ती से बने तो प्रेम में रँग जावे। इससे तो वह बेहतर है जो कि पाँच ही मिनट भजन में बैठता है पर जिस वक़्त तवज्जह चरनों में जोड़ी, फ़ौरन मन निश्चल हो गया और रस आने लगा। राधास्वामी दयाल ने गुरु भक्ति पर ज़्यादा ज़ोर दिया है। इससे सहज में काम

बनता है और प्रेम बढ़ता है और जो गुरु भक्ति की महिमा नहीं जानते और कोल्हू के बैल के मुआफ़िक़ दो दो घंटे अभ्यास करते हैं, असल में उनको सतसंग की कसर है।

पिरथम सीढ़ी भक्ति गुरु की। दूसर सीढ़ी सुरत नाम की।।
जब लग गुरु भक्ती नहिं पूरी। मन मनसा यह होयँ न चूरी।।
मन चूरे बिन सुरत न निर्मल। कैसे चढ़े और लगे शब्द चल।।
गुरु भक्ती अस कैसे आवे। सतसंग कर गुरु सेवा धावे।।

७ — जहाँ सच्ची प्रीति है, वहाँ तकलीफ़ को भी ख़ुशी से बरदाश्त करते हैं और सब की प्रीति को उस पर न्यौछावर कर देते हैं। मसलन कोई स्त्री का ग़ुलाम होता है तो जैसे वह कहती है, वैसे करता है। अगर रात के बारह बजे हुक्म करे तो जब तक वह काम नहीं हो लेता तब तक उसको चैन नहीं आता और माँ बाप भाइयों की प्रीति जो कि क़ुदरती ख़ून के रिश्ते की है, उसको वह न्यौछावर कर देता है। अगर उनके ख़िलाफ़ कुछ स्त्री ने कहा, फ़ौरन उनसे लड़ाई झगड़ा करने को तैयार हो गया। अकसर कुटुम्बियों में इस तरह के मुआमले होते रहते हैं। सबब उस का स्त्री की मुहब्बत है। ऐसे ही जिस की कि मालिक से मुहब्बत है, वह हर तरह की तकलीफ़ ख़ुशी से झेलता है और उलटी सुलटी हालत में राज़ी रहता है, बल्कि उसको अपने प्रीतम की दात समझता है और यह कहता है-

तू स्वामी मैं सेवक तेरा। भावैं सिर दे सूली मेरा।।
भावैं गिरवर गगन गिराय। भावैं दरिया माहिं बहाय।।
भावैं चहुँ दिस अगिन लगाय। भावैं काल दसों दिस खाय।।
भावैं कनक कसौटी दे। दादू सेवक कस कस ले।।

८ — अब देखिये हर तरह की तकलीफ़ झेलने को तैयार है। भक्त के लिये इस से बढ़ कर और क्या है?

मगर मालिक नहीं चाहता है कि भक्त जन को ऐसी तकलीफ़ होवे। वह सिर्फ़ यह चाहता है कि संसारी चाह न उठावे, मामूली तौर पर अपना गुज़ारा करे, उलटी सुलटी हालत जो कुछ होवे, उसमें मौज पर राज़ी रहे, भजन और भक्ति करता रहे। इस तरह आहिस्ता आहिस्ता काम बन जायगा। पर जब तक मन चूर नहीं होगा, चरन धूर नहीं होगा। इसमें इसका चारा नहीं है। यह निज दात है। जिस का भाग है, उसको यह दात मिलती है। सो इसका भाग भी सहज २ गुरू बख़्शेंगे।

भाग बिना क्या करे बिचारी। यह भी भाग गुरू से पा री।।
राधास्वामी कही जुक्ति यह सारी। उनके चरन से प्रेम लगा री।।

बचन ८२

जिस घट में मालिक के दर्शन और दीदार की विरह व प्रेम नहीं है, वह मसान है

१ —क़ुदरती कारख़ाना देख कर कि कैसे ज़मीनी और आसमानी पसारा चल रहा है, कौन इसका करतार है, कहाँ वह छिपा हुआ है, कैसे उससे मिलें, जिस घट में ऐसे पुरुष के दर्शन और दीदार की विरह और प्रेम नहीं है, वह घट गोया मसान है। सूरते इन्सान सीरते हैवान है।

जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की, स्वाँस लेत बिन प्रान।।
प्रेम बनिज नहीं कर सके, चढ़े न नाम की गैल।
मानुष केरी खोलरी, ओढ़ फिरे ज्यों बैल।।

२ — संसारी मुहब्बत सहज में आ जाती है और दिन दिन अफ़ज़ूँ होती जाती है। परमार्थ में मुश्किल है। कभी विरह जागती है, कभी ग़ायब हो जाती है।

विरह अगिन उठ उठ बुझ जावे। क्यों कर करूँ सम्हाल।।

३ — मगर यह भी अच्छा है, जैसे गरमी के बाद वर्षा होती है तो कुछ शीतलता आती है और पपीहा जो प्यासा है, स्वाँत बूँद से शांति पाता है, मगर परमार्थ में संतुष्ट होना मुज़िर है। दिन दिन विरह और प्रेम बढ़ता ही जाना चाहिये।

साध संग कर सार रस, मैंने पिया अघाई।
प्रेम लगा गुरु चरन में, मन शांति न आई।।
तड़प उठे बेकल रहूँ, कस पिया घर जाई।
दरशन रस नित नित लहूँ, गहे मन थिरताई।।

४ — जब तक बंधन है, तब तक विरह और प्रेम नहीं जागते हैं। और यह काम जल्दबाज़ी का भी नहीं है। मंज़िल दूर दराज़ है। ऊँची गैल और राह रपटीली है। डिग जाने का ख़तरा है।

साहब का घर दूर है, जैसे लम्बी खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेम रस, गिरे तो चकना चूर।।

५ — बन्धन भारी है। कटने में अरसा चाहिये। जैसे गाय खूँटे में बँधी हुई इधर उधर चरती और विचरती है और खूँटे की ख़बर नहीं है, वैसे ही जीव की भी हालत है। और जब बन्धन कटते हैं, तब जैसे जहाज़ लंगर से छूटता है, पक्षी पिंजरे से निकलता है, ग़ुबारा रस्सी से छूटता है या पतंग आकाश में चढ़ती है, ऐसे ही सुरत अधर में उड़ती है।

नाम रँगीला दुलहा तेरा, उड़ो गगन जस चंग।

६ — कहने का मुद्दा यह है कि विरह सुरत में होनी चाहिये, तब नाम से मेला होगा। और जो ऊपर से दया

की धार आती है, यानी अमृत की धार जो टपकती है, उसकी कैफ़ियत यह है कि जैसे कोई खाने की चीज़ देखने से ज़बान पर लुआब आता है इसी तरह सुधा रस टपकता है पर जब तक अन्तर में चाह और बासना है तब तक वह अमृत की धार नहीं आती है। जैसे दिन और रात का आपस में मेला नहीं होता ऐसे ही जहाँ बासना है वहाँ नाम नहीं है।

जहाँ काम तहँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलें, रवि रजनी इक ठाम।।

७ — विरह और खटक चाल चलाने और मालिक से मेला कराने वाली है और जिसमें कि विरह है, वही सच्चा चेला है।

विरह अगिन चिनगी गुरु मेला। जो सुलगाय लेय सोइ चेला।।

और विरही चाहता है कि विरह बढ़ती ही रहे, कम न होने पावे और कभी उस को दूर करने का इलाज नहीं करता है और इस में दया समझता है।

दया करी तुम दोउ पर भारी। विरह अगिन चिनगी हिये डारी।।१।।
किरपा कर उसको सुलगाओ। बुझने न पावे अस मेहर कराओ।।२।।
माया घर सब फूँक जलाओ। मन को निकालो अधर चढ़ाओ।।३।।

यह ढँढ़ोरा है देश में प्रेम के अब। कोई हिर्सी इसमें रहा न करे।।
जो रहे तो साहबे दर्द रहे। कोइ दर्द की उसके दवा न करे।।

व्याकुल विरह दिवानी, झड़े नित नैनन पानी।।
हर दम पीर पिया की खटके, सुध बुध बदन हिरानी।।
होश हवास नहीं कुछ तन में, वेदन जीव भुलानी।।
बहु तरंग चित चेतन नाहीं, मन मुरदे की बानी।।
नाड़ी वैद विथा नहिं जाने, क्यों औषध दे आनी।।
हिये में दाग़ जिगर के अन्दर, क्या कहुँ दर्द बखानी।।
सतगुरु वैद विथा पहिचाने, बूटी है उनकी जानी।।
तुलसी यह रोग रोगिया बूझे, जिन को पीर पिरानी।।

८ — जैसे पतंग दीपक पर आशिक़ होता है और अपने तन को जला देता है, वैसे ही विरही अपना मन यानी आपा भस्म करता है।

तुम दीपक मैं भई हूँ पतंगा। भस्म किया मन तुम्हरे संगा।।
तुम सूरज मैं किरनी आई। तुमसे निकसी तुमहिं समाई।।

९ — पतंग दीपक पर आशिक़ है। मीठे के निकट नहीं जाता है। ऐसे ही विरही मालिक से मिलना चाहता है। पदार्थ का गाहक नहीं है। दाता से दाता ही को माँगना चाहिये। दात में नहीं अटकना चाहिये और जो दात चाहेगा तो न दात ही मिलेगी और न दाता मिलेगा। अगर रस लेने या सिद्धि शक्ति हासिल करने या कोई स्थान खुलने की ख़्वाहिश है तो भी स्वार्थी है। ऋषि मुनि सब अपने आपे के रस और सिद्धि शक्ति में गल गये और जो सार वस्तु थी, उसको भूल गये। यह प्रीति ऐसी है जैसे वेश्या की, जिसका सरोकार धन से है, या जैसे कोई कपड़ों का आशिक़ होता है यानी ख़ोल से प्रीति करता है और जो तत्व वस्तु यानी जान है, उस की ख़बर भी नहीं रखता।

१० — पतंग जहाँ दीपक देखता है, वहाँ दौड़ता है। यह नहीं पूछता है कि यह दीपक राजा के घर जलता है या कंगाल के घर।

उत्तम और चंडाल घर, जहँ दीपक उजियार।
तुलसी मते पतंग के, सभी जोत इकसार।

ऐसे ही जिस को मालिक से मिलने की ख़्वाहिश है, वह यह नहीं देखता कि गुरू ब्राह्मन है या चमार। जहाँ शहद है, वहाँ मक्खी आप से आप इकट्ठी होती हैं। दीपक पतंग को नहीं पुकारता है कि आओ पतंगों, हम यहाँ बैठे हैं। पर जहाँ जोत है यानी सतगुरु हैं, वहाँ भक्त

जन आप से आप दौड़ते चले आते हैं और संसारी जो कि मक्खी और उल्लू रूप हैं, भिनभिना के भाग जाते हैं। पतंगा जिस क़दर दीपक के नज़दीक जाता है और तपन होती है, उतना ही ज़्यादा तेज़ी के साथ जलने के लिये दौड़ता है और अंग नहीं मोड़ता है, ऐसे ही भक्त जन पर दुख तकलीफ़ जो कुछ नाज़िल होती है, निहायत ख़ुशी के साथ झेलता है और शिकायत शिकवा नहीं करता है, बल्कि भक्ति मार्ग में क़दम आगे ही बढ़ाता है।

बुल-हवस को दर्दे इश्क़ होता नहीं।सोज़ परवाने का मक्खी को नहीं।

सूरा नाम धराय कर, अब क्या डरपे वीर।
मँड रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर।।१ ।।
खेत न छाड़े सूरमा, जूझे दो दल माहिं।
आसा जीवन मरन की, मन में राखे नाहिं।।२ ।।
अब तो जूझे ही बने, मुड़ चाले घर दूर।
सिर साहब को सौंपते, सोच न कीजे सूर।।३ ।।
सूरे सीस उतारिया, छाँड़ी तन की आस।
आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास।।४ ।।
सूर चला संग्राम को, कबहुँ न देवे पीठ।
आगे चल पीछे फिरे, ता को मुख नहिं दीठ।।५ ।।

११ — जैसे घास में अग्नि की चिनगी डालने से कूड़ा करकट सब जल जाता है, इसी तरह इश्क़ की आग से सब अंग भस्म हो जाता है। सिवाय प्रीतम के कुछ नहीं रहता है।

इश्क़ वह शोला है,जिस घट में वह रोशन हो गया।।
एक प्रीतम रह गया, और बाक़ी सब जल भुन गया।।

प्रेम जब आया सभी को रद किया।
एक प्रीतम रह के बाक़ी बह गया।।
विरह तेज मन में तपे, अंग सभी अकुलाय।
घट सूना जिव पीव में, मौत ढूँढ़ फिर जाय।।

मकानम ला मकाँ बाशद, निशानम बे निशाँ बाशद।
न तन बाशद न जाँ बाशद, चे बाशद इश्क़े जानानम।।
अलाया शम्स तबरेज़ी, चिरामस्ती दरीं आलम।
बज़ुज़ मस्ती व मदहोशी, दिगर चीज़े नमी दानम।।

१२ — जैसे मन से काम क्रोध वग़ैरा मलीन धारें उठती हैं, ऐसे ही सुरत से विरह और प्रेम की धारें उठती हैं। मगर सुरत मन माया के ख़ोलों में जज़्ब हो गई है। जैसे गरमी में रोशनी और रेत में पानी है या जैसे चोरी की चीज़ को चोर छिपाता है, तो जब तक रगड़ा नहीं दिया जाता है, तब तक वह प्रकट नहीं होती है, इसी तरह जब तक दुख तकलीफ़ और गढ़त का रगड़ा इस पर नहीं पड़ता, तब तक मन माया जो कि सुरत को निगले हुए हैं, उसे नहीं उगलते और जब सुरत बरामद होती है, तब प्रेम प्रकट होता है।

१३ — जैसे इतर निकाला जाता है तो ख़ुशबू के ज़र्रे ऊपर उड़ते हैं, वैसे ही नीचे के घट से निज घट में जब सुरत भरी जाती है, तब मन के अंग अंग उड़ाये जाते हैं और पुराना ख़ून बदल के निर्मल किया जाता है। साध महात्माओं का ख़ून पवित्र होता है और विशेष चैतन्य होने के बाइस से बीमार को छू दें, तो वह अच्छा हो जाता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि सात बरस के बाद सब का ख़ून बदलता है, परमार्थ में इस का पुराना स्वभाव और आदत भी बदलाई जाती है। अंग अंग की धूल उड़ाई जाती है। परमार्थ कमाना कोई आसान काम नहीं है। छठी का दूध निकाला जाता है।

दूध छठी का निकसे भाई। सिर बेचे तो मारग पाई।।

मास गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग।
साहब अजहुँ न आइया, कोइ मन्द हमारा भाग।।

कागा सब तन खाइयो, चुन चुन खइयो माँस।
दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस।।
कागा नैन निकास दूँ, पिया पास ले जाय।
पहिले दरस दिखाय के, पीछे लीजो खाय।।
साँईं सेवत जल गई, माँस न रहिया देह।
साँईं जब लग सेइहूँ, यह तन होय न खेह।।
विरहा सेती मती अड़े, रे मन मोर सुजान।
हाड़ माँस सब खात है, जीवत करे मसान।।
या तन का दिवला करूँ, बाती मेलूँ जीव।
लोहू सींचूँ तेल ज्यों, कब मुख देखूँ पीव।।

पिया बिन कैसे जिऊँ मैं प्यारी, मेरा तन मन जात फुक़ारी

१४ — विरही को चिन्ता और फ़िक्र निसि बासर लगी रहती है कि कैसे पिया से मिले। प्रीतम की पीर हर दम हृदय में सालती रहती है। जब कलेजा फटता है, तब दरशन होता है।

हाय हाय पिया कब मिलें, छाती फाटी जाय।
ऐसा दिन कब होयगा, दरशन करूँ अघाय।।
बिन दरशन कल ना पड़े, मनुआ धरे न धीर।
चरन दास गुरु चरन बिन, कौन मिटावे पीर।।
आह जो निकसे दुख भरी, गहरे लेत उसाँस।
मुख पियरो सूखे अधर, आँखें खरी उदास।।
अगिन बरे हियरा जरे, भये कलेजे छेद।
विरहिन तो बौरी भई, क्या कोई जाने भेद।।
विरह जलन्ती मैं फिरूँ, मोहिं विरह का दुख।
छाँह न बैठूँ डरपती, मत जल उट्ठे रूख।।

जिगर फटा दिल टुकड़े हुआ। तब राधास्वामी का दरशन लिया।।

१५ — साँप जैसे काटता है तो अन्तर में ज़हर की लहरें उठती हैं, ऐसे ही विरही के अन्तर में विरह और दर्द की हिलोरें उठती हैं। दिन रात विरह की अगिन में जलता है। विरह की चोट सही नहीं जाती है।

कहँ लग बरनूँ चोट विरह की। कोई न जाने साल जिगर की।।
विरह अगिन तन मन मेरा फूँका। झाल उठी जग दीन्हा लूका।।

प्रीतम पीर पिरानी, दरद कोई बिरले जानी।। टेक।।
डसत भुवंग चढ़त सनननन, ज़हर लहर लहरानी।
घनन घनन घन्नाटी आवे, भावे अन्न न पानी।।
भँवर चक्र की उठत घुमेरे, फिरें दसों दिस आनी।
अन्दर हाल बिहाल हलावत, दुर्गम प्रीति निभानी।।
आशिक़ इश्क़ इश्क़ आशिक़ से, करना मौत निशानी।
मुरदा होकर ख़ाक मिले जब, तब पट अमर लिखानी।।
पिया को सोग रोग तन मन में, सतगुरु सुध अकुलानी।
तुलसी यह मारग मुशकिल का, धड़ बिन सीस बिकानी।।

१६ — बहुतेरे समझते हैं कि हम सतसंग करते हैं, थोड़ा बहुत अभ्यास भी करते हैं, स्वार्थ परमार्थ दोनों अच्छी तरह से बनते हैं, एक रोज़ उद्धार हो जायगा, लेकिन यह नहीं जानते कि परमार्थ जीते जी मरना है, दाल भात का निवाला नहीं है, कुल कुटुम्बियों से तोड़ना पड़ेगा, अन्तर और बाहर।

मन तोड़त तन अकुलाना। क्या बरन बताऊँ जन्तरी।।

मन मारो तन को जारो। इन्द्री रस भोग बिसारो।।

घर आग लगावे सखी। सोइ सीतल समुँद समावे।

घर फूँका मैं आपना, लूका लीना हाथ।
वाहू का घर फूँकदूँ, जो चले हमारे साथ।

१७ — कहने का मुद्दा यह है कि घर में इस के आग लगे तो ढोलक बजावे, क्योंकि बन्धन कटता है। ऐसी हालत होनी चाहिये। सच्ची सच्ची बात तो यह है। जिन को विरह और तड़प है, वह अन्तर में छिपाये रहते हैं, बाहर कहते नहीं फिरते।

हिरदय भीतर दौं जले, धुँआ न परगट होय।
जाके लागी सो लखे, कै जिनहिं लगाई सोय।।
नाम बियोगी बिकल तन, ताहि न चीन्हे कोय।
तम्बोली के पान ज्यों, दिन दिन पीला होय।।

आशिक़ाँ रा शश निशाँ हस्त ऐ पिसर।
आह सरदो रंग ज़रदो चश्म तर।।
गर बिपुरसी सेह निशाने आँ कुदाम।
कम खुर्दनो कम गुफ़्तनो ख़ुफ़्तन हराम।।

अगर ज़बान से नहीं बोलते हैं तो उन के चेहरे से मालूम होता है कि प्रेम भरपूर है।

प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट परघट होय।
जो पै मुख बोले नहीं, तो नैन देत हैं रोय।।

१८ — विरही की हालत हमेशा फ़िराक़ में ग़म और अलम ही की नहीं रहती है। जब विसाल होता है, तब दुख दर्द सब दूर हो जाता है और तब वह प्रेम में मगन और मसरूर हो जाता है।

बजी बधाई हर्ष समाई, भाग चला बैराग।
भक्ति भावनी निर्मल करनी, खेलत निज कर फाग।

पूरा सतगुरु पाइया, पूरी पाई जुक्त।
हसन्दियाँ, खवन्दियाँ विच्चों पाई मुक्त।

आँख न मूँदूँ कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन स्वामी हँस २ देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ।।

१९ — पहिले विरह होती है। पीछे प्रेम प्रकट होता है। जीव बिचारा प्रीति करता है और मालिक इसको धक्के देता है। धक्के देने से मतलब यह है कि इसका आपा दूर करता है।

सतगुरु तोहि छिन छिन पोसें। हँगता तेरी सब विधि खोसें।।
तू कर उन चरनन होशें। सतगुरु से मत कर रोसें।।

२० — सतगुरु सब विधि, यानी तन मन धन मान बड़ाई ओहदे ख़ानदान अभ्यास वग़ैरा का अहंकार जो इस के मन में समाया रहता है उसको तोड़ते और निकालते हैं।

२१ — जैसे पति चाहता है कि मेरी स्त्री मुझ से ही प्रीति करे, दूसरे की तरफ़ मुतवज्जह न होवे, ऐसे मालिक भी चाहता है कि भक्त जन सिर्फ़ उससे ही प्रीति करे, तन मन और इन्द्रियों से प्रीति न करे।

नारि कहावे पीव की, रहे और संग सोय।
यार सदा मन में बसे, ख़सम ख़ुशी क्यों होय।।

२२ — वैसे तो हर कोई कहता है कि हम भक्ति करते हैं, मगर जब क़दम आगे बढ़ावे, तब ख़बर पड़े कि प्रीति क्या चीज़ है और एक रस नेह निबाहना कैसा दुर्लभ है।

जो मैं ऐसा जानती, प्रीति करे दुख होय।
नगर ढँढोरा फेरती, प्रीति न कीजो कोय।।

इश्क़ आसाँ नमूद अव्वल, वले उफ़्ताद मुशकिलहा।।

गुरू से लगन कठिन मेरे भाई

प्रेम का मार्ग सहज नहीं है।

आब आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निबाहन एक रस, महा कठिन व्यवहार।। १ ।।
लड़ने को सबही चले, शस्तर बाँध अनेक।
साहब आगे आपने, जूझेगा कोई एक।। २ ।।
तीर तुपक से जो लड़े, सो तो सूर न होय।
माया तज भक्ती करे, सूर कहावे सोय।। ३ ।।
हँस २ कंथ न पाइयाँ, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिउ मिले, तो कौन दुहागिन होय।। ४ ।।
यह तो घर है प्रेम का, ख़ाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुइँ धरे, तब पैठे घर माहिं।। ५ ।।

जब लग मरने से डरे, तब लग प्रेमी नाहिं।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समझ लेहु मन माहिं।। ६ ।।
सीस उतारे भुइँ धरे, ऊपर राखे पाँव।
दास कबीरा यों कहे, ऐसा होय तो आव।। ७ ।।
धड़ सों सीस उतार के, डारि देह ज्यों ढेल।
काहू सूर को सोहसी, यह घर जाने का खेल।। ८ ।।

प्रेम खेलन का जो तोहि चाव। सिर धर तले गली मेरी आव।।
प्रेम खेलन का यही सुभाव। तू चल आव कि मुझे बुलाव।।
प्रेम खेलन का यही विवेक। मैं तोहि देखूँ तू मोहिं देख।।
देखत देखत ऐसा देख। मिट जाय दुविधा रह जाय एक।।

बचन ८३

भक्ति का बीज

१ — सुरत का रुख अन्तरमुख है, पर इन्द्रियों में जब धार आती है, तब उनकी कार्रवाई आप से आप होती है, उसमें कोई ख़ास जतन की हाजत नहीं होती, या जो सुभाव जिसमें प्रबल है वह देर सबेर ज़रूर अपना इज़हार करता है। जैसे बीज है कि दरख़्त का नमूना उसमें मौजूद है, बोने से नक़्श के अनुसार दरख़्त पैदा होता है, ऐसे ही जिसमें कि भक्ति का बीज पड़ा हुआ है, देर सबेर उस का भी इज़हार ज़रूर होता है। संतों का जो बीजा है, वह ज़्यादा पुर-असर है। उस का मैलान और झुकाव परमार्थ की तरफ़ है। और एक रोज़ इसकी सतसंग में शिरकत ज़रूर होती है।

संत डारिया बीज, घट धरती जेहि जीव के।
को अस समरथ होय, जो जारे उस बीज को।।
कोई काल के माहिं, वह बीजा अंकुर गहे।
जब जब आवें संत, अंकूरी उन सँग रहे।।

वह सींचें निज पौद, होय भक्त वह पेड़ सम।
फल लागें अति से सरस, भोगें सतगुरु मेहर से।।
कारज कीना पूर, संत धूर हिरदे धरी।
सूर हुआ मन चूर, नूर तूर घट में प्रकट।।

२ — फिर जब प्रेम का किनका बख़्शिश होता है, तब काम बन जाता है यानी पूरा हो जाता है, गोया भक्ति का पेड़ तैयार हो गया। अरसा तो ज़रूर लगेगा। धीरज से अपना काम करते रहना चाहिये। पौदे का सींचना, बाड़ लगाना यानी इस की रक्षा और हिफ़ाज़त के लिये इर्द गिर्द काँटा वग़ैरा लगाना, यह सब बन्दोबस्त मालिक आप करता है और यह सब लवाज़मा, संजम और परहेज़ हैं। और भक्ति यानी प्रेम जौहर, सार वस्तु और हीर है। धीरे धीरे इस दरख़्त के पत्ते और शाख निकलती हैं और बाद इस के भक्ति का फूल खिलता है यानी इस के अन्तर में मालिक का स्वरूप प्रकट होता है।

मैं वृक्षा राधास्वामी सुफल से। मैं शाखा राधास्वामी फूल से।।

वैसे महिमा तो फूल ही की है, मगर बाज़ पेड़ के पत्ते भी बड़े सुगन्धित होते हैं।

३ — हृदय रूपी ज़मीन जब फटती है, तब कुला फूटता है और यही जिगर का फटना है। इसके लिये पहिले सफ़ाई की ज़रूरत है। जैसे किसान जब बीज डालता है तो पहिले खेत को कमा लेता है, जो बे कमाये हुए बीज डाल दे, तो कुछ नहीं पैदा होता है, इसी तरह हृदय रूपी ज़मीन को कमाने के वास्ते गुरू की प्रीति और सफ़ाई ज़रूर है। सो पहिले खोदा खादी होती है, बाद इसके पानी और खाद पड़ती है। पानी और खाद पड़ने से कुछ सीतलता आती है। मगर जब खोदा खादी और फावड़े-बाज़ी होती है यानी गढ़त होती है, तब यह चिल्लाता है। वहाँ ज़मीन जड़ है, बोलती नहीं। और यह

बोलता पुरुष है। बाज़ी ज़मीन में चाह रूपी कंकड़ और पत्थर पड़े होते हैं, तो ज़्यादा खोदा खादी की ज़रूरत होती है और जो ज़मीन पथरीली है तो इसके लिये और इन्तज़ाम किया जाता है। अब इस से ज़ाहिर हुआ कि प्रेम के आने के लिये पहिले हृदय रूपी ज़मीन की सफ़ाई करना ज़रूरी है, यानी पहिले गढ़त होगी, पीछे प्रेम की बख़्शिश होगी।

४ — जैसे पहिले कुले फूटते हैं, तब फूल खिलता है, वैसे ही तीसरे तिल का परदा जब पहिले फटता है, तब पीछे दरशन होता है। वहाँ बाहर पेड़ निकलता है और अन्तर में ऊपर पेड़ खिलता है। कहने का मुद्दा यह है कि भक्ति का बीज मुख्य है। इसी को संस्कार, भाग और क़िस्मत कहते हैं। कार्रवाई मालिक आप कराता है। और सब का जुदागाना भाग है। प्रेम की जब बख़्शिश होगी तब काम बनेगा। इसके जतन से कुछ नहीं होगा। करनी भी मेहर दया से होगी।

मेहर दया करनी करवाई। करनी कर बहु मेहर बढ़ाई।।
करनी मेहर संग दोउ चलते। तब फल पूरा चढ़ चढ़ लेते।।

बचन ८४

भक्ति की अवस्थाएँ

१ — जैसे बच्चे को अपनी मइया का आधार होता है, वैसे ही भक्त जन को जो कि अभी बालक रूप है, अपने भगवन्त का आसरा रहता है।

२ — जहाँ परस्पर प्रीति है, वहाँ मदद और हिफ़ाज़त की आशा है। जैसे छोटा बच्चा और मइया है तो बच्चे को

अपनी माँ का ही आसरा रहता है और सिवाय अपनी माँ के और किसी को नहीं जानता है, दुख सुख में मइया की ही गोद में मदद के लिये दौड़ता है और वह उस की रक्षा के लिये हर दम तैयार रहती है, वैसे ही भक्त जन जो कि बालक रूप है, अपने भगवन्त का आसरा रखता है और दुख सुख, ख़्वाह स्वार्थ परमार्थ में, उसी की तरफ़ दया और मदद के लिये रुजू और मुख़ातिब होता है और जो कोई दूसरा मदद करता है तो उसको ना-पसन्द करता है।

बने तो सतगुरु से बने, नहिं बिगड़े भर पूर।
तुलसी बने जो और से, ता बनिवे में धूर।।

३ — कभी कभी बालक समझता है कि मइया मेरे साथ कठोरता करती है, मसलन बीमारी में वह उस को दवा पिलाती है, तो असल में बालक के सेहत और आराम के लिये दवा दी जाती है, कोई कठोरता नहीं है, इसी तरह कभी कभी सतसंग में उलटी सुलटी हालत पैदा करके इसके कर्म काटे जाते हैं यानी मन का रोग दूर किया जाता है और यह घबराता है कि मेरे साथ कठोरता हो रही है, मगर दर-हक़ीक़त है इस में दया ही दया।

४ — सख़्ती के भी दरजे हैं। एक नाक़िस कर्मों के सबब से और दूसरे मौज से।

५ — दोनों में दया शामिल है। बालक जब बहुत खेल कूद करता है, तब मइया उसको रोकती है और यह उसको वाक़ई सख़्ती समझता है और जो कहीं पीट दिया तो चिल्लाता है, मगर असल में इसमें इसका फ़ायदा मुतसव्वर है। माँ की कोई दुश्मनी नहीं है, और वह जो मार पीट करती है तो उससे कोई उसके प्यार में फ़र्क़

नहीं पड़ता है, प्यार ब-दस्तूर क़ायम है, बल्कि मारते वक़्त भी भीतर से प्यार करती रहती है। बाज़े लड़के तो इधर उधर उपट देते हैं (यानी बड़बड़ाते फिरते हैं), बाज़े रो देते हैं। ऐसे ही भक्तजन को दुख देना मालिक को मंज़ूर नहीं है और जो कभी दिया जाता है तो इसकी बेहतरी के लिये और दया और मदद ब-दस्तूर क़ायम रहती है।

दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अन्त तिहुँ काल।
पलक एक में प्रकट होय, छिन में करूँ निहाल।।

६ — बाज़े बालक ऐसे होते हैं कि जिस चीज़ पर रोस करते हैं, वह चीज़ जब फिर उनको दी जाती है, तो लौट पड़ते हैं और लेते नहीं हैं, ऐसे ही जो किसी पर मालिक ताड़ मार के पीछे दया करता है तो बाज़े उसे लेते नहीं हैं और नख़रे करते हैं।

७ — परमार्थ में बालक कब होता है? जब चरन धार का आधार इस को होता है और आधार तब होता है, जब इस की सुरत को चरन धार अपने में लपेट लेती है और तब बिना ध्यान भजन में बैठे, जब चाहे, चरन रस लेता है। यहाँ भी जब बच्चा पेट में होता है तो माँ के ख़ून से उस की देह बनती है और बाहर इस के बढ़ाव और पुष्ट होने के लिये माँ का दूध जो कि ख़ून से बनता है इस का अहार होता है। इसी तरह परमार्थ में भी जब चरन धार इसको अपने में लपेट लेती है और चरन रस इस का अहार हो जाता है और उसी का असर होता है, तब यह बालक बनता है। वहाँ अन्तर बाहर ख़ून का रिश्ता है और यहाँ चैतन्य यानी अमृत धार का रिश्ता है। और जिस में कि भक्ति का बीज पड़ा हुआ है, वह एक रोज़ ज़रूर बालक बनता है। बग़ैर बीज के बालक नहीं पैदा होता।

८ — बालक होना पहली गति है। दूसरी गति स्त्री पुरुष की है। यह तब होती है, जब भक्ति की जवानी आती है। जैसे लड़कपन से तरुन अवस्था आती है और सब अंग काम वग़ैरा के जागते हैं, ऐसे ही भक्ति की भी जब जवानी आती है, तब प्रेम वग़ैरा अंग जागते हैं और जैसे स्त्री पुरुष आपस में मिलते हैं, वैसे ही भक्त जन को भगवन्त से तदरूप होने की ताक़त होती है। जब तक बालपन है, तब तक पिता पुत्र का भाव है और जब भक्ति की जवानी आती है, तब स्त्री पति का भाव होता है। भक्ति में तीन प्रकार का भाव होता है। पहिला स्वामी सेवक का, दूसरा पिता पुत्र का, तीसरा स्त्री पति यानी प्रेमी प्रीतम का। पहिले भाव में सेवक के दिल में ख़ौफ़ और अदब ज़्यादा रहता है। दूसरे में दया का भरोसा रहता है। तीसरे में प्रेम की मुख्यता रहती है।

९ — बालक बाज़ दफ़े अदम-तवज्जही भी करता है यानी खेल कूद में मइया को भूल जाता है। इसी तरह बालक भक्त भी बाज़े संसारी पदार्थ और कारोबार में ज़्यादा तवज्जह करता है और जैसे लड़का खेल कूद के लिये माँ से चट्टा बट्टा माँगता है, वैसे यह भी बाज़ी संसारी वस्तु के लिये अर्ज़ मारूज़ करता है, तो जैसे मइया लड़के को दिलासा देती है, वैसे ही सतगुरु भी हाँ हाँ करते हैं और सुनते हैं, मगर करते वही हैं, जिसमें कि उस की भलाई है।

जिस में तेरी होय भलाई। स्वारथ और परमारथ सार।।
वैसी ही करें मौज दया से। दोऊ में हित मानो यार।।

खेल खिलावें बाल समान। देखे मात हरष मन आन।।
रक्षक शब्द जान और प्रान। सो पहलू छोड़े न निदान।।
मन की गढ़त करावें दम दम। वह हैं मित्र वही हैं हमदम।।

भूल चूक बख़्शें वह छिन छिन। संग रहें इसके वह निसदिन।।
यह मन कच्चा बूझ न जाने। उन की गति कैसे पहिचाने।।

१० — सवाल - हम तो अभी बालक भी नहीं हैं फिर क्या हैं?

जवाब - तुम अभी अंडा हो।

बचन ८५

भोला भक्त किस को कहते हैं

१ — जो कि भोले भाले हैं, उन पर दया विशेष है। जो कि दीन अधीन है और ग़रीबी से बरताव करता है यानी हर वक़्त जिस के सुरत मन सिमटे और चित्त एकाग्र रहता है, जानता बूझता सब कुछ है, फिर भी अनजानों के माफ़िक़ बरताव करता है और स्वभाव जिसका कोमल है, उसको भोला भाला कहते हैं।

प्रेम भरी भोली भाली सुरतिया। पल २ गुरु को रिझाय रही।
दीन होय लागी सतसंग में। बचन सुनत हरखाय रही।।

२ — जैसे जहाँ मइया है, वहाँ बच्चा रहता है और बच्चों से खेल कूद करता है, पर मइया के दूध का आधार रखता है और हर वक़्त उस की डोरी प्रीति की मइया के साथ लगी रहती है, वैसे ही भक्त जन भी जब मइया के देश में होवे यानी ब्रह्माण्ड में जब चैतन्य धार से मेला होवे और हर वक़्त सुरत की डोरी चरनों में लगी रहे और नित्त अमी अहार करे और हंसों यानी प्रेमी जनों से हेल मेल करे, तब यह बच्चा हो सकता है और जब तक ऐसा कोमल नहीं है, तब तक मइया दूर है और बच्चा परदेश में है।

३ — नीचे देश में भी राधास्वामी दयाल अपने बच्चों की सम्हाल करते हैं। जैसे बच्चा जो अभी गर्भ में है, वह हरचन्द पैदा नहीं हुआ है, तो भी मइया की प्रीति उस से होती है और मइया के ख़ून से उस की परवरिश होती है, वैसे ही जिस का कि अभी चैतन्य धार से मेला नहीं हुआ है और पिंड के परे ब्रह्मांड में नहीं पहुँचा है, उस की रक्षा और सम्हाल भी बराबर होती रहती है।

४ — जिस की कि देह स्वरूप सतगुरु से प्रीति सच्ची और पूरी है, उस की अंतर में रसाई ज़रूर होती है। अगर रसाई नहीं है तो समझना चाहिये कि अभी प्रीति में कसर है। जिनकी कि अन्तर में रसाई है और जो भोले भक्त हैं, उनकी वही कैफ़ियत होती है, जैसी कि यहाँ भोले जीवों की। जैसा कोई कहे, वह सही मानने को तैयार रहते हैं और कुछ याद नहीं रहता। जिस तरह मालिक रक्खे, उस में राज़ी रहते हैं और हर वक़्त मौज को निहारते रहते हैं और जैसे वह चलावे, वैसे चलते हैं और विशेष दया के अधिकारी होते हैं।

बचन ८६

प्रेम की महिमा

१ — संत मत में प्रेम की महिमा भारी है। जब तक प्रेम नहीं है, तब तक चाल अनेड़ी है और जिस में कि प्रेम है, वह गोया मालिक की राह पर चला।

२ — जिस घट में कि मालिक के चरन बस गये, वहाँ मन माया की कुछ पेश नहीं जाती। जैसे सूरज जब उदय होता है, तब तम रूपी जो अन्धकार है, वह दूर हो

जाता है, वैसे ही प्रेम के प्रकाश से घट के जो दूत हैं, वे सब भागते हैं और वहाँ सील छिमा सन्तोष का उजारा हो जाता है।

गुरु किरपा सूर उगाना। अब हुआ जक्त बेगाना।।
चोरी अब चोरन त्यागी। घर उन के अग्नी लागी।।
साहू अब घट में जागे। पहरा दे शब्द अनुरागे।।

तन नगरी बिच बजत ढँढोरा। भागे चोर ज़ोर भया थोड़ा।।
सील छिमा आय थाना गाड़ा। काम क्रोध पर पड़ गया धाड़ा।।

३ — जब तक प्रेम घट में नहीं जागा है, तब तक मन माया नाच नचाते रहते हैं।

प्रेम दात बिन सुनो मेरे प्यारे। यह मन नाच नचाता हो।।
मेरा बस या से नहिं चाले। भोगन में मद माता हो।।

४ — अगर रस भी आवे, सुरत मन भी सिमटें, शब्द भी सुनाई दे और सूरज चाँद भी नज़राई पड़ें, मगर प्रेम नहीं है तो कुछ नहीं है। प्रेम चैतन्य धार से मेला होने को कहते हैं और वह मेला यहाँ पिंड में नहीं होता, ब्रह्मांड में होता है। जब सीस देगा, तब मेला होगा।

यह तो घर है प्रेम का, ख़ाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुइँ धरे, तब पैठे घर माहिं।।
धड़ सौं सीस उतार के, डार देह ज्यों ढेल।
काहू सूर को सोहसी, यह घर जाने का खेल।।

५ — सीस का उतारना आपे के खो देने को कहते हैं। परदा जो जीव और मालिक के बीच में हायल है, वही सीस और आपा है।

६ — मोहनी रूप का जब दर्शन भक्त जन को होता है या उस का ख़्याल करता है, तब उस में इस क़दर महव और मगन हो जाता है कि अपनी भी इस को सुध बुध नहीं रहती है।

दरशन करत पिंड सुध भूली। फिर घर बाहर सुध क्या आय।।

७ — अगर यह इस को ख़बर है कि मैं दर्शन कर रहा हूँ तो यह भी उस के प्रेम की कसर है। दिल का हुजरा जब साफ़ होगा, तब मोहनी रूप के चरन उस में पधारेंगे।

दिल का हुजरा साफ़ कर, जानाँ के आने के लिये।
ध्यान ग़ैरों का उठा, उस के बिठाने के लिये।।

८ — प्रेमी जन के संग करने से भी इश्क़ पैदा होता है। जो कि सच्चे हैं, वे हमेशा ऐसी संगत को पसन्द करते हैं और जो झूठे हैं, भक्त जन से विरोध रखते हैं। जैसे संसारियों का संग करने से उन का असर होता है, वैसे ही परमार्थ में भक्त जन का संग करने से भक्ति का असर होता है। सच्चे और भक्त जन की मालिक हर वक़्त स्वार्थ और परमार्थ की सम्हाल आप फ़रमाता है। अव्वल परमार्थ की, बाद उस के स्वार्थ की सम्हाल करता है। जिस में कि आपा नहीं है, उस की इस तरह की हिफ़ाज़त होती है। जहाँ आपा है, वहाँ जतन है। प्रेम और मौज की गुंजाइश वहाँ नहीं है।

जब हम थे तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समायँ।।

९ — कहने का मुद्दा यह है कि राधास्वामी दयाल के चरनों की प्रीति ऐसी होनी चाहिये जैसे चकोर की चन्द्रमा के साथ और पतंग की दीपक के साथ है।

मैं तो चकोर चन्द्र राधास्वामी। नहिं भावे सतनाम अनामी।।
बिन जल मछली चैन न पावे। कँवल बिना अल क्यों ठहरावे।।
स्वाँति बिना जस पपिहा तरसे। सुत वियोग माता नहिं सरसे।।
अस अस हाल भया अब मेरा। का से बरनूँ कोई न हेरा।।

तुम दीपक मैं भई हूँ पतंगा। भस्म किया मन तुम्हरे संगा।।
तुम भृंगी मैं कीट अधीना। मिल गये राधास्वामी अति परबीना।।

१० — निशाना राधास्वामी दयाल के चरनों से मेल करने का बाँधना चाहिए। जब तक मेला नहीं है, तब तक जितने परमार्थी काम किये जाते हैं, सब कर्म में दाख़िल हैं। जब चरनों से मेला होगा, तब प्रेम प्रकट होगा और तब उपासना यानी भक्ति शुरू होगी।

११ — सवाल - मोह और प्रीति में क्या फ़र्क़ है?

जवाब - मायक अंग के साथ जो मुहब्बत है, उस को मोह कहते हैं और मायक अंग से रहित यानी चैतन्य से जो मुहब्बत है, उसको प्रीति कहते हैं। संसारी प्रीति मन के घाट पर की जाती है और परमार्थी प्रीति सुरत के घाट पर की जाती है। परमार्थ में भी जब तक किसी का घाट नहीं बदला है, तब तक जो प्रीति प्रतीत और प्रेम है, वह मन के घाट का है, सुरत के घाट का नहीं है। यह हैवानी प्रेम क़ाबिल एतबार के नहीं है, छिन रूखा, छिन फीका हो जाता है।

बढ़े घटे छिन एक में, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसे, प्रेम कहावे सोय।।

बचन ८७

भक्ति किस को कहते हैं और भक्ति का फल क्या है

१ — संसार में भक्ति क्या है और उसका फल क्या है पहिले उसको समझना चाहिये। प्रीत, भक्ति, मुहब्बत एक ही है।

भक्ति इश्क़ प्रेम यह तीनों। नाम भेद है रूप समान।।

२ — संसार के जितने पदार्थ हैं, उन सबका ज्ञान हासिल करने के लिये द्वारे हैं, मसलन रूप के लिये नेत्र, शब्द के लिये कान, वग़ैरा। ज्ञान इन्द्रियों के ज़रिये अन्तःकरन के स्थान से धार उठ कर बार बार किसी मुक़र्रर द्वारे पर जब आती है, तब उसको प्रीति यानी मुहब्बत कहते हैं और जब पदार्थ से मेला होता है, तब उस को उस मुहब्बत का फल कहते हैं। जहाँ मुहब्बत है, वहाँ उस के द्वारे पर बड़े ज़ोर शोर से धार की आमद होती है और बहुतेरा हटाओ पर हटती नहीं, और यह भी ज़रूर नहीं कि प्रीति करने के लिये बाहर स्थूल पदार्थ मौजूद होवे, मसलन आँख है, उसमें अक्स बाहरी चीज़ का पहिले से मौजूद है, अब उसका ख़याल करने से ही प्रीति जागती है। बाहरी रूप और शब्द का रस ऐसा भारी है कि लोग उसमें महव और मस्त हो जाते हैं, तो अन्तरी रूप और शब्द में किस क़दर रस और असर होगा, जिसका हद और हिसाब नहीं है।

जान मुरदों की उठें क़बरों से भाग।
ऐसा अन्तर का है बाजा और राग।।

३ — अब परमार्थ में भक्ति क्या है और उसका फल क्या है, इसका वर्णन किया जाता है। मालिक चैतन्य का भंडार है, सत चित आनन्द रूप है। जो कि पूरे गुरु हैं, वह भी चैतन्य स्वरूप हैं और वही द्वारा मालिक से मिलने के हैं। उनका स्वरूप बार बार ख़याल में लाना गोया मालिक से मेल करना है और यही उस की भक्ति है। जिस मत में कि इस द्वारे यानी गुरू की महिमा नहीं है, वह मत बाचक है, मन-मत है।

४ — तीसरा तिल जिस को शिव-नेत्र या दिव्य चक्षु और ज्ञान चक्षु कहते हैं, वहाँ जब धार आती है, तब चैतन्य स्वरूप का ज्ञान और उससे संजोग होता है और

यही भक्ति का फल है। जब सिर्फ़ किसी क़दर धार का चैतन्य रूप से संयोग होता है, तब उस को भेद भक्ति कहते हैं और जब सर्व अंग करके संजोग होता है, तब उस को अभेद भक्ति कहते हैं।

५ — चार प्रकार की भक्ति है।

१ सालोक—अपने इष्ट के लोक में बास करना।

२ सामीप—अपने इष्ट के निकट रहना।

३ सारूप—अपने इष्ट का प्रकट रूप धारना।

४ सायुज्य—अपने इष्ट की ज़ात यानी लक्ष स्वरूप से मिल कर एक हो जाना। भगवन्त से तदरूप होना यानी सर्व अंग से संजोग करना, इसको सायुज्य भक्ति कहते हैं। इसी पर कहा है कि

भक्ति भक्त भगवन्त गुरु, नाम चतुर बपु एक।
तिन के पग बन्दन करत, नासें विघन अनेक।।

६ — अब भक्ति में क्या विघ्न पेश आते हैं, उसका थोड़ा सा बयान किया जाता है।

७ — संसार में गुज़ारे मात्र बरताव करना चाहिये। ज़्यादती में हर्ज़ और नुक़सान है। यह उसूल है। तजरुबा जब होता है, तब साफ़ मालूम पड़ता है। मसलन तरकारी लेना वग़ैरा घर का जो काम है, बाज़ार में गये और निपट आये, इसमें चित्त की वृत्ति का बन्धन और फँसाव ज़्यादा नहीं होता, काम पूरा हुआ, फिर उस से कोई सरोकार नहीं रहा, मगर जो कहीं नाटक का तमाशा है या कोई जलसा या मीटिंग है, वहाँ जाना और उस में तवज्जह देना, इससे भारी हर्ज होता है, धीरे धीरे परमार्थ से तवज्जह हटती जायगी और ऐसे जलसों में चित्त उलझा रहेगा। जैसे कोई जुवारी या शराबी है या कोई रोज़गार पेशा करता है, दरजे-बदरजे उसका चित्त

उस में ऐसा अटक जाता है कि जो ज़रूरी संसारी काम हैं, वह भी भूल जाते हैं, इसी तरह भक्ति मार्ग में शरीक होके अगर कोई और काम ज़्यादती से करेगा तो परमार्थी कार्रवाई उसकी धीरे धीरे मुल्तवी हो जावेगी और यह भक्ति की रीति नहीं है।

८ — भक्त जन को चाहिये कि हमेशा मन की चौकीदारी करता रहे कि कहीं इधर उधर फ़िज़ूल कामों में तो नहीं फँसता है और यही समाधानता है, और चरनों में प्रीति भाव करना, इस को सरधा कहते हैं। कहने का मुद्दा यह है कि सरधा और समाधानता के साथ सुरत शब्द योग की कमाई करो, निरंतर सतसंग करो, अपने चैतन्य को जगाओ और विशेष करो, अन्तर का द्वारा खोलो, चरनों से मेल करो, तब तुम भक्त बनोगे।

९ — भक्ति का स्वरूप क्या है? जैसे कामी पुरुष को कामिनी देखते ही काम अंग जागता है, ऐसे ही गुरू का दरशन, अन्तर ख़्वाह बाहर, करते ही भक्त के सुरत मन का सिमटाव होता है और चित्त हमेशा गुरू की याद में लगा रहता है और सिवाय गुरू के और कुछ भी प्यारा नहीं लगता है, जैसा कि कहा है-

जस कामी को कामिन प्यारी। अस गुरुमुख को गुरु का गात।।
खाते पीते चलते फिरते। सोवत जागत बिसर न जात।।
खटकत रहे भाल ज्यों हियरे। दरदी के ज्यों दर्द समात।।
ऐसी लगन गुरू सँग जा की। वह गुरुमुख परमारथ पात।।

१० — भक्ति में चार प्रकार के भाव हैं (१) पिता पुत्र, (२) स्त्री पति, (३) स्वामी सेवक और (४) सखा भाव। जब तक संजोग नहीं है, तब तक पिता पुत्र भाव है और जब संजोग हुआ, तब स्त्री पति भाव है। स्वामी सेवक भाव दास अंग से प्रीति करने को कहते हैं और

दोस्त आशना और मित्र भाव, सखा भाव कहलाता है। इन सब में पिता पुत्र का भाव अच्छा है। और जो गुरुमुख है, उस की गति न्यारी है। उस की रत होने की गति है। कलेजा छेक उठता है। अन्तःकरन से धार उठने से दिल टुकड़े होता है। दरशन करते ही मन हर जाता है और सुध बुध सब भूल जाती है।

गुरु प्यारे के नैन रँगीले, मेरा मन हर लीन।

११ — कहने का मुद्दा यह है कि बेरूनी कार्रवाई कम करो। अन्तरमुख वृत्ति लाओ। सतसंग निरंतर करो। चरनों में प्रीति बढ़ाओ। घट द्वारा खोलो। यही भक्ति की रीत है।

बचन ८८

सरन कब ली जाती है?

१ — जब तक मन का मसाला झाड़ा न जायगा और दुख तकलीफ़ से इस का आपा यानी बल पौरुष तोड़ा न जायगा, तब तक सच्ची सरन हरगिज़ नहीं लेगा।

२ — मन में मलीनता और करम का बोझ यानी मसाला धरा हुआ है, इसलिये जीव लाचार है। हरचन्द यह जतन और कोशिश करता है, सोचता और विचारता है, पछताता और झुरता है कि कभी ऐसा काम नहीं करूँगा, मगर फिर भी भूल जाता है और समझौती जो ली है, वह काम नहीं देती। बाज़ दफ़े क़सम खा लेता है और क़ौल क़रार भी करता है, तो भी इसकी कोई पेश नहीं जाती है।

सखी री मेरा मनुआ निपट अनाड़ी। गुरु बचन चित्त नहिं धारी।

सोचत समझत फिर फिर भूलत। भक्ती रीत बिसारी।।
कैसी करूँ कुछ बस नहिं चाले। गुरु दयाल बिन कौन सम्हारी।।
क़ौल क़रार किये मैं बहु तक। लज्जित नहिं निज बचन तुड़ा री।।
ऐसा ढीठ निलज्ज भोग बस। गुरु का नहिं भय भाव रखा री।।

३ — इस तरह जब यह लाचार होता है और देखता है कि मेरी कोई ताक़त मन माया से लड़ने की नहीं है और बिलकुल हार जाता है और जतन कोशिश करके थक जाता है, तब आजिज़ होके अपना बल पौरुष छोड़ता है और राधास्वामी दयाल की सरन लेता है और कहता है कि चाहे रक्खो, बचाओ, चाहे मारो, बहाओ, मैं आपकी सरन हूँ।

जतन करूँ तो बन नहिं आवत। हार हार अब सरन पड़ा री।।
यह भी बात कही मैं मुँह से। मन से सरना कठिन भया री।।
सरना लेना यह भी कहना। झूठ हुआ मुँह का कहना री।।
तुम्हरी गत मत तुम ही जानो। जस तस मेरा करो उबारी।।

४ — और यह भी इसको मालूम होता है कि किस क़दर काल कर्म, मन, माया, संसारी चाहें और विघ्न बलवान हैं और उनसे मुक़ाबला करना यानी जतन और कोशिश करना, पछताना, झुरना, और रोक टोक करना, वाक़ई मन के साथ लड़ाई करना है, और मेरी कुछ पेश नहीं जाती है, सो जब यह मन से हारेगा और अपना बल पौरुष छोड़ेगा, तब राधास्वामी दयाल की सच्ची सरन लेगा। यह हालत भी अभ्यासी के ऊपर गुज़रेगी और आख़िर में इस दरजे की सरन ली जायगी। अगर किसी के अन्तर में अभी भंगार भरी हुई है और न जतन, न कोशिश मन से लड़ने के लिये करता है और शुरू में ही कहता है कि मैंने तो राधास्वामी दयाल की सरन ली है, वह आप ही मन को मारेंगे, तो यह दग़ाबाजी, झूठी और आलसपने की सरन है, इससे जो असल मतलब है वह तो निकला ही नहीं, यानी मतलब यह है कि यह अपना

जतन और कोशिश करके जब हार जाय और थक जाय और देख ले कि मेरी ताक़त मन माया से लड़ने की नहीं है, तब इसका आपा, बल और पौरुष दूर होगा और मसाला जो अन्तर में धरा हुआ है, वह भी ख़ारिज होगा और तब संसार से इस को डर, ख़ौफ़ और रंज होगा और कर्म का बोझ ढीला होगा। जब तक कर्म का क़रज़ा नहीं चुकाया है, तब तक सरन हरगिज़ नहीं ली जा सकती है, जैसा कि कहा है

सतगुरु सरन गहो मेरे प्यारे, कर्म जगात चुकाय।।

अर्थ- कर्म का महसूल चुका कर सतगुरू की सरन लो यानी जिस क़दर जिसने अपने कर्म का कर चुकाया है, उसी क़दर गोया उसने सरन ली है।

भूल भरम में सब जग पचता। अचरज बात न काहू सुहाय ।।

अर्थ - माया का परदा चढ़ा हुआ है। इसलिये भूल और भरम है और सारा जगत इसी में पच रहा है। सतगुरु की सरन लेना, जो अनोखी बात है किसी को भली नहीं मालूम होती है।

भाग हीन सब जग माया बस। यह निर्मल गति कोई न पाय।।

अर्थ- माया के बस होकर सतगुरु की सरन नहीं लेता, इसलिये सारा जगत भाग हीन है और इसीलिए यह निर्मल गति जो सतगुरु की सरन लेनी है, किसी को प्राप्त नहीं होती है।

जिस पर दया आदि करता की। सो यह अमृत पीवन चाय।।

अर्थ - मगर जिन जीवों पर कि आदि करता यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया है, वह सरन रूपी निज चैतन्य धार का अमृत रस पीने की चाह उठाते हैं।

कहाँ लग महिमा कहुँ इस गत की। बिरले गुरुमुख चीन्हत ताहि।।

अर्थ—ऐसी हालत की प्राप्ति की जो महिमा है, वह कहाँ तक वर्णन की जावे, गुरुमुखों में भी कोई बिरले उसको समझ सकते हैं। (गुरुमुख उसका नाम है, जिसने कुल संसारी प्रीतों पर मालिक की प्रीति को फ़ायक़ किया है।)

बिन गुरु चरन और नहिं भावे। इस आनन्द में रहे समाय।।

अर्थ—ऐसे गुरुमुख को सिवाय गुरु चरन के कुछ अच्छा नहीं लगता है और वह इसके आनन्द में मगन रहता है। गुरु चरन से मतलब बाहर सतगुरु स्वरूप और अन्तर में उनकी निज चैतन्य की धार यानी शब्द स्वरूप से है।

दरशन करत पिंड सुध भूली। फिर घर बाहर सुध क्या आय।।

अर्थ—दर्शन करते ही पिंड की सुध भूल जाती है यानी अपने तन की ही ख़बर नहीं रहती तो घर में या बाहर, उस के क्या हो रहा है, इस की भला क्या ख़बर रहेगी?

ऐसी सुरत प्रेम रंग भीनी। तिन की गति क्या कहूँ सुनाय।।

अर्थ—ऐसी प्रेम रंग में भीगी हुई जिन की सुरत है, उन की हालत क्या कही जा सकती है?

जोग बैराग ज्ञान सब रूखे। यह रस उनमें दीखे न ताहि।।

अर्थ—जोग से यह मतलब है कि सुरत की धार को, जो कि आँखों में है, उलटाना और चढ़ाना और चैतन्य धार से मिलाना। वैराग यानी संसार से उपराम होना और भोग विलास से वृत्ति को हटाना। ज्ञान यानी जानने और निर्णय करने की ताक़त। अगर यह तीनों भी किसी में हैं, मगर निज चैतन्य धार का जो अमृत रस है, वह हासिल नहीं हुआ है तो कुछ नहीं है और जो रस कि उस

चैतन्य धार में पाया जाता है, वह इन तीनों में नहीं है, इसलिये वह रूखे फीके हैं।

बड़ भागी कोई बिरला प्रेमी। तिन यह न्यामत मिली अधिकाय ।।

अर्थ—प्रेमियों में भी कोई बिरला प्रेमी होता है जिस को यह अमृत रस विशेष मिलता है।

राधास्वामी कहत सुनाई। यह आरत कोई गुरुमुख गाय।।

अर्थ—राधास्वामी दयाल फ़रमाते हैं कि ऐसे पूर्ण मिलाप की प्रीति के रस की महिमा कोई गुरुमुख वर्णन कर सकता है।

५ — कहने का मुद्दा यह है कि जब तक मसाला ख़ारिज़ नहीं होगा, तब तक यह हारेगा नहीं और न सरन ली जायगी और न आपा, बल, पौरुष दूर होगा। यह आपा परदा है। इसी को अहंकार कहते हैं। जब आपा दूर होगा, तब दीनता आवेगी। जब दीन होगा, तब मालिक को सर्व समर्थ समझेगा। जब तक अहंकार है, तब तक मालिक का दरशन हरगिज़ नहीं होगा। ऋषि मुनि जो थे, वे सब झूठे और अहंकारी थे, मसलन श्रृंगी ऋषि, पाराशर, नारद, उनका अहंकार तोड़ने के लिये उन की बुरी दशा की गई थी। ब्रह्म का दरशन भी जब तक नीचे दरजे का जो आपा है, वह दूर नहीं होता, तब तक नहीं होता है। ब्रह्म को भी आपा पसन्द नहीं है। इसलिए ऋषि मुनियों की इस क़दर हँसी हुई और उनको लाज लगाई कि आज तक उनकी निन्दा की बातें चली आती हैं।

६ — भक्त जनों को भी हर तरह की तकलीफ़ होती है, कहीं लड़ाई झगड़ा है, कहीं लाज लगा के और निंदा कराके उनका आपा तोड़ा जाता है। कुटुम्बियों के साथ लड़ाई झगड़ा और दुख तकलीफ़ का होना तो गोया

भक्त जन का गहना है और यह निज दया है। देखो मीरा बाई को कि कितने झगड़े टंटे उनके पीछे लगाये गये थे। जिस क़दर जिसकी भक्ति है, उसी क़दर लड़ाई झगड़ा दुख और तकलीफ़ उस के लिए पैदा किये जाते हैं। मगर संसारी लोग जैसे आपस में लड़ते हैं और कचहरी में मुक़द्दमे करते हैं, उस क़िस्म के लड़ाई झगड़े भक्तों की हालत में नहीं होते हैं, बल्कि ऐसे जिन से कि परमार्थी नफ़ा होवे। सतसंग में भींचा भींची ज़रूर होगी। कैसा ही कोई क्यों न हो, उसकी वहाँ गढ़त की जायगी। बग़ैर दुख और तकलीफ़ के काम नहीं होगा। और फिर ऐसा भी नहीं है कि रक्षा नहीं होती है। हर तरह राधास्वामी दयाल भक्त जन की सँभाल करते हैं।

बचन ८९

प्रीतम की याद का नाम प्रेम है और यही सुमिरन ध्यान है। जब तक घट में धार की आमद नहीं है, तब तक याद नहीं आती है। और इसके जतन से कुछ नहीं होता है।

१ — प्रीतम की याद का नाम प्रेम है। जब याद आवेगी तब प्रेम आवेगा। जहाँ याद है, वहाँ प्रीतम आप मौजूद है, और जब वह मौजूद है, तब याद बनी रहती है। और चूँकि प्रीतम कुल मालिक है, तो जब उसकी याद है, तब गोया उस के चरन हिरदे में बस गये। इससे भक्त जन निहायत ही मगन और सरशार रहता है। विकारी अंग इसके झड़ते जाते हैं और सकारी अंग प्रवेश करते जाते हैं। जितने कि परमार्थी काम किये जाते हैं,

उन में अगर प्रीतम की याद नहीं है तो वह फीके हैं, और जो याद है तो उन का फल भी मिलता है यानी प्रेम आता है, नहीं तो ख़ाली है।

२ — कहने का मुद्दा यह है कि जितने जतन किये जाते हैं, उन सब से मालिक की याद का असर बड़ा भारी है। जब दया की धार आती है, तब याद आती है और जब तक ऐसी हालत नहीं है, तब तक भक्ति सिर्फ़ जतन है। अगर भजन भी किया, सुरत मन भी सिमटे, और प्रीतम की याद नहीं, तो उसकी कुछ भी हैसियत नहीं है, वह करनी प्रेम से रहित है और छिलका है।

प्रेम बिना सब करनी फीकी। नेकहु मोहिं न लागे नीकी।
घट धुन रस दीजे।।

३ — प्रेम मुक़द्दम है। हर दम प्रीतम की याद करना, यह भक्ति की रीत है। इसी को ध्यान कहते हैं और यही सच्चा सुमिरन है।

गुरु याद बढ़ी अब मन में। गुरु नाम जपूँ छिन छिन में।।

खाते पीते चलते फिरते। सोवत जागत बिसर न जात।।
खटकत रहे भाल ज्यों हियरे। दर्दी के ज्यों दर्द समात।।
ऐसी लगन गुरू सँग जाकी। सो गुरुमुख परमारथ पात।।
जब लग गुरु प्यारे नहिं ऐसे। तब लग हिरसी जानो जात।।

४ — ध्यान तब होता है, जब मालिक का या उसके औतार का दरशन नर शरीर में होता है। बग़ैर दरशन के ध्यान नहीं होगा और न प्रेम आवेगा।

५ — जिस को प्रीतम की याद नहीं है, उसमें गोया ऊँचे देश की धार आई नहीं है और जिसके चित्त की वृत्ति प्रीतम के जानिब मुख़ातिब है, उसका घाट चाहे नीचा ही हो, तो भी सत्त देश की धार आकर उसमें बासा

करती है। बग़ैर धार की आमद के चाहे कितना ही सुरत मन के समेटने के लिए खैंचा तानी करे और तिल के खोलने का जतन करे, कुछ नहीं होगा। ख़याल या अनुमान करने से कभी सुरत मन नहीं सिमटेंगे, न तिल का द्वारा खुलेगा। गुरु स्वरूप का जो ध्यान करते हैं, वह स्वरूप चूँकि सत्त धार ने धारन किया है, उसका सूक्ष्म रूप जो इसके अन्तर में प्रकट होता है, वह मन के घाट का नहीं है। वह रूप भी सत्त धार धारन करती है। उस को हर दम हिरदे में धारने से तिल का ताला खुलता है।

गुरु कुंजी जो बिसरे नाहीं। घट ताला छिन में खुल जाहीं।।

कहें कबीर निरभय हो हंसा। कुंजी बतादूँ ताला खुलन की।।

दसवे द्वार कुंजी जब दीजे। तब दयाल का दरशन कीजे।।

अनहद बानी पुंजी। सन्तन हथ राखी कुंजी।।

ताते शब्द किवाड़। खोलो गुरु कुंजी पकड़।।

महल माहिं धस जाय। गुरुमुख को रोकें नहीं।।

६ — मालिक से मिलने के लिये सतगुरु गोया द्वारा हैं। बग़ैर गुरू के मालिक से मेला हरगिज़ नहीं हो सकता है। अभ्यास से अगर कोई मालिक से मिलना चाहे तो हरगिज़ नहीं मिल सकता है। जो कुछ होता है, मालिक की दया मेहर से होता है, इसके जतन से कुछ नहीं होता है। जब तक जतन करता है, मज़दूरी है, कर्म फल भुगतता है। चाहिये कि अलावा किसी जतन के अन्तर में विरह और खटक खलती रहे। जैसे पपीहा निस दिन स्वाँत बूँद के लिये पिउ प्यारा पिउ प्यारा पुकारता रहता है, वैसे ही इस को दिन रात प्रीतम के नाम की रटन

करनी चाहिये। अभ्यास का फल यही है कि तड़प और बेकली मालिक से मिलने की अन्तर में जागे और जब तक नेम से नपा तुला अभ्यास करता है, तब तक कुछ नहीं है।

जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि व्योहार।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिने तिथि बार।।

७ — सवाल - ध्यान किस तरह करना चाहिये, आपने तो जतन और जुगती को उड़ा दिया?

जवाब - जैसे किसान खेत का ध्यान करता है, सूम धन का, इस तरह ध्यान करना चाहिये। इसमें कोई ख़ास जतन और जुगत की ज़रूरत नहीं होती है। जिससे मोहब्बत है, उसका स्वरूप हर दम चित्त में समाया रहता है। यही ध्यान है, यानी प्रीतम की प्रीति और याद का नाम सुमिरन ध्यान है, और यही जतन और जुगती का नतीजा है, और यह जो जतन करता है यानी आँखें बन्द करता है और ध्यान में बैठता है, वह भी एक जुगती है, उस प्रीति को पैदा करने के लिये। जैसे माँ तकलीफ़ के वक़्त भी अपने बच्चे को दूध पिलाना नहीं भूलती है या सूम को हर दम रुपियों की याद रहती है और ख़बर है कि कै रुपये खरे हैं और कै खोटे हैं, वैसे ही इस को दुख हो, चाहे सुख, हर दम प्रीतम की याद जो बनी रहे, तो सच्चा ध्यान है। संसार में जिन की आपस में मोहब्बत होती है, उनका ज़रूर कोई न कोई ताल्लुक़ है, तब तो प्रीति करते हैं। वैसे ही मालिक से प्रीति के लिये भी ज़ाती ताल्लुक़ होना चाहिये यानी संस्कार होना चाहिये, और जैसे संसार में हालत बदलती रहती है, कभी दुख कभी सुख होता है, वैसे ही परमार्थ में भी होता है। यानी कभी रूखा फीका होता है और कभी प्रीति प्रतीत आती है। जो कि संस्कारी है उसको भी कभी सरन दृढ़ होती

है, कभी प्रेम आता है, कभी शब्द सुनाई देता है, कभी कुछ, कभी कुछ होता है। इस तरह हालत बदलती रहती है। लेकिन ऐसे संस्कारी का बन्दोबस्त मालिक आप करता है, जतन से कुछ नहीं होता है। अब इस का यह मतलब नहीं है कि जतन जुगती नहीं करनी चाहिये। अगर जतन नहीं करेगा तो आलसी हो जायगा। ऐसा बचन है कि अगर मौज पर रहोगे और जतन नहीं करोगे तो आलसी हो जाओगे। इस वास्ते मौज के आसरे जिस क़दर हो सके, जतन करते रहना चाहिये।

८ — मन इन्द्रियों के घाट पर बैठ कर मौज २ पुकारना ऐसा है, जैसे ब्रह्मज्ञानी सिद्धांत पद को हासिल किये बिना अपने को ब्रह्म ज्ञानी कहते हैं। और जैसे उन्होंने धोखा खाया, वैसे ही जो कि बिना जतन के मौज के आसरे रहते हैं, धोखा खाते हैं। जब तक कि मन इन्द्रियों के घाट के परे नहीं पहुँचा है और मौज की परख पहिचान नहीं है, तब तक जतन ज़रूर करना चाहिये। जतन में आपे की आमेज़िश है। यह समझता है कि मैं करता हूँ और आपे से मालिक को नफ़रत है। जतन में रगड़, तपन और खैंचातानी है। फिर भी जतन करते रहना और नतीजा मौज पर छोड़ना चाहिये। अगर संस्कार है तो जतन से भी फ़ायदा होता है। नहीं तो कुछ नहीं होता है। जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिये। जैसे देह का बढ़ाव होता है वैसे ही रूहानी ताक़त का भी बढ़ाव होता है यानी धीरे धीरे परमार्थी परवरिश पाने से इस में प्रीतम की प्रीति समाती जाती है और याद बढ़ती जाती है।।

* * * * * *

बचन ९०

जैसे कि कोई स्त्री अपने पति के .खुश करने को अपना सिंगार करती है, इसी तरह परमार्थी को मालिक को राज़ी करने के लिये अपना सिंगार बनाना चाहिये।

परमार्थी का सिंगार सील छिमा और दीनता है। सबसे दीनता और निर्बलता के साथ बरते। अगर लड़ाई झगड़ा भी हो तो भी दीनता और सीलता के अंग को न छोड़े। सब से प्यार और मोहब्बत रक्खे, तो उसके अन्दर से प्रेम की छींट उड़ कर दूसरे को भी सीतल कर देगी। हम लोग राधास्वामी दयाल के बच्चे मैल कीचड़ में भरे हैं। जब पिता प्यारे ने पानी डाला यानी प्रथम दया फ़रमाई, तो मैल फूला, कुछ अर्से बाद रगड़ दिया यानी गढ़त फ़रमाई और फिर जल दया का छोड़ा तो निर्मल हो गया, तब उस को पोंछ कर कपड़ा पहिनाया और तेल लगा कर ज़ेवर से आरास्ता किया और चमक दमक देकर उस को ताज पहिना कर अपनी निज गोद में बिठाया यानी पूरन प्रेम की दात देकर अपने निज चरनों में खींच लिया। जीव को चाहिये कि ऐसी निर्बलता और दीनता करे, जैसे बेंत होता है कि जिधर चाहो झुका लो या जैसे रुई साफ़ करके रक्खी जाती है कि उस में एक भी बिनौला या तिनका नहीं रहता, इसी तरह किसी क़िस्म की अकड़ पकड़ जीव में बाक़ी न रह जावे।

* * * * * *

बचन ९१

सतसंग और भजन वग़ैरा से मतलब और नतीजा यह है कि मालिक के चरनों का प्रेम हिरदे में बस जावे और उसके चरन एक छिन को जुदा न हों

मालिक से यही प्रार्थना करना चाहिये कि मुझ को न तो कोई बड़ी समझ बूझ चाहिये, न कोई ऊँचा मुक़ाम और न रचना की कैफ़ियत देखना दरकार है, मुझको तो दया करके अपने चरनों का प्रेम बख़्शिये।

चरन न भूले देह भुलानी। वाह मेरे प्यारे राधास्वामी।।

मुझ को तो हमेशा अपने चरनों में रखिये, चरनों से कभी जुदा न कीजिये।

छिन नहिं बिछड़ूँ चरन सरन से। यही दास को बख़्शिश होय।।

जो कोई सच्चे तौर से ऐसी माँग माँगता है, उस को प्रेम का किनका ज़रूर बख़्शिश होता है। देरी का सबब यही है कि अभी हमारा हिरदय इस क़ाबिल नहीं है कि मालिक का नूर झलके। जब हमारे हिरदय को अपने बैठने के लायक़ और आँखों को अपने देखने के लायक़ बना ले, तब अपने चरन कँवल विराजमान करे। जितनी परमार्थी कार्रवाई है, उसका नतीजा और फल यही है। जैसे गुलाब का पेड़ जो बोया जाता है और उस के शाख़ और पत्ते निकलते हैं और फिर फूल निकलता है और फिर उस फूल का अर्क़ या इत्र खींच लिया जाता है और जब इत्र निकल आया तो डाल और पत्ते से कुछ मतलब नहीं और इत्र खींचने के बाद वह फोक सब फैंक दिया जाता है, इसी तरह परमार्थ में जब मालिक के चरनों से मेल हुआ और हर दम उस के चरनों का प्रेम हिरदे में

बस गया, तब और परमार्थी कार्रवाई जैसे सतसंग और सेवा वग़ैरा से कुछ ज़्यादा सरोकार नहीं रहता। फिर दूसरे नम्बर पर यह कार्रवाइयाँ रह जाती हैं।

बचन ९२

दीनता सुरत का अंग है और अहंकार मन का

१ — सुरत अंतर के अंतर शब्द से मिली हुई और उसकी तरफ़ मुतवज्जह है और मन अपने ही नुक़्ते पर घूमता है और बाहर की तरफ़ रुजू है। और नुक़्ते से मतलब यह है कि मन उस चीज़ पर, जिसमें इस को नफ़े की आशा है या जिस में इस की बड़ी पकड़ और प्रीति है, घूमता है और उसी का इस को अहंकार है। चूँकि इन दोनों के असली सुभाव यह हैं, इस वास्ते इन की आपस में मुख़ालिफ़त है। क्योंकि देखा जाता है कि जो शख़्स बड़ा अहंकारी, शेख़ीबाज़, अकड़ कर चलने वाला है या कोई दिखावे का काम करता है, तो लोग उस को ना-पसंद करते हैं और ख़्वामख़्वाह तबीयत चाहती है कि किसी तरह इस का अहंकार झाड़ा जावे। वजह यह है कि इस अंग से सुरत को ज़ाती नफ़रत है, तो ज़ाहिर है कि उसके अंशी यानी मालिक को भी इस अंग से मुख़ालिफ़त और नफ़रत होगी और जब कि सब कोई दीनता को पसन्द करता है, इसी तरह मालिक को भी दीनता पसन्द होगी, इस वास्ते मालिक की यही मौज है कि जिस तरह हो सके, इस मन का आपा रेता जावे। इस मतलब से हमेशा मन के ऊपर ताड़ मार होती रहती है और कोंचा काँची बराबर जारी रहती है, क्योंकि जब

तक मन का आपा नहीं टूटेगा और दीनता न आवेगी, तब तक सुरत का शब्द से मेल नहीं होगा और मालिक का दीदार प्राप्त न होगा, सो यह कार्रवाई मालिक की ख़ास दया से भरी हुई है, लेकिन जीवों को बुरी मालूम होती है जैसा कि इस मिसाल से ज़ाहिर होगा। एक पिंजरा ऐसा ख़्याल करो कि उस में कई ऊपर तले के दरजे हैं और हर एक ऊपर का दरजा नीचे के दरजे से ज़्यादा बेहतर और आराम-देह है। अब अगर सब के नीचे के दरजे में कोई परंद मसलन एक तोता हो और उस को ऊपर के दरजे में ले जाना चाहें तो उस को कोंचा जाता है और वह उस के फ़ायदे के वास्ते है। इसी तरह इस जिस्म में दर्जे हैं और मन ऊपर चढ़ाने के लिये कोंचा जाता है। अलावा इस कार्रवाई के एक तरकीब दीनता के आने की और है। वह यह है कि मालिक के चरनों में प्रेम आवे। जब प्रेम आवेगा तो ख़ुद-ब-ख़ुद दीन अधीन हो जावेगा और तमाम आपा इसका ग़ायब हो जावेगा। अगर प्रेम की छींट भी उड़ कर लगेगी या थोड़ी सी विरह उस के दर्शनों की होगी, तो बहुत मुफ़ीद है और जल्द काम बनावेगी।

२ — मिसाल दीनता की—जैसे बच्चा कि उस में किसी तरह की मान बड़ाई और अहंकार कुछ नहीं है, कैसा सब को प्यारा लगता है, हर कोई उस को गोद में उठा लेता है। सबब यह है कि अभी सुरत उस की किसी क़दर असली हालत में है और लड़ाई झगड़ा जो मन का अंग है, उस से पाक है। सुरत दीनता स्वरूप, शब्द स्वरूप, प्रेम स्वरूप और आनन्द स्वरूप अपने में आप मगन है और यही मालिक का भी स्वरूप है। जब मन का परदा हटे, तब सच्ची दीनता ज़ाहिर हो, सो यहाँ तो पिंडी मन का परदा है, इस के ऊपर निज मन का परदा

है, उसके आगे महाकाल है, जहाँ से कि अहं शब्द प्रकट हुआ, तो जब तक सुरत ब्रह्मांड के पार न होगी, तब तक कोई न कोई आपा रहेगा और ताड़ मार भी थोड़ी बहुत जारी रहेगी।

३ — सवाल - जब सुरत दीनता स्वरूप है और मालिक भी दीनता स्वरूप है, तो यह जो बचन किसी महात्मा का है कि मालिक कहता है कि मेरे पास वह चीज़ लेकर आ, जो मेरे पास नहीं है और वह सच्ची दीनता है, इसका क्या मतलब है?

जवाब - इस दीनता से मतलब सच्ची ग़रज़मंदी से है और उस दीनता से मतलब अपने आप में मगन होने से है, सो नतीजा दोनों का आख़िर में एक ही है।

बचन ९३

प्रेम से सब रचना हुई और क़ायम है और प्रेम से ही प्रकाश है

१ — देखो सूरज और चाँद वग़ैरा में जो इस क़दर प्रकाश है, वह प्रेम की ही छटा से है और यह सूरज चाँद वग़ैरा पिंड से ताल्लुक़ रखते हैं। फिर ब्रह्मांड में किस क़दर प्रकाश और नूर होगा? और जिस क़दर प्रेम का प्रकाश होगा, उसी क़दर अँधेरा माया का कम होगा। इस सूरज और चाँद के क़रीब किस क़दर लतीफ़ माया है, फिर ब्रह्मांड में बहुत ही ज़्यादा लतीफ़ माया होगी। जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ माया का ग़लबा होगा और जहाँ प्रेम का नूर मौजूद है, वहाँ माया का अँधेरा नहीं रह सकता। सत्तलोक में प्रेम का सिंध है। वहाँ जो थोड़ी

माया है भी, तो वह भी उसके प्रताप से सत्त क़ुदरत और प्रकाशवान हो रही है। फिर जहाँ कि प्रेम का सोत पोत है, वहाँ के नूर का क्या अंदाज़ हो सकता है? वहाँ तो अँधेरे का नाम निशान भी नहीं है।

२ — जिसके घट में प्रेम प्रकट हो, उस की महिमा क्या कही जा सकती है! जब प्रेम प्रकट हुआ तो सब अँधेरा दूर हो जाता है। बानी में कहा है कि हंसों का जिस्म बारह बारह सूरज के नूर के मुवाफ़िक़ प्रकाश रखता है और हंसनियों का चार चार सूरज के मुवाफ़िक़। प्रेम सब जगह मौजूद है और सब के घट में इस का प्रकाश है। अलबत्ते इतना फ़र्क़ है कि कहीं बूँद रूप और कहीं लहर समान और कहीं सिंध स्वरूप और एक जगह प्रेम का सोत पोत है। प्रेम का प्रकाश घट घट में इसी तरह मौजूद है, जैसे दूध में घी या काठ में अग्नि। अब अगर दूध में से घी निकालना मंज़ूर हो तो उस को बिलोना चाहिये और अगर काठ में से आग निकालना चाहें तो किसी ऐसी चीज़ के पास ले जावें कि जिसमें शोला प्रकट हो। ऐसी चीज़ संत सतगुरु हैं। वही प्रेम की चिनगी इस के घट में लगावेंगे और वही उस को रोशन करने के लिये जब जब जैसा मुनासिब होगा, जतन करेंगे। जैसा कि आग रोशन करने के लिये जतन करना होता है तो जिस लकड़ी को प्रकाश स्वरूप बनाना मंज़ूर है, उसको जलती हुई लकड़ी के पास रख देना चाहिये या जो जलती हुई लकड़ी न मिले तो कई लकड़ियों को जिनमें चिनगी पड़ी हुई है, इकट्ठा रखने से भी थोड़ी देर में शोला बरामद होगा। इससे मतलब साध संग से है। साध संग से भी प्रेम की तरक़्क़ी हो सकती है, मगर जल्दी काम संत सतगुरु से ही बनेगा।

* * * * * *

भाग छठा

मिश्रित

बचन १४

आम तौर पर संत मत प्रकट किये जाने की ख़्वाहिश

१ — बाज़े सतसंगियों की ख़्वाहिश होती है कि आम तौर पर संत मत प्रकट किया जावे और कोई पैम्फ़लेट (छोटी पुस्तक) छप जावे मगर अभी मौज नहीं है। संसारी लोगों को क़दर नहीं है। पढ़ेंगे और बहुत हुआ तो कहेंगे वेरी एक्सट्रा आर्डनरी (यानी बहुत अनूठा है) और चुप करके पुस्तक ताक़ पर धर देंगे। कहने का मुद्दआ यह कि संत मत अधिकारी प्रति है, अन-अधिकारी प्रति नहीं है। जैसे अगले ज़माने में ओंकार का मंत्र सिर्फ़ अधिकारियों को बतलाते थे, अनधिकारियों को नहीं सुनाते थे, इसी तरह आम तौर पर संत मत प्रकट करने के लिये अभी जीवों का अधिकार नहीं है। वैसे तो बचन बानी स्वामीजी महाराज और हुज़ूर महराज के मौजूद हैं और और भी वक़्त मुनासिब पर होंगे। मगर लोग नाचने लगेंगे। जितनी उनकी साइंस (इल्म) की थियरीज़ (ख़यालात) हैं, सब रेढ़ हो जावेंगी।

२ — विलायत के लोग संत मत के अभी लायक़ नहीं हैं। इन की बेरूनी ताक़त बड़ी तेज़ होती है, ख़ास करके क्रोध अंग उन में विशेष होता है और रग रग उन के भरम से भरे हुए हैं। यह जब सतसंग में आवेंगे, तब बड़ी बड़ी सूरतें पैदा करेंगे और बड़े नख़रे मचावेंगे यानी मन उन का बड़ा चक्कर लावेगा।

३ — बानी में बाज़ ऐसे लफ़्ज़ हैं कि लोग समझते हैं कि हँसी की है, मगर एक एक अक्षर में गूढ़ मतलब है, मसलन

गुरु का मैं दामन पकड़ा।
छोड़ूँ नहीं अब तो जकड़ा।।

इस शब्द में जो कहा है

अब कटा क्रोध का लकड़ा।
और मरा लोभ का बकरा।।
मैं मारा मन का मकड़ा।।

इसका अर्थ यह है कि जैसे लकड़ा ख़ुश्क होता है, वैसे क्रोध भी ख़ुश्क होता है तो क्रोध को जीतना गोया ख़ुश्क लकड़ी को काटना है। लोभ से यह मतलब है कि दुनिया के सामान में तवज्जह करना। जैसे बकरा पत्ते को खाता है, कहीं इधर झक मारा, कहीं उधर झक मारा, वैसे ही संसार के जीव भी दुनिया के पदार्थों के पीछे मर रहे हैं और झुर रहे हैं, तो पत्तों को न खाना यानी दुनिया के सामान के पीछे न पड़ना, लोभ का बकरा मारना है। और मन का मकड़ा, जैसे मकड़ा जाल बिछाता है, वैसे ही मन भी जाल बिछाता है, इस को मोड़ना, यह मन का मकड़ा मारना है। प्रेम बानी के लफ़्ज़ मुशकिल नहीं हैं, मगर उनमें भी गुप्त भेद है। विद्या बुद्धि वाले अनुभवी बातों को क्या समझ सकते हैं और यहाँ बुद्धि चतुराई का काम नहीं है, यहाँ तो प्रेम का खेल है।

बुधि बल से वह करते तोल।
कभी न पावें डावाँडोल।।
यह मारग है प्रेम भक्ति का।
चलना चढ़ना सुरत शब्द का।।

* * * * * *

बचन ९५

सार बचन बार्तिक के बचन नं. २५० की शरह

१ — सार बचन नसर के २५० बचन में लिखा है कि जिस को पूरे सतगुरु मिले और वह उनकी सेवा और सतसंग और प्रीति और प्रतीत भी करता है, पर इस अरसे में पूरे सतगुरु गुप्त हो गये और उस का काम अभी पूरा नहीं हुआ यानी कुछ अन्तर में नहीं खुला, तो जो उसको चाह है कि मेरा काम पूरा होवे तो जो सतगुरु के बनाये हुए सतगुरु मिलें, तो उन से वैसे ही प्रीति और प्रतीत और उन की सेवा और सतसंग करे और सतगुरु पहले को उन्हीं में मौजूद समझे। जानना चाहिये कि पूरा काम बनने से मतलब यह है कि जिसकी सुरत ने मुख्य अंग से अन्तर में रसाई की है। और फिर उसी बचन में कहा है कि "पिछलों का अक़ीदा यानी मानता इस सबब से बे-फ़ायदा है कि उन से प्रीति नहीं हो सकती, न तो उन को देखा है और न उनका सतसंग किया, और जो सतगुरु मिले नहीं तो उन के चरनों में प्रीति नहीं हो सकती, इस वास्ते अनुरागी यानी शौक़ीन सेवक को चाहिये कि सतगुरु प्रत्यक्ष से यानी अपने वक़्त के से प्रीति करे और सतगुरु पहिले में सिवाय देह स्वरूप के भेद और फ़र्क़ न करे और अपना काम पूरा करवावे।" इस बचन में दो हिस्से कुछ आपस में ज़िद्दैन मालूम होते हैं और लोग इस पर हुज्जत करते हैं और कहते हैं कि यह बचन सिर्फ़ उन के लिये है जिन को सतगुरु का दर्शन नहीं हुआ और हम को जो सतगुरु का दर्शन सतसंग और सेवा मिली, फिर दूसरे गुरु करने की क्या ज़रुरत है, मगर यह उनकी ग़लती है। इस बचन में

जिनको सतगुरु मिले और काम पूरा नहीं बना, और जिनको सतगुरु नहीं मिले, दोनों के वास्ते हिदायत है। "पिछलों का अक़ीदा बाँधना बे-फ़ायदा है" यह उन को हिदायत है जिन को सतगुरु नहीं मिले और यह मज़मून बीच में बतौर एक दूसरे ज़िक्र के आया है, मगर उस मज़मून से जो निसबत उनके है कि जिन को सतगुरु मिले और काम पूरा नहीं हुआ, ग़ैर-मुताल्लिक़ नहीं है। असल में दोनों एक दूसरे से बड़ा ताल्लुक़ रखते हैं। अगर इस बचन में इस तरह की इबारत की ज़ाहिरी ना-मुवाफ़िक़त न होती तो निर्णय की ज़रूरत न थी। ग़रज़ यह है कि जिसको सतगुरु मिले और काम पूरा नहीं हुआ और जिसको सतगुरु नहीं मिले, दोनों के वास्ते वक़्त के सतगुरु के करने की ज़रूरत है।

२ — मालूम हो कि यह बचन लाला सुदर्शन सिंह के सवाल का जवाब है। उन्होंने स्वामीजी महाराज से ख़त में दरियाफ़्त किया था। स्वामीजी महाराज ने हुज़ूर महाराज को जवाब लिखने के लिये कहा और जो हुज़ूर महाराज ने लिखा था, वह स्वामीजी महाराज ने सुना और कहा, "ठीक है, लाला सुदर्शन सिंह को भेज दो।" जब स्वामीजी महाराज ने चोला छोड़ा, तब लोग हुज़ूर महाराज को मत्था टेकने लगे और गुरू भाव में बरतने लगे, लेकिन हुज़ूर महाराज मंज़ूर नहीं करते थे। तब लाला सुदर्शन सिंह साहब ने कहा कि आप का ही लिखा हुआ ख़त मेरे पास रक्खा है, उसमें तो ऐसा लिखा है कि जिस का काम पूरा नहीं हुआ है उस के लिये सतगुरु वक़्त की ज़रूरत है और वह ख़त ले आये। वह यह बचन है।

३ — और उसी बचन में साफ़ साफ़ कह दिया है कि जब सतगुरु गुप्त होते हैं, तब उस वक़्त किसी को

अपना जा-नशीन मुक़र्रर करके उसमें ख़ुद आ समाते हैं यानी अपने निज अंश में आ समाते हैं और किसी दूसरे में नहीं समाते, मगर लोग इस बचन को नहीं पढ़ते हैं और न पढ़ना चाहते हैं, हठ बस होके यानी अपमान का ख़याल करके नहीं मानते हैं। दूसरे जन्म में झक मार के मानना पड़ेगा।

४ — सवाल - कोई कहते हैं, जब सतगुरु गुप्त होते हैं, तब उन की सुरत सत्तलोक में जाती है, फिर वह दूसरी देह में जिस में कि आगे ही रूह है, कैसे आ समाती है?

जवाब - जैसे समुद्र में से लहर के पीछे लहर चली आती है (कराँची में तो सबने देखा था, समुद्र में बराबर एक के पीछे दूसरी लहर चली आती थी) वैसे ही भंडार से भी धार एक के पीछे दूसरी बराबर चली आती है। जो धार का आना ही बन्द हो जावे तो और बात है, मगर वह तो होगा नहीं, क्योंकि हुक्म है, सब जीवों का उद्धार करना है।

गुरु प्यारे करें आज जगत उद्धार

अगर किसी को परख पहिचान करनी हो तो कुछ दिन संग रह कर देखे। अलबत्ता करामात नहीं दिखाते हैं। सुरत मन के सिमटाव और चढ़ाई से परख पहिचान कर ले। बाज़ीगर जैसे बाज़ी करता है, वह खेल यहाँ नहीं है और न आगे ऐसा था। अलबत्ता कभी कभी अपनी बुज़ुर्गी और बड़ाई का लखाव करा देते हैं। अगर किसी को पहिचान करनी हो तो जैसे आगे की थी (यानी हुज़ूर महाराज और स्वामीजी महाराज के वक़्त में) वैसे ही अब भी कर ले, मगर हठ बस होके उस बचन को नहीं मानते हैं। कोई कहते हैं, यह बचन

स्वामीजी महाराज का नहीं है। यह उन की ग़लती है। इस का जवाब इस बचन की दफ़ा दो में आ चुका है।

५ — सवाल - इसी बचन में लिखा है कि जब सतगुरु वक़्त गुप्त होते हैं, वह उस वक़्त किसी को अपना जा-नशीन मुक़र्रर करके, उस में ख़ुद आ समाते हैं और जब मौज ऐसी कार्रवाई की नहीं होती है, तब अपने धाम में जा समाते हैं। हुज़ूर महाराज ने गुप्त होने के वक़्त अपना जा-नशीन ज़रूर मुक़र्रर किया होगा?

जवाब - हाँ, संत नित्य अवतार हैं। कोई ऐसा वक़्त नहीं कि संत नहीं होते हैं।

६ — सवाल - यह तो गुप्त संतों की बात है। प्रकट संतों की बात को गुप्त संतों से क्यों मिलाया जाता है?

जवाब - सतगुरु जब गुप्त होते हैं, तब बग़ैर सतगुरु के पिंड में रसाई, सतसंग और अभ्यास करने से हो सकती है और जीवों का काम ब-दस्तूर जारी रहता है, जैसे हम लोग सब आपस में भाई हैं, मिल कर सतसंग और चर्चा करते हैं, जब ज़रूरत होगी तब सतगुरु भी प्रकट होंगे।

बचन ९६

निर्मल बुद्धि और जहल मुरक्कब

१ — निर्मल परमार्थी बुद्धि का हासिल करना निहायत ही दुर्लभ और बड़ा मुशकिल है। थोड़ा सा परमार्थ करके अपने को पूरा समझना यह महज़ गँवारपना और नादानी है यानी एक तो न जानना और दूसरे समझना कि मैं

जानता हूँ, ये ही कम्पाउंड इगनोरेन्स (Compound Ignorance) यानी जहल मुरक्कब है।

२ — जब तक अन्तःकरन के स्थान पर, जहाँ कि मन के विकारी अंग सब मौजूद हैं, बैठा हुआ है, तब तक इस की समझ बालकपने और गँवारपने की है। इस से कहना चाहिये कि तुम औरों को क्या समझाते हो? समझाने वाला आप समझा लेगा। तुम को चाहिये कि अपने जीव के कल्याण का फ़िक्र करो।

३ — विद्या बुद्धि और चतुराई का यहाँ काम नहीं है। कुछ दिन बहू बेटे और माल असबाब का मोह छोड़ कर, चेत कर सतसंग करो तो ख़बर पड़े कि परमार्थ क्या चीज़ है। बाज़ साधू या कोई गृहस्थी इधर उधर की बातें सीख कर औरों को उपदेश देने लगते हैं यानी अपना मन तो थिर नहीं किया है, औरों को धीर बँधाते हैं और अपने लिये तो पानी प्राप्त नहीं, औरों को क्षीर बख़्शते हैं। ऐसे लोग अक्सर धोखा खाते हैं। विद्या बुद्धि और चतुराई, यह भी एक काल का विघ्न है।

विद्या भी बुधि विषय पिछानो। यह आशक्ती भली न जान।।

४ — एक तो जोश और उमंग की हालत होती है यानी क़ुदरती जोश और उमंग में राधास्वामी दयाल की महिमा और गुन गाना, यह तो मालिक की निज सेवा है। उस पर दया नाज़िल होती है। वहाँ आपा नहीं है। वहाँ जो कुछ है, राधास्वामी दयाल की मौज का इज़हार है। मगर दूसरी हालत विद्या बुद्धि और चतुराई की है। ज़रा सी बात को इधर खींचेंगे, उधर तानेंगे, मसलन कहेंगे ब्रह्म माया-सबल है, ऐसे हैं और वैसे हैं, यह आपे की कार्रवाई है। कहाँ वह हालत और कहाँ यह हालत? यहाँ आपे का बिखेर है और वहाँ प्रीति का इज़हार है।

बचन गुरु सुन २ मोहित मन। प्रीति लगी अब राधास्वामी चरनन।।

फ़ारसी में कहा है

आँकस कि नदानद व बिदानद कि बिदानद।
दर जहल मुरक्कब अबदुद्दहर बिमानद।।
आँ कस कि बिदानद व बिदानद कि नदानद।
अस्पे तरबे ख़ेश व अफ़लाक़ रसानद।।

५ — यानी जो शख़्स कि नहीं जानता है, और समझता है कि मैं जानता हूँ, वह हमेशा जहालत की हालत में रहता है और जो शख़्स जानता है और समझता है कि मैं कुछ नहीं जानता, वह अपनी ख़ुशी का घोड़ा आसमान में पहुँचाता है यानी दायमी ख़ुशी हासिल करता है।

६ — कहने का मुद्दा यह है कि जहल मुरक्कब का रोग बड़ा भारी है। अगर और न हुआ तो शायरी और तुकबन्दी होने लगी। यह भक्ति की रीति नहीं है। राधास्वामी दयाल की भक्ति करना, दीनता करना, सतसंग अंतर और बाहर करना, यह सतसंगी को चाहिये। और जहाँ कि मौज का इज़हार हो रहा है, वहाँ की बात जुदा है। वहाँ हर जगह मालिक ही नज़र आता है। आपे की गुंजाइश नहीं है।

बचन ९७

अन्तरी स्वरूप का दर्शन

१ — अक्सर लोग ख़्वाहिश करते हैं कि अन्तर में दर्शन मिले। ख़्वाहिश तो अच्छी है, मगर पूरे गुरू का दर्शन ऊँचे घाट पर होता है। जब इसका चैतन्य विशेष

होगा, तब सुरत बरामद की जावेगी। नहीं तो बीमार हो जावेगा या चोला छूट जावेगा। बाज़े वक़्त सुपने में जब ज़्यादा सिमटाव होता है, तब दर्शन होता है। मगर असल दर्शन और भी दूर है, पुकार और प्रार्थना करते रहना चाहिये। जब क़ाबलियत होगी, तब मंज़ूर होगी। वह दर्शन नीचे घाट पर नहीं होता। जब होगा, सुरत में उलट फेर हो जावेगा। काया में खलबल मच जायगी। जब कि बीमारी ऐसी होवे, जिस में तन सूख जावे, खाट से लग जावे और मन मसल मसल कर महीन हो जावे या तंगी ऐसी सख़्त होवे कि पटरा हो जावे, जिगर और हिरदा हिलने लगे, कलेजा काँपने लगे, तब अलबत्ता दर्शन हो सकता है।

घोर उठा घट भीतर भारी। उमगा हिरदा चोट करारी।
जिगर फटा दिल टुकड़े हुआ। तब राधास्वामी का दरशन लिया।।

चैतन्य धार का हटना, यही जिगर का फटना है, जैसे बीमारी में धार खिंच जाती है।

२ — इसलिये बेहतर है कि जिस घाट पर बैठा है, अभ्यास करता रहे। चाह तरक़्क़ी की रक्खे। जब वक़्त आवेगा, तब वह असल दर्शन भी हो जावेगा। ख़्वाहिश अन्तर में यही रहे कि मोहनी स्वरूप का दर्शन होवे।

मन मोहन निज रूप तुम्हारा। मेरे हिये मुकर में धर दो।।

३ — इस तरह जब थोड़ा बहुत सतसंग और अभ्यास करता है, तब इस को समझ आती है और तजरुबा होता है कि किस क़दर भारी काम है और जो कुछ होता है, मालिक की मेहर से होता है, वरना मेरे में कोई ताक़त नहीं है और जो कुछ परमार्थी लाभ फ़िलहाल हो रहा है, उस को ग़नीमत समझ कर मालिक की दया का शुकराना हर दम अदा करता रहे।

* * * * * *

बचन ९८

पूरे संस्कार का लखाव

१ — सतगुरु के सनमुख आने से ही सुरत मन का सिमटाव होवे और सहस दल कँवल में चढ़ जावे, चाहे उपदेश लिया हो या न लिया हो, इसको पूरा संस्कार कहते हैं। यह खेल और है। जब कि बीमारी हो व तन मन सूख जावें, हड्डी हड्डी की धूल उड़ने लगे, तब सुरत मन का सिमटाव हो, वह दर्जा नीचा है। अगर कोई दिन रात भजन करे, सतसंग करे, नाम का सुमिरन करे और सुरत मन का सिमटाव नहीं है, तो कर्म है। अच्छा है, करता रहे, एक रोज़ ऐसी हालत हो जायगी। और जिस में कि पूरी क़ाबलियत है यानी चेतन भरपूर है, वह सुरतवंत है। वह सतगुरु के सनमुख आते ही खिंच जाता है और अन्तर में दर्शन पाने से फ़ौरन उसकी प्रीति प्रतीत जागती है और वही संस्कारी है।

२ — जैसे भृंगी कीट की तलाश में रहता है और शब्द सुनाता है, जो कि लायक़ है, उसको अपने जैसा कर लेता है, इसी तरह अगले जो संत महात्मा हुए हैं, वह संस्कारी जीवों की खोज और तलाश में निकलते थे और उनको ही सिर्फ़ उपदेश करते थे, आम तौर पर जैसे कि अब राधास्वामी दयाल दया फ़रमा रहे हैं, उपदेश नहीं करते थे और न समझौती देते थे, मगर आज कल की नई रोशनी वाले विद्या बुद्धि के ग़ुलाम हो रहे हैं, अपनी चतुराई और बुद्धि को पेश किये बिना मानते नहीं हैं। जब तक उनकी बोली में उनको नहीं समझाया जाता है, तब तक क़दर नहीं करते।

बुधिवानों की बुद्धि हिराई। विद्यावान नहीं कुछ पाई।
बुधि और विद्या दोनों हारे। संत मते पर सिर धुन मारे।
बुधि विचार से समझा चाहें। कभी न पावें भटका खावें।

३ — रूह कोई अलेहदा ताक़त है। इस को विद्या बुद्धि वाले नहीं मानते हैं। इन का कहना है कि चन्द ताक़तों की मिलौनी से एक नई ताक़त पैदा होती है, जिस को रूह कहते हैं और वह मरने के बाद नेस्त व नाबूद हो जाती है। यह उनकी ग़लती है। जितनी ताक़तें हैं, मसलन गरमी रोशनी बिजली वग़ैरा, सब का भंडार है तो रूह का भी ज़रूर कोई मख़ज़न यानी भंडार होगा और कितनी ही ऐसी रूहें आज कल पैदा हुई हैं, जिन्होंने अपने अगले जनम का हाल बयान किया है तो ज़ाहिर है कि उनका कहना यानी विद्या बुद्धि वालों का कहना ग़लत है। सायंस वाले कहते हैं कि हवा में गरमी है, तब सोज़िश होती है, मगर क्यों ऐसा होता है, क्या इस का कारन है, इससे ना-वाक़िफ़ हैं और कहते हैं कि वज़नदार माद्दे पर आकर्षण शक्ति का असर होता है। ईथर (आकाश) बे-वज़नदार है, इस पर आकर्षण शक्ति का असर नहीं होता। और अगर सब वज़नदार माद्दे का रूप बे-वज़नदार हालत में बदल दिया जावे तो भी आकर्षण शक्ति का असर नहीं होता तो अब बतलाइये कि कैसे आकर्षण शक्ति सब ताक़तों पर हावी हो सकती है? सिर्फ़ रूह ही एक ताक़त है, जो सब पर हावी है और सब पर हुकूमत करती है।

४ — यह लोग विद्या नारी के गुलाम हैं। किसी के कहने को नहीं मानते हैं। विद्या नारी के ज़रिये से समझाए जायँ, तब मानते हैं। इसलिये इनके वास्ते सायंटिफ़िक यानी विद्या के तर्ज़ में संत मत समझाया जाता है। आगे जो संत हुए, उन्होंने मामूली तौर पर बचन कहे। अब सायंस की बोली में समझाया जावेगा।

५ — सवाल - सिर्फ़ गुरुमुख ऐसा संस्कारी होता है कि दर्शन करते ही सुरत मन सिमटते हैं या और भी जीव ऐसे होते हैं?

जवाब - और भी होते हैं, मगर बहुत कम।

बचन ९९

मौज से मुवाफ़क़त करना किस को कहते हैं

१ — उलटी सुलटी हालत में ख़ुश होके शुकराना अदा करना बल्कि दुख सुख को भूल जाना और मालिक के चरन रस में ऐसा मगन और सरशार होना कि दुख सुख की ख़बर भी न हो, इस को मौज से मुवाफ़क़त करना कहते हैं।

कभी मेहर से शहर देवें तुझे। मुनासिब समझ ज़हर देवें तुझे।।
तू चुप होके ले और सिर पर चढ़ा।तू ख़ुश हो के पी और कह यह सदा।।
कि धन २ हैं धन २ हैं सतगुरु मेरे। उतारेंगे भौजल से बेशक परे।।

२ — दृष्टांत - एक भक्त और भक्तिन किसी महात्मा के पास आया करते थे। बहुत ही सेवा और भक्ति की। एक दफ़ा महात्मा ने उनके इम्तिहान लेने के लिये कहा कि हम तुम्हारे लड़के का बलिदान लेना चाहते हैं, तुम दोनों अपने हाथ से तलवार लेकर उस का गला काटो, अगर तुम्हारी आँखों से आँसू निकला तो वह बलि हमारे काम की नहीं रहेगी। दोनों ने ख़ुशी से मंज़ूर किया। लड़के से पूछा, उसने भी बड़ी ख़ुशी से क़बूल किया बल्कि अपना भाग सराहा कि मेरा तन माँ बाप और गुरू की सेवा में काम आता है। तब वह महात्मा के

सामने आये। माँ ने दोनों हाथों से लड़के के हाथ और पाँव पकड़े और बाप तलवार चलाने लगा तो बाप की बाईं आँख से आँसू टपकने लगा। महात्मा ने कहा कि बस यह बलि अपवित्र हो गयी। उस ने कहा कि यह दायाँ हाथ तो सेवा कर रहा है और बायाँ हाथ ख़ाली है, इसलिये बाईं आँख रो रही है। गुरू सुन कर प्रसन्न हुए। लड़के को बचा लिया और तीनों पर दया दृष्टि की।

३ — कहने का मुद्दा यह है कि जैसा कि कहा है—

ज़िल्लत इज़्ज़त जो कुछ होवे। मौज विचारो कर भक्ती।।

भक्ति मार्ग में जब ज़िल्लत होती है तब तो ऐसा कहा है। फिर किसी को किसी तरह की शिकायत करने की गुंजाइश कहाँ है? मान अपमान समान समझना पड़ेगा। वहाँ कहा है—

भक्ति का मारग झीना रे।
नहिं अचाह नहिं चाहना चरनन लौलीना रे।।

४ — न तो चाह होवे, न अचाह, यानी न रग़बत होवे, न नफ़रत, साधारन सुभाव होना चाहिये। यहाँ की आस बास छोड़ के निरबास जब होगा, तब मौज से मुवाफ़िक़त कर सकता है, वरना जब तक बंधन है, तब तक मौज से मुवाफ़िक़त नहीं कर सकता।

५ — जैसे घास के ढेर में चिनगी डालने से कूड़ा करकट सब जल जाता है, वैसे ही मौज धार जहाँ प्रकट होती है, वहाँ विकारी अंग सब नाश हो जाते हैं, और अन्तर बाहर उस की कार्रवाई एक सी होती है। ऐसा नहीं कि बाहर से मौज २ कहना और क्रोध विरोध की कमान चढ़ाये रहना। जो कि सच्चे भक्तजन हैं, उन की बात निराली है। जैसे कोयल अपने बच्चे को कउवे के घोंसले में छोड़ आती है, जब बड़ा होता है, तब उसको

अपनी बोली सुना कर साथ ले जाती है, वैसे ही भक्त जन जहाँ तहाँ संसार में पलते हैं, जब वक़्त आता है, तब सतगुरू आकर सत्तदेश की बोली और भेद सुना कर उनको अपने संग ले जाते हैं।

६ — मतलब यह है कि उलटी सुलटी हालतों में मौज से मुवाफ़िक़त करना और भक्ति मार्ग में मुस्तक़िल रहना, सूरमाओं का काम है। और जो कायर हैं, उनकी जब तक ख़ातिर और ख़ुशामद होती है तब तक तो उन को भक्ति भी प्यारी लगती है और जो कहीं गढ़त होने लगी और मन के ख़िलाफ़ कार्रवाई शुरू हुई, तो भागने को तैयार हुए। भक्ति तो वह है जो उलटी सुलटी हालतों में क़ायम रहे, बल्कि क़दम और आगे बढ़ता रहे।

भक्ति भाव भादों नदी, सभी चलीं गहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय।।
भक्ति दुहेली गुरू की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारे भुइं धरे, सो लेसी सतनाम।।

बचन १००

अभ्यास का असर और संजम

१ — अभ्यास का असर यह है कि सुरत मन का सिमटाव और खिंचाव होवे। वैसे त्याग, वैराग, योग, ज्ञान, ध्यान, रहनी गहनी साफ़ और सुथरी होना, यह सब लवाज़मे हैं, मगर असल मतलब और नतीजा अभ्यास का यह है कि सुरत मन का सिमटाव होवे। बाज़े अभ्यासी घबरा जाते हैं कि क्या मामला है, हरचन्द कि गहरा रस भी आता है, सिमटाव व खिंचाव भी होता है, तो भी पता नहीं लगता है, न थाह लगती है, किस तरह

चाल चलेगी व कब मंज़िल तै होगी, अनंत तरंगें अन्तर में उठती हैं, जिन का कोई हद्दो हिसाब नहीं है।

घट समुद्र लख ना पड़े, उट्ठें लहर अपार।
दिल दरिया समरथ बिना, कौन उतारे पार।।

२ — शायर जो शायरी करते हैं, थोड़ा बहुत सिमटाव उनका भी होता है। किस क़दर लोग उन की महिमा करते हैं और योगी योगेश्वरों की गति किस क़दर भारी है। तीन लोक का भेद उन को मालूम होता है और जो कि साध और संत हैं, उन की गति अगम अगाध अपार और अथाह है। लोग समझते हैं कि छठे चक्र में पहुँचना सहज है। ज़रा अन्तर में पैठें तो ख़बर पड़े। लड़कों का खेल नहीं है। जीते जी मरना है। रग रग, बन्द बन्द, रोम रोम, अंग अंग से, हिरदे से, जिगर से, कलेजे से, फेफड़े से, जहाँ जहाँ सुरत जज़्ब हो गई है वहाँ से निकालनी है। मौत के वक़्त कौन ऐसा आला और औज़ार है, जहाँ से कि सुरत नहीं निकाली जाती है। अभ्यास में भी इसी रास्ते पर चलना होता है। विशेष अंग से जब चढ़ाई होती है तब इस तरह की हालत होती है। गुरू इस के मददगार होते हैं और बीच बीच में सहारा भी मिलता है। कबीर साहब ने कहा है।

मत तू हंसा डिगमिगे, गहु मेरी परतीत।
काल मार मर्दन करूँ, ले चलूँ भौजल जीत।।

सहेली मत तू मन में हार, दिखाऊँ जग का वार और पार।
चढ़ाऊँ सूरत उलटी धार, शब्द सँग खेय उतारूँ पार।।
गुरू को धर ले हिये मँझार, नाम धुन घट में सुन झनकार।
तरंगें उठतीं बारम्बार, भँवर जहाँ पड़ते बहुत अपार।
मेहर से पहुँची दसवें द्वार, राधास्वामी दीना पार उतार।।

खेत न छाँड़े सूरमा, जूझे दो दल माहिं।
आसा जीवन मरन की, मन में राखे नाहिं।।

अब तो जूझे ही बने, मुड़ चाले घर दूर।
सिर साहब को सौंपते, सोच न कीजे सूर।।

यह तो गत है अटपटी, सट पट लखे न कोय।
जो मन की खट पट मिटे, चट पट दर्शन होय।।

मन मारो तन को जारो, इन्द्री रस भोग बिसारो।
तुम निद्रा आलस टारो, गुरु के संग शब्द पुकारो।
सतसंग तुम नित ही धारो, गुरु दरशन नित्त निहारो।

३ — वाक़ई अभ्यास में जिन को चलाना होता है, सुरत के खिंचाव में उनको बड़ी तपिश होती है। रामकृष्ण जो बंगाल में हुए हैं, उनका जीवन चरित्र हम ने पढ़ा तो मालूम हुआ कि दिन में कुछ वक़्त गले तक पानी में पड़े रहते थे। जो कि टेकी हैं यानी थोड़ा बहुत सतसंग और अभ्यास करते हैं और बैल के मुवाफ़िक़ पड़े रहते हैं, उन की बात और है। अलबत्ता जो कि चलने वाले हैं, उनकी हालत और कैफ़ियत बयान की गई है। जब जिस की क़ाबलियत होती है, तब अन्तर में उसका सिमटाव और खिंचाव होता है और रस आता है। लड़ाई का रस सूरमा जो है, उस को मिलता है, कायर को नहीं मिलता है। इसी तरह उलटी सुलटी हालत और तन मन की चोट में भक्त जन को मज़ा आता है और जो स्वार्थी है, वह भागता है और डरता है। भीमसेन को जब तक तीर नहीं लगता था, मज़ा नहीं आता था। और भीष्म पितामह तीरों की सेज बना कर उस पर सोते थे। इस को सूर रस कहते हैं।

४ — कहने का मुद्दा यह है कि घट का भेद अथाह और अपार है। जो कि कम-हैसियत है, वह इस बात को नहीं समझ सकता है। बड़े संजम और परहेज़ करने पड़ते हैं। खान पान की भी सम्हाल करनी पड़ती है। एक

शख़्स था। उसने धीरे धीरे खाना छोड़ दिया। पहिले आध सेर खाता था। फिर डेढ़ पाव। फिर आधा पाव। छटाँक। आख़िर बिलकुल छोड़ दिया। सिर्फ़ दूध पीता था। यहाँ तक कि वह भी छोड़ दिया। सिर्फ़ एक तोला दूध पीता रहा। एक रोज़ मलाई देखी, सेर भर खा लिया। पागल हो गया। वैसे ही अभ्यासी को भी खान पान में एहतियात करनी पड़ती है। अगर किसी संसारी की या और कोई ग़ैर-मामूली चीज़ खाता है, तो हर्ज और नुक़सान होता है। जैसे नशे की चीज़ों में नशा है, वैसा खाना खाने में भी नशा है। अभ्यासी अगर ज़्यादा इस्तेमाल करे तो पागल हो जाने का ख़तरा है। मुसलमान जब रोज़ा खोलते हैं, तब पहिले शर्बत पीते हैं, उस के बाद एक दो छुहारा खाते हैं, फिर धीरे धीरे अनाज इस्तेमाल करते हैं। अगर एक दम अनाज खा लेवें तो ज़रर पहुँचने का खौफ़ है।

बचन १०१

कर्मफल

१ — कर्म जब अपना ज़ोर शोर करता है, तब ग़फ़लत आ जाती है और जीव बिचारा लाचार हो जाता है, कुछ भी उसकी पेश नहीं जाती। जैसे नशेबाज़ जब नशा पीते हैं, तब ग़ाफ़िल हो जाते हैं, अपने तन की भी उनको सुध नहीं रहती, वैसे ही जब कर्म फल उदय होता है, जीव बेबस हो जाता है। जिस मंडल में कि नक़्श पड़े हुए हैं वहाँ जब यह गुज़र करता है, तब कर्म फल जाग उठता है और भुगतना पड़ता है। काल कर्म मन माया इन्द्रियाँ, इन सब से मुक़ाबला करना पड़ता है। हमेशा

डरते रहना चाहिये। न मालूम किस वक़्त इन का इज़्हार हो। मिसालें बहुतेरी यहाँ सतसंग में मौजूद हैं। जब कर्मफल उदय हुआ और देखा कि यहाँ रहने के क़ाबिल नहीं हैं तब सतसंग से उन की अलेहदगी की गई और जब कर्म चुक जायँगे, तब फिर सतसंग में शरीक हो जावेंगे।

२ — मन का सुभाव है कि अपने में कसर नहीं देखता, औरों में हमेशा कसर देखता है। और जो कि सच्चे हैं, उनको अगर कोई उनकी कसर जता देता है तो वह उसका शुकराना अदा करते हैं।

मेरी प्यारी सहेली हो, दया कर कसर जता दो री।

३ — मौत के वक़्त सब नक़्श इस के सनमुख खड़े होते हैं। यही धर्मराय की बही है। सब के कर्म का वेग चल रहा है। सारे मंडल के मंडल का जब कर्म उदय होता है तब वबा, बीमारी और सख़्ती वग़ैरा फैलती हैं।

४ — सवाल - कै बरस तक कर्म फल भुगतना पड़ता है?

जवाब - इसका कोई नेम नहीं है। जैसा जिसका हिसाब है, उसी अनुसार भोगता है। बाज़ों का कर्म फल में चोला छुड़ाया जाता है। बाज़े सतसंग से अलेहदा किये जाते हैं। जैसे कोई ईसाई हो गया, कोई कुछ, कोई कुछ, किसी की हालत और ही हो गई, रहनी गहनी रोज़गार पेशा सब बदल गया। हरचन्द सुरत वही है और चोला भी वही है, मगर फिर भी गोया जन्म बदल गया और जब कर्म फल चुक जाता है, तब फिर सतसंग में शरीक कर लिया जाता है।

* * * * * *

बचन १०२

मौज की परख पहिचान तब आती है जब आपा दूर होता है

१ — मालिक की मौज निराली है। जिसको उस की परख पहिचान आई, वह निर्भय और दया के आसरे हो गया। कार्य मात्र संसार में उसकी कार्रवाई रह जाती है। एक मौज के साथ मुवाफ़क़त करना, सार है। और सब लवाज़मे हैं। जिस की ऐसी हालत है, उस के लिये हर दम दया की धार जारी है। मालिक दया का भन्डार है। वहाँ सिवाय दया के और कुछ नहीं है। दुख संताप जो कर्म अनुसार होता है, वह भी इसकी सफ़ाई और दुरुस्ती के लिये है। हर किसी की अपने अपने दरजे के मुवाफ़िक़ सँभाल होती है।

२ — जब मौज की इस को परख पहिचान आती है, तब मालिक को हाज़िर नाज़िर देखता है और हालत उसकी बदली जाती है। सिर्फ़ समझौती से काम नहीं होता है। और जब तक जतन और संसारी मदद की आशा है, तब तक मौज से मुवाफ़क़त नहीं कर सकता है। और जिस को कि परख पहिचान आई है, वह अगर किसी वक़्त भूल चूक भी करता है, तो भी दया उस के संग है। जब तक आपा है, तब तक मौज की परख पहिचान नहीं आवेगी और यही आपा यानी मन का मान भक्ति मार्ग में ना-शायाँ है।

मान मद त्याग करो गुरु संग।
जब लग सजनी मान न छोड़ो, तब लग रहो तुम तंग।।

३ — जब आपा दूर होता है, तब भक्ति और दीनता इस में आती है और जैसे मइया अपने बच्चे की रक्षा और

सँभाल करती है, वैसे ही राधास्वामी दयाल अपने भक्त जन की हिफ़ाज़त करते हैं। और जब यह देखता है कि हरचन्द मुझ में कोई गुण और क़ाबलियत नहीं है, तो भी राधास्वामी दयाल दया फ़रमा रहे हैं तब यह सच्चा दीन अधीन होता है, अपने को नीच और ना-लायक़ समझता है और तहे दिल से शुकराना अदा करता है। इस का शुकराना अदा करना ही प्रेम और सरन स्वरूप है। पहिले यह जब तन मन अर्पण करेगा तब अमर देश की बख़्शिश होगी। राधास्वामी दयाल महा दानी और महा दयाल हैं। पर जब यह दीन होगा और अपने को ना-क़ाबिल समझेगा तब वह दया फ़रमावेंगे।

४ — जोगी जोगेश्वर हरचंद तीन लोक की चोटी पर पहुँचे थे, पर चूँकि उन्होंने अपने को दीन और ना-क़ाबिल नहीं समझा, दरबार से ख़ारिज और महरूम रहे। इसलिये राधास्वामी दयाल शुरू में भक्त जन को दिखाते हैं और यक़ीन कराते हैं कि तुझ में कोई गुण या क़ाबलियत नहीं है, जो कुछ परमार्थी कार्रवाई तू करता है वह मालिक की मौज और दया से है। इस तरह इसके आपे की जड़ काटी जाती है और मौज की परख पहिचान आती है।

बचन १०३

सार बचन बार्तिक के बचन नम्बर ७४ पर शरह

१ — जो कोई बिना भाव के साध को खिलाता है तो उस का तो फ़ायदा है, पर साध का नुक़सान है यानी अभाव से खिलाने का मतलब यह है कि जिसको साध

की क़दर नहीं है और जो ख़ुद भक्त नहीं है यानी संसारी है, वह अगर साध को खिलावे तो साध का हर्ज है और खिलाने वाले का तो फ़ायदा ही है। जितनी चीज़ें कि हम लोग छूते हैं या हम लोगों के क़ब्ज़े में हैं, मसलन धन वग़ैरा, इन में हम लोगों के आपे का कुछ असर आ जाता है। तो जो कोई कि जिस किसी की चीज़ इस्तेमाल करता है, उस इस्तेमाल करने वाले पर उस चीज़ के ज़रिये से उस शख़्स की रूह का असर पहुँचता है जिसकी कि वह चीज़ है। अब जो वह शख़्स परमार्थी है तो उसकी चीज़ के इस्तेमाल करने वाले पर परमार्थी असर पैदा होगा और इस्तेमाल करने वाले की रूह का असर उस चीज़ वाले की रूह पर भी ब-ज़रिये उस चीज़ के पैदा होगा। अब जब कि खिलाने वाला संसारी हुआ तो जो साधू कि खाता है, उसके ऊपर भी संसारी असर पैदा होगा। इसमें साधू का हर्ज है। लेकिन चूँकि साधू अभ्यासी है, इस सबब से उस खिलाने वाले के ऊपर परमार्थी असर पैदा होगा। इस तरह से उसका फ़ायदा है और साधू का नुक़सान है।

२ — सबूत इस बात का कि जितनी चीज़ें हमारे कार-आमद या हमारे क़ब्ज़े में हैं, उनमें कुछ हमारे आपे का असर है, यह है कि जितना काम किया जाता है, सब सुरत की ताक़त से किया जाता है, तो जो चीज़ें कि हमारे पास हैं, वे इस सुरत की ताक़त से काम करने का बदला हैं, जैसे कोई पचास रुपया तनख़्वाह पाता है, तो पचास रुपया एवज़ है उसकी एक महीने की मेहनत का जो वह अपनी सुरत की ताक़त से करता है यानी जो काम कि उस पचास रुपये में लिया गया, वह बराबर है सुरत की ताक़त के जो कि ख़र्च की गई। इससे ज़ाहिर हुआ कि जितनी चीज़ें हमारे पास हैं, उन सब में हमारी

चैतन्यता का असर है, क्योंकि उनमें हमारी चित्त की वृत्ति का बन्धन है।

बचन १०४

पहिले परमार्थी चाह होनी चाहिये, फिर अभ्यास करने से जो रस आनन्द आता है, वह इसका आधार हो जाता है, फिर नशे और सरूर की जो हालत है, वह होती है, बाद इस के जब मेला होता है, तब प्रेम यानी इश्क़ पैदा होता है और बंधन सब दूर हो जाते हैं।

१ — जो कि जिज्ञासू है, वह हर वक़्त सच्चा परमार्थ और सच्चा लाभ हासिल करने की खोज और तलाश में रहता है और जब तक पूरा यक़ीन उसको नहीं होता, शांति नहीं आती है। यह जिज्ञासा की हालत भी अच्छी है। और जब भेद मालूम होता है, तब अभ्यास करके अन्तर में परमार्थी रस आनन्द आता है और फिर वह रस उसका आधार हो जाता है।

जब लग पूरा मिले न मिलानी। तब लग खोजत रहे जहानी।।
खोजन में जो दिवस बितानी। वह साधन में वृथा न जानी।।
सतगुरु पूरे जभी भिटानी। प्रेम प्रीति से सेवा आनी।।
तब वह भेद नाम दें दानी। नाम जुक्ति तुम रहो कमानी।।
नाम प्रताप मुक्ति गति पानी। बिना नाम नहिं ठौर ठिकानी।।

२ — पहिले परमार्थ की चाह होनी ज़रूरी है और जब तीव्र चाह होती है और मेला होता है, तब प्रेम की हालत होती है। शुरु में नेम से सतसंग सुमिरन ध्यान

और भजन करते हैं और जब प्रेम आता है, तब नेम की ज़रूरत नहीं रहती, हरदम लगन लगी रहती है।

जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि व्योहार।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिने तिथि वार।।

३ — जब तक नेम और आनन्द का आधार है, तब तक गोया आपे की परवरिश है। जैसे तन की परवरिश के लिये खाना खाते हैं और खाने से शांति और आराम आता है, वैसे ही शुरू में इसको आनन्द का आधार होता है और उस के न मिलने से घबराता है, मगर यह भी अपने आपे की परवरिश के लिये है, बाद इस के जल मीन की हालत होती है। शुरू में जो रस आनन्द आता है, उस में इस को आसूदगी मालूम होती और शांति आती है। शांति का आना भी अच्छा है, मगर तृप्त नहीं होना चाहिये, तड़प और विरह जगाते रहना चाहिये।

साध संग कर सार रस, मैंने पिया अघाई।
प्रेम लगा गुरु चरन में, मन शान्ति न आई।।
तड़प उठे बेकल रहूँ, कस पिया घर जाई।
दरशन रस नित नित लहूँ, गहे मन थिरताई।।
सुरत चढ़े आकाश में, करे शब्द बिलासा।
धाम धाम निरखत चले, पावे निज घर बासा।।

४ — अभ्यास में पहिले इस को रस आता है, फिर बन्द हो जाता है, तब यह घबराता है कि क्या मामला है। असल में यह दया का निशान है। इस से विरह और तड़प जागती है और चाल आगे चलती है। जैसे शराबी शुरू में एक दो घूँट पीते हैं, धीरे धीरे बढ़ाते जाते हैं, यहाँ तक कि ऐसी हालत हो जाती है कि हर दम बोतल और प्याला पास रहता है, जब चाहा तब चढ़ा लिया, वैसे ही इस को चाहिये कि सुरत को अमृत रस का घूँट पिलावे, दिन दिन सरूर और आनन्द बढ़ता ही जावे, और जैसे नशेबाज़ हर दम मख़मूर रहता है, वैसे ही

आठों पहर का ध्यान रहे। यह हालत दूसरी है। पहिली हालत में अपने आपे की परवरिश यानी आनन्द का आधार होता है और दूसरी में आठों पहर का ध्यान होता है। प्रेम और भी आगे छिपा हुआ है यानी पूरा प्रेम यह भी नहीं है। जब दरशन होता है तब ऐसा प्रेम आता है। जब तक मेला नहीं है, तब तक सिर्फ़ आनन्द का आधार है।

५ — पहिले चाह, पीछे हाजत, फिर नशे की हालत और इस के बाद इश्क़ पैदा होता है।

गुरु प्रीति बढ़ी चितवन में। सुर्त खैंच धरी चरनन में।।
मेरी दृष्टि हरी दरशन में। अब प्रेम बढ़ा छिन छिन में।।

६ — यानी दृष्टि जो कि दर्शन कर रही है, वह भी हर गई तो बाक़ी क्या रहा, प्रेम ही प्रेम रहा। यह पूरे प्रेम की सूरत है।

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

नर रूप दिखावें जब ही। मन खैंच चढ़ावें तब ही।।
दे मदद बढ़ावें आगे। मन जुग जुग सोया जागे।।

७ — मन जब जागेगा, तब अंतर में चलेगा, तिल का ताला टूटेगा, चरनों से मेला होगा और प्रेम प्रकट होगा। प्रेम यानी इश्क़ का दरजा बड़ा भारी है। आपे की वहाँ गुंजाइश नहीं है। जब तक अन्तःकरन यानी आपे के घाट पर बैठा हुआ है, तब तक प्रेम से रहित है और करनी भी फीकी है।

प्रेम बिना सब करनी फीकी। नेकहु मोहिं न लागे नीकी।
घट धुन रस दीजे।।

८ — एक अंग इश्क़ का और बाक़ी रह गया, उसका थोड़ा सा निर्णय करते हैं और वह अंग आवरन का है यानी पाँच कोष हैं, उनमें तन और मन का कोष

भारी है, इनको दूर करना पड़ता है, यानी तन मन इसके जरजर हो जाते हैं, हड्डी हड्डी की धूल उड़ाई जाती है, तन मन इन्द्री सूख जाते हैं, तब इश्क़ की आमद होती है, शब्द सुनाई देता है, और अन्तर में चढ़ाई होती है।

क्या कहूँ मिले गुरु भारी। उन भेद दिया पद चारी।।
मैं पिऊँ शब्द रस सारी। मेरे लगा ज़ख़्म अब कारी।।
मन तन पर फिरती आरी। क्यों जीऊँ जिवना हारी।।
तब दया करी गुरु न्यारी। अब दीना शब्द सम्हारी।।
मैं चढ़ गई गगन अटारी। वहाँ खेलूँ नित्त शिकारी।।

९ — बाहरी ज़ख़्म दायमी नहीं है। चैतन्य धार के खिंच जाने से माया उस के लिये तड़पती है। इससे तपिश होती है। फिर जब धार की आमद होती है, तब तपन दूर हो जाती है और ज़ख़्म रफ़ा हो जाता है। और अन्तर का जो ज़ख़्म है, उस पर जब नाम की धार यानी विशेष चैतन्य धार आती है, तब शान्ति होती है और शीतलता हिरदे में समाती है।

सतगुरु अब करें सम्हारी। तब हिरदे घाव पुरारी।।
मोहिं नाम देहिं निज सारी। यह मरहम नित्त लगा री।।
राधास्वामी करें दवा री। मैं उन पै जाउँ बलिहारी।।

१० — दया से ममता और बन्धन सब दूर हो जाते हैं, मसलन लड़के से मुहब्बत है तो लड़का लड़ाका हो जाता है, कार्रवाई उसकी अनाप शनाप हो जाती है, सामने जवाब देता है, जिससे रंज और अफ़सोस होता है, और प्यार के बदले विरोध की धार अन्तर में उठती है। अगर किसी का दोस्त आशना वग़ैरा में बन्धन है तो उनसे भी जब तवज्जह अन्तरमुख होती है, इस क़दर नफ़रत आ जाती है कि सब पुराने दोस्त आशना और हिमायती जमदूत नज़राई पड़ते हैं। कहने का मुद्दा यह है

कि जतन और कोशिश करते रहना चाहिये। हरचन्द इसके जतन से कुछ नहीं होता है, सब बख़्शिश और दया से होता है। इसलिये मेहर दया के आसरे कार्रवाई करते रहना मुनासिब है तो जीते जी अपनी मुक्ति आँखों से नज़र आ जावेगी।

बचन १०५

भजन का आसन

१ — भजन का आसन जो राधास्वामी मत में बतलाया गया है, वैसा और किसी मत में नहीं है। यह आसन क़ुदरती है और उसका गुप्त भेद यह है कि जब कोई भजन में बैठता है तो गोया हलक़े बाँधता है। पहिला हलक़ा पाँव से कमर तक बँधता है। दूसरा कमर से कन्धों तक। तीसरा कन्धों से कानों तक। चौथा कानों से आँखों तक होता है। सुरत उतरते वक़्त पेचदार आकार यानी घूम के साथ हलक़ा बाँधती हुई चली आई है। फिर चढ़ती भी इसी तौर से है।

२ — पिंड में तीन धारें हैं। इंगला पिंगला और सुखमना। दायें बायें की जो शाख़ें हैं, वे पहिले सिमटती हैं। फिर दाईं बाईं धारों को जोड़ कर सुरत की बैठक पर मिलाने से एक धार होकर रवाँ होती है। जैसे बिजली के जब दो सिरे मिलाते हैं, तब धार चलती है, वैसे ही दायें बायें तरफ़ की दो धारें जब सुरत की बैठक पर मिल कर सुखमना के साथ एक होती हैं, तब धार ऊपर चढ़ती है।

३ — बिजली के दो सिरे यानी दायाँ और बाँया क़ुतुब कहलाते हैं। एक को पाज़िटिव (Positive) दूसरे

को निगेटिव (Negative) कहते हैं। जब हल्क़ा पूरा बँधता है, तब बिजली की धार रवाँ होती है, यानी बिजली की धार चलाने के लिये पहिले हलक़ा पूरा होना ज़रूर है, और हलक़े जितने ज़्यादा होंगे, उतनी ही आसानी से धार रवाँ होगी। संतों के सुरत शब्द अभ्यास का आसन क़ुदरती तौर पर ऐसे भारी फ़ायदे का है कि इससे जिस्म में अनेक हलक़े बन कर बिजली यानी चैतन्य की धार सहज में खिंचनी शुरू हो जाती है, चाहे वह ज़्यादा मालूम पड़े या नहीं।

४ — इस आसन का नाम कुक्कुट आसन है क्योंकि यह आसन मुरग़ी की बैठक से मिलता है। जैसे मुरग़ी के अंग अंग बैठक की हालत में मुड़े रहते हैं, वैसे ही अभ्यासी के अंग अंग अभ्यास के आसन में मुड़े रहते हैं। बैरागन लाचारी की हालत में काम में लानी चाहिये।

बचन १०६

जैसे कि आज कल विद्या वग़ैरा के मदर्से हैं, इसी तरह संतों ने फ़क़ीरी का स्कूल भी जारी किया है

१ — सच्चे फ़कीरों की महिमा तो लोग बयान करते हैं कि जिस पर वह दृष्टी डाल दें, उसका काम बन जावे, लेकिन यह ताक़त उन को किस तरह हासिल होती है, इस का हाल उन को मालूम नहीं है। संत मत में यह ताक़त सुरत चैतन्य के अभ्यास कराने से जगाई जाती है। विद्या भी कई बरस में अभ्यास करने से कुछ

हासिल होती है तो सुरत की ताक़त भी, जो आला दर्जे की ताक़त है, और जिस का हासिल करना आसान बात नहीं है, बरसों बल्कि कई जन्म में पूरी पूरी हासिल होगी।

२ — सवाल - बाज़ वक़्त निहायत तड़प पैदा होती है और यह दिल चाहता है कि किसी तरह जल्दी हासिल हो जावे।

जवाब - जिस किसी के मन में ऐसी विरह और तड़प पैदा हो, उस के लिये गरम घर (Hot House) भी अन्दर में बनाया जाता है। जैसे कि यहाँ कोई फल बग़ैर मौसम ख़ास के नहीं पक सकता मगर गरम घर (Hot House) मामूल से ज़्यादा गर्मी पहुँचा कर और निगहबानी ज़्यादा करके जल्दी दरख़्त से फल पैदा कर लिया जा सकता है और जैसे मदारी एक दम बीज बो कर दरख़्त खड़ा कर देता है, इसी तरह संत भी किसी किसी हालत में जल्दी कारज बनाते हैं, मगर यह ख़ास ख़ास जीवों का हाल है, आम तौर पर तो क़ायदे के मुवाफ़िक़ चार जनम में काम पूरा होगा।

३ — सवाल - हु.ज़ूर महाराज के वक़्त में जो सतसंगी कि सिर्फ़ प्रसाद और चरनामृत लेना परमार्थ जानते थे और मिस्ल छोटे बालक के, हु.ज़ूर उन की निगहबानी फ़रमाते थे, तब तक उन को अन्तर में कुछ मदद नहीं मिलती थी। अब हु.ज़ूर महाराज के गुप्त होने पर वह क्या करें, अभी मिस्ल छोटे बच्चों के उन को ज़्यादा बाहरी मदद दरकार है, आप फ़र्माते हैं कि अन्तर में लगें, मगर जो बालक कि सिर्फ़ दूध पीता है, उसको अगर रोटी दी जावे तो वह किस तरह खा सकता है?

जवाब - अन्तर में शब्द क्षीर पिये, और अगर बच्चे ने ज़्यादा दूध पी लिया है तो बाप या माँ उस को थोड़ी देर दूध नहीं देते हैं, ताकि पहिला दूध हज़म हो जावे। और आहिस्ता आहिस्ता अंग को बढ़ने देते हैं। अगर एक दम उस के अंग ज़्यादा बढ़ जावें तो वह बालक राक्षस कहलाता है। इसी तरह जब मुनासिब होगा, फिर बाहर की सब कार्रवाई जारी हो जावेगी।

बचन १०७

अभ्यास से फ़ायदा बराबर होता है गो कि अभ्यासी को कभी २ मालूम न हो

जो कोई कि बिजली की कल पर बैठा है, उस को ख़ुद अपने में बिजली समाती हुई नहीं मालूम होती। रात को उस के बाल दूसरों को रोशन मालूम होते हैं और जो उंगली उस के पास की जावे तो चिनगारी भी निकलती है, इसी तरह बाज़ वक़्त जहाज़ में जब कि हवा में या बादलों में बिजली का असर ज़्यादा हो तो जहाज़ के कंगूरों पर या उन लोगों को जो जहाज़ पर हैं, रोशनी चलती हुई नज़र आती है, ऐसे ही जो अभ्यास रूहानी करते हैं, उन को बराबर फ़ायदा होता जाता है और मालिक की दया समाती जाती है, मगर उन को मालूम नहीं होता, लेकिन जब कभी ज़्यादा दया होती है तो अन्तर में शब्द यकायक झनकारता है या स्वरूप का दरशन मिल जाता है और यह बात जब चित्त एकाग्र होता है, तब अक्सर होती है। जैसे कि बिजली की कल थामने वाले को एक स्टूल पर जिस के चारों पाये शीशे

के होते हैं (और इसका फ़ायदा यह है कि जो बिजली बदन में हो कर आती है, वह ब-वजह शीशे के पायों के कि शीशा बिजली को रोकता है, निकलने नहीं पाती है) खड़ा किया जाता है, इसी तरह अभ्यासी को एक स्टूल पर बिठाया जाता है कि जिस के चार पाये दोनों आँखें और दोनों कान हैं यानी जब यह बन्द किये गये तो शब्द दया का सुनाई देता है। मतलब यह है कि अभ्यास से फ़ायदा बराबर होता है और दया और मेहर मालिक की बराबर जारी है, गो कि अभ्यासी को कभी कभी मालूम न हो।

बचन १०८

दया के दर्जे

१ — अव्वल दर्जे की दया यह है कि जीव को सतसंग में हर्ष पैदा हो और संसार से तबीयत उदास हो और हटती जावे और बार बार सतसंग की हाज़िरी का शौक़ हो और सतसंग के बचन, निर्णय मत के या रचना के, सुन कर तबीयत मगन हो और यह ख़्वाहिश हो कि और बचन हों और ख़ूब मत का निर्णय हो और इस मत को मैं ख़ूब समझ लूँ और राधास्वामी दयाल के दरशनों का तेज़ शौक़ पैदा हो और जो अभ्यास बताया जावे, उस में ख़ूब रस आवे और यह ख़्वाहिश हो कि जहाँ तक फ़ुरसत मिले, अभ्यास और सतसंग करूँ। यह हालत अव्वल बड़ी दया की है।

२ — दूसरे दर्जे की दया यह है कि सतसंग में उस को ख़ुशी मालूम हो और संसार से भी चित्त कुछ हट

गया हो और सतसंग के बचन उस को प्यारे लगें और मत को समझने की ख़्वाहिश हो और परमार्थ की क़दर चित्त में अच्छी तरह आ जावे, लेकिन अभी अभ्यास में जैसी चाहिये, तबियत न लगती हो, लेकिन इस बात की ख़्वाहिश हो कि अन्तर में रस आवे और राधास्वामी दयाल के दरशन प्राप्त हों। जिस की ऐसी हालत है, वह दया पात्र है। ग़रज़ कि ख़्वाहिश परमार्थ की दिल में पैदा होना, यही दया है और समझना चाहिये कि जड़ जम गई। किसी वक़्त में ज़रूर कुल्ला फूटेगा और शाख़ें और पत्ते और फूल व फल नमूदार होंगे। जिस पर पहिले दरजे की दया है कि जिस का बयान ऊपर हुआ है, उस को समझना चाहिये कि कुल्ला फूट कर निकला और शाख़ और पत्तों की तैयारी है। अगर परमार्थ की क़दर दिल में समा गई और कभी कभी ऐसी ख़्वाहिश भी दिल में पैदा होती है कि अभ्यास ख़ूब करें तो भी जड़ पुख़्ता जम गई है और ज़रूर एक दिन कुल्ला फूटेगा और शाख़ और पत्ते निकलेंगे।

बचन १०९

सतगुरु के गुप्त होने में भी मसलहत है। सतसंगी हो के भी ना-जायज़ कार्रवाई करना या करम भरम में अटकना निहायत अफ़सोस की बात है।

१ — राधास्वामी मत का भेद जिस तौर से कहा गया है, निहायत साफ़ है। जैसे मदरसे के लड़के नोट लिखते हैं और कोई बात उस्ताद की नहीं समझते हैं तो क्लास

से जब उठते हैं, आपस में बात चीत करके निर्णय करते हैं, वैसे ही अभ्यासी डर और अदब से जो गुरू से कोई कोई बात नहीं दरयाफ़्त कर सकते हैं तो फिर जब आपस में मिलते हैं, तब बहस मुबाहसा करके अपने शक शुबहे दूर कर लेते हैं। अभ्यासी गोया शागिर्द है और सतगुरु उस्ताद हैं और जहाँ लड़के आपस में मिलते हैं, वह बोर्डिंग हाउस है। लड़कों की बात लड़के समझते हैं। उनके बीच में अगर कोई दाढ़ी वाला आकर बैठे तो वह डर के सबब से भाग जायँगे और जैसे लड़कों को आपस में बातचीत करने का मौक़ा देने के लिए मास्टर आप ही बाहर निकल जाता है तो लड़के खुल कर आपस में बातचीत करते हैं, वैसे ही जब ज़रूरत समझते हैं, सतगुरु भी गुप्त हो जाते हैं। सतगुरु के सामने सतसंगियों को हिजाब होता है। इसलिये जब वह गुप्त होते हैं, तब सतसंगी आपस में मिल कर जो जो बारीक बातें हैं, उन की चरचा करके हल करते हैं। यह साध संग कहलाता है। जो बात कि इस तौर से निर्णय नहीं होती, वह इलहाम यानी अनुभव से हल होती है, क्योंकि राधास्वामी दयाल घट घट में मौजूद हैं और अन्तर में निज रूप से मदद दे रहे हैं। जब मौज होती है, तब प्रकट रूप से कार्रवाई करते हैं। जैसे मास्टर फिर दर्जे में आता है और जो कोई उस की ग़ैर-हाज़िरी में शरारत करता है, उसको बैंच पर खड़ा कर देता है या बेंत लगाता है, वैसे ही जो कि सतगुरु के गुप्त होने के बाद मत को छोड़ देते हैं या फ़िज़ूल शक शुबहा उठाते हैं, उन की राधास्वामी दयाल ताड़ मार और कूटा पीटी करते हैं। जैसे लड़के आपस में मास्टर के पीठ पीछे एक दूसरे को फटकारते हैं कि तुम पढ़ते नहीं हो, अपने बाप से मुफ़्त रुपया वग़ैरा लेते हो, वैसे ही सतसंगी भी आपस में एक दूसरे को समझौती देते हैं।

२ — राधास्वामी मत की समझ बूझ आजावे, फिर भी करनी न करे यह निहायत अफ़सोस की बात है। यहाँ कोई घर बार नहीं छुड़ाया जाता है। ख़ुशी से गृहस्थ आश्रम में रहो, अपना मामूली कारोबार भी करो और परमार्थी कार्रवाई भी करते रहो। सिर्फ़ दो बातों की मुमानियत है; एक नशा, दूसरे गोश्त। और इन छः बातों से परहेज़ करना चाहिये।

जूआ, चोरी, मुख़बिरी, ब्याज, घूस, पर नार।
जो चाहे दीदार को, एती वस्तु निवार।।

और सतसंगी होके फिर भी ऐसे काम करना, जिन से संसारी भी नफ़रत करते हैं, बड़े शर्म की बात है।

३ — कितने सतसंगी जो हुज़ूर साहब के सन्मुख नाचते थे और चरनामृत परशादी का सहारा रखते थे, कहते हैं कि हुज़ूर साहब गुप्त हो गये, अब हमारी तरक़्क़ी बन्द हो गई। उन की समझ ग़लत है, गुप्त होने में मौज थी और उस में फ़ायदा था। अगर गुप्त न होते तो सतसंगी कैसे आपस में मिलते और कैसे बारीक बातें मसलन राधास्वामी नाम और रूप वग़ैरा के नुक़्ते हल होते? जीव निहायत बहिरमुख हो रहे थे। ग्रास चरनामृत और परशादी में अटक गये थे। इसलिये उन को अन्तर में लगाने की मौज थी। अब उन से पूछो कि पहिले जब तुम संसार में सिर पटकते थे तब वहाँ से तुम को खैंचा और सम्हाला और चरनों में लगाया तो फिर कैसे छोड़ेंगे?

४ — सतसंग में शामिल होने के बाद भी पुरानी लीकें नहीं छोड़ते हो तो फिर रंग कैसे चढ़ेगा? अलबत्ता जो ज़रूरी काम हैं, मसलन ग़मी शादी वग़ैरा, उन में शामिल होना तो मना नहीं है, मगर जिस काम में न तो बिरादरी का डर है, न कोई देखने वाला है और न

परमार्थी फ़ायदा है, उसमें भी अटकना और उलझना जैसे एकादशी व्रत रखना, तिथि त्यौहार मानना और सगुन साइत देखना, यह ना-मुनासिब है।

५ — राधास्वामी मत समझ बूझ कर फिर भी करम भरम में अटकना, बड़े शरम की बात है। इन लोगों से पूछो, क्या तुम ने राधास्वामी मत को समझा, अगर सच्चा मत है तो उसी के मुवाफ़िक़ करनी करो और जो झूठा है तो छोड़ दो। बाहर में कहते हो कि हम राधास्वामी को ही मानते हैं और अन्तर में देव और देवी को पूजते हो। ऐसे जीवों पर कैसे दया आवेगी और कैसे रंग चढ़ेगा? भला सोचो कि अगर किसी की औरत औरों से अपने मर्द के सामने लगावट करे तो कैसे उसका ख़सम उससे राज़ी होगा?

नारि कहावे पीव की, रहे और सँग सोय।
यार सदा मन में बसे, ख़सम ख़ुशी क्यों होय।।

६ — सच कहना ठीक है। इसमें किसी को बुरा मानना नहीं चाहिये।

साधू ऐसा चाहिये, साँची कहे बनाय।
कै टूटे कै फिर जुड़े, बिन कहे भर्म न जाय।।

बचन ११०

जहाँ आपा यानी ख़्याल और चाह है वहाँ मौज की गुंजाइश नहीं है

१ — जिसमें जैसा नक्श और ख़्याल है, वैसी उस की कार्रवाई होती है और उसी अनुसार उसके संगी साथी होते हैं। मसलन चोर है, ख़्याल भी उसके चोरी के

और संगी साथी भी चोर ही होते हैं। अब परमार्थी का क्या हाल है, इसको देखना चाहिये। धार आई तो कार्रवाई कर सकता है, नहीं तो सूखा साखा रहता है यानी उसमें कोई अपनी चाह नहीं है। संसारी लोगों को जो ख़्याल उठा, उसी को पकड़ लेते हैं और उसमें उनका बन्धन होता है। पर जो साध महात्मा हैं, उनको कोई बन्धन नहीं है। वहाँ मौज की धार कार्रवाई करती है और जो उनके साथी हैं, उनमें भी थोड़ी बहुत मौज कारकुन रहती है।

२ — जहाँ ख़्याल और नक़्श अकड़ा हुआ है, जकड़ा हुआ है, पकड़ा हुआ है और रगड़ा हुआ है, वहाँ मौज की गुंजाइश भला कहाँ है? जो कि बाल दशा है यानी निष्कपट निर-आपा और निर-अहंकारी है, वहाँ अलबत्ते मौज कारकुन है। उसमें ख़्याल आया और गया, कोई बन्धन नहीं है। इस तरह ख़्याल और चाह का जानना और नब्ज़ को पहचानना चाहिये। जहाँ रुकावट है, वहाँ बिजली रवाँ नहीं होती है, तोड़ फोड़ कर देती है। इसलिये जिस घट में कि ख़्यालात और चाहें भरी हुई हैं वहाँ मौज की धार रवाँ नहीं हो सकती और तोड़ फोड़ करने की मौज नहीं है। और जो मौज की कार्रवाई है उसमें कोई रोक टोक नहीं होती।

३ — कहने का मुद्दा यह है कि धार की आमद पर सब मुनहसिर है। धार आई तो प्यार और खातिरदारी सतसंग में होती है और जो सिमट गई, तो नहीं होती। फिर जब धार आती है तो वही प्यार और खातिरदारी होने लगती है और जिस बाइस से कि नहीं होती थी, उस की वहाँ याद भी नहीं है, क्योंकि पूरे गुरू में न नफ़रत है, न रग़बत। वहाँ तो महज़ धार की कार्रवाई है,

पर जहाँ कि चित्त में बन्धन और चाह है, वहाँ नफ़रत और रग़बत है।

चाह दुनिया की करे मन को सियाह।
गुरु से गुरु को माँग मत कर और चाह।। १ ।।
जिस क़दर तुझ को है मालिक से पियार।
उस से ज़्यादा तुझ से वह करता है प्यार।। २ ।।
पर तुझे उसकी परख होती नहीं।
मेहर की उसके ख़बर होती नहीं।। ३ ।।

बचन १११

मौज

१ — जो मालिक की मौज है वही संतों की मौज होती है। और उनकी मौज की परख पहिचान करना मुहाल है।

२ —क़ुदरती कारखाना देखने से मालूम होता है कि जब न कोई बात है न कोई सामान या ख़्याल है, अचानक ऐसी हल चल और खलबली मच जाती है कि अचरज मालूम होता कि कैसा करतार है, मसलन बारिश का न होना, आग का लगना, भूडोल का आना। बीमारी वग़ैरा मुसीबतें जो नाज़िल होती हैं, उनको देख के अक़ल दंग हो जाती है। किसी सूरत से उस करतार की मसलहत समझ में नहीं आती। इसी तरह साध महात्मा जो कि उसके शरीक हैं, उन की कार्रवाई की भी अगर कोई परख पहिचान करना चाहे तो नहीं कर सकता है। बानी में लिखा है कि अगर कोई किताबों से या चाल ढाल से संतों की परख पहिचान करना चाहे, तो हरगिज़ नहीं कर सकता है। वह जान बूझ कर अपनी रहनी

गहनी और चाल ढाल में दो चार बातें ऐसी दिखा देते हैं, जिससे दुनियादार उन से दूर रहें। जैसे एक सड़ी हुई मछली सारे तालाब में बदबू कर देती है वैसे ही सतसंग में अगर कोई दुनियादार आके बैठे तो सारा सतसंग गदला कर देगा। इस लिये संत जान बूझ कर अपनी निंदा कराते हैं और वही निंदा चौकीदारी का काम करती है।

पर यह बात बड़ी अति झीनी। संत करावें निन्दा अपनी।।१।।
निन्दा चौकीदार बिठाई। कोई जीव धसने नहिं पाई।।२।।
बिरला जीव होय अनुरागी। निन्दा से वह छिन छिन भागी।।३।।
निन्दा सुन सुन चित नहिं धारे।संतन की यह जुक्त विचारे।।४।।

मलामत शहनए बाज़ारे इश्क़स्त।
मलामत सैक़ले ज़ंगारे इश्क़स्त।।

और भी कहा है—

दरे दरवेश रा दरवाँ न बायद।
बिबायद ता सगे दुनिया न आयद।।

अर्थ - फ़क़ीर के दरवाजे पर चौकीदार नहीं चाहिये। चाहिये, ताकि संसारी कुत्ता न आने पावे।

३ — किस मसलहत और मौज से मालिक और संत कार्रवाई करते हैं, उसकी पहिचान कोई नहीं कर सकता है। जब तक कि मन बुद्धि के स्थान पर बैठा हुआ है, मौज को समझना ना-मुमकिन है।

भेद मोहिं गुप्त दिया जब ही। हरे मेरे मन बुद्धी तब ही।।

पहिले जिस ने अपना घर दीन्हा उजाड़।
पाई फिर गुरु प्रेम की दौलत अपार।।

गुरु उलटी बात बताई। मूरखता ख़ूब सिखाई।।

४ — जैसे छोटे बच्चे को बोलना सिखाया जाता है, वैसे ही इस को मौज से मुवाफ़क़त करना सिखलाया जाता है। बच्चा पानी को पहले "मम" कहता है, पीछे जब कुछ समझ आती है, तब 'मानी' कहता है और बाद इसके "पानी" कहता है। लेकिन यहाँ तो शुरू में इसको "मम" कहना भी नहीं आता, सिर्फ़ पुकारता या चिल्लाता है। मइया उसकी ज़रूरत को समझ लेती है और पानी पिलाती है। ऐसे ही मौज मौज बहुत कहता है, गो मौज की इसको ख़बर भी नहीं है।

५ — कहने का मुद्दा यह है कि जब तक आपा है और दुख संताप या कर्म के घेरे में है, तब तक मौज की परख पहिचान और मुवाफ़क़त करना मुश्किल है।

गुरु प्यारे की मौज रहो तुम धार।।टेक।।
वे हर दम तेरी दया विचारें।
निस दिन रक्षा करें सम्हार।। १ ।।
हँगता ममता भूल और भर्मा।
मन के निकारें सबहि विकार।। २ ।।
जिस में तेरी होय भलाई।
स्वारथ और परमारथ सार।। ३ ।।
वैसी ही करें मौज दया से।
दोऊ में हित मानो यार।। ४ ।।
चाहे मन माने या नाहीं।
मौज गुरू की दया निहार।। ५ ।।
जिस विधि राखें वहि विधि रहना।
शुकर की रखना समझ विचार।। ६ ।।
ऐसी समझ धार रहे मन में।
सो निरखे गुरु मेहर अपार।। ७ ।।
राधास्वामी समरथ और न कोई।
चरन पकड़ धर प्रेम पियार।। ८ ।।

* * * * * *

भाग सातवाँ

।। सवाल व जवाब ।।

सवाल १—शब्द कैसे प्रकट हुआ और पहिले कहाँ था?

जवाब—भंडार से जब धार रवाँ हुई, तब शब्द प्रकट हुआ। पहिले उस में गुप्त था। जहाँ हरकत है, वहाँ शब्द प्रकट है।

जस अग्नी तदरूप पखान। तस तदरूपी शब्द अनाम।।

सवाल २—चैतन्य शुद्ध है, फिर अपवित्र कैसे हुआ?

जवाब—

जस जल परत भूमि गदलाना। तस जिव माया सँग लिपटाना।।

यानी जैसे पानी ज़मीन पर पड़ने से गदला हो जाता है, वैसे ही चैतन्य माया के साथ मिलने से मैला होता है।

सवाल ३—अनहद शब्द किस को कहते हैं?

जवाब—असल में लफ़्ज अनाहत है। जिसका आहत या कारन नहीं है, उस को अनहद कहते हैं यानी जो आप से आप हो रहा है।

आदि और अन्त उसका है बेहद। इस सबब से कहें उसे अनहद।।

चैतन्य शक्ति के इज़हार को ध्वन्यात्मक शब्द या नाम कहते हैं। और शब्द जो लिखने और पढ़ने में आता है, उसको वर्णात्मक नाम कहते हैं। जो लीलाधारी का नाम है, वह सिफ़ाती है, ज़ाती नहीं है, जैसे गिरधारी मुरारी गोपाल वग़ैरा। गिर यानी पहाड़ को कृष्णजी ने उँगली पर उठाया, तब गिरधारी नाम उनका हुआ और

मुरा दैत्य को मारा, तब मुरारी उनका नाम हुआ और गौओं को पालते थे, इस लिए गोपाल नाम हुआ। पातंजलि योग शास्त्र में शब्द की महिमा की है, मगर यह नहीं निर्णय किया है कि कौन शब्द खेंचने वाला है और कौन नीचे गिराने वाला है।

जो निदा खेंचे है ऊँचे को तुझे।
जान वह धुन आई ऊँचे से तुझे।।
सुन के जो आवाज़ जागे कामना।
काल की आवाज़ है घर घालना।।

सवाल ४—अनामी पुरुष में विकार कैसे हुआ?

जवाब—असल में विकार नहीं है। वह भी चैतन्य है। मगर कमी बेशी का फ़र्क़ है जैसे इस सूरज के सामने एक चिराग़ जला कर रख दो तो बिल्कुल अँधेरा मालूम होगा या जैसे यह सूरज दूसरे सूरज के सन्मुख जो कि हज़ार गुना विशेष प्रकाशवान है, धुँधला मालूम पड़ेगा, मगर हैं दोनों प्रकाशवान, सिर्फ़ कमी बेशी का फ़र्क़ है, ऐसे ही अनामी पुरुष के नीचे और ऊपर के हिस्से का भेद है। चैतन्यता की न्यूनता यानी कमी से ज्ञाता पर जो असर होता है, उस को विकार या भरम या माया कहते हैं। वह भी चैतन्य है, मगर न्यून है। जैसे तुम्हारे पैर के तलवे या नाख़ून में जो चैतन्य है और दिमाग़ का जो चैतन्य है, उस में फर्क़ है। आलमे-सग़ीर और आलमे-कबीर कहा है यानी जैसे बाहर रचना है, उसी तरह छोटे पैमाने पर पिंड की भी रचना हुई है। अगर चैतन्य में दरजात न होते तो रचना न होती। वेदान्ती जो ब्रह्म ब्रह्म कहते फिरते हैं, उन्होंने कमी बेशी का फ़र्क़ नहीं जाना। चैतन्य को यकसाँ समझा। यह उनकी ग़लती है। संत कहते हैं कि न्यून देश को छोड़ो, परिपूर्ण देश में चलो। इसी को अद्वैत सिद्धान्त कहते हैं। हर तरह के विद्यावाले जो आते

हैं, उनके लिये ख़याली चरचा की जाती है, मसलन सूरज चाँद कैसे हुए, रचना के पेश्तर क्या हालत थी, किस तरह चन्द ताक़तें यहाँ कार्रवाई कर रही हैं। जब तक ब-मूजिब इल्म क़ानून .क़ुदरत इन को सबूत नहीं दिया जाता है, तब तक क़ायल नहीं होते हैं। और जो कि अभ्यासी हैं, उनके लिये अमली चर्चा की जाती है। पर ख़याली चर्चा करना भी एक क़िस्म की बुनियाद डालना है। इसलिये कभी कभी ख़याली चर्चा होने में मुज़ायक़ा नहीं है। हम तो आढ़त का काम करते हैं। दया से यह सेवा मिली है। जैसा कोई गाहक आता है, वैसी उस को चीज़ दिखाते हैं। जौहरी के पास अगर कोई तरकारी लेने जाता है, वह उस को निकाल बाहर करता है, वैसे ही यहाँ कोई कर्मी भरमी आता है तो उस पर तवज्जह नहीं की जाती, सिर्फ़ सच्चे गाहक के वास्ते सब तरह की चर्चा की जाती है।

सवाल ५—दयाल के अंस और काल के अंस में क्या भेद है और जिन को काल का अंस कहा है, उनका उद्धार होना मुमकिन है या नहीं?

जवाब—जब तक कुछ रचना नहीं हुई थी, अनामी पुरुष अपने में आप मगन था और जैसे कि पहाड़ पर बरफ़ जमी होती है, उस के ऊपर बादल सा छाया रहता है, इसी तरह उस अनामी पुरुष के एक हिस्से पर .ग़ुबार (जो कोई दूसरी चीज़ न थी) किसी क़दर फ़ासले पर छाया था। बहुत अर्से तक इसी तरह रहा, मगर प्रकाशवान हिस्सा जो उस के क़रीब था, उस की तरफ़ कशिश उस .ग़ुबार की थी और उस .ग़ुबार के अन्दर भी चैतन्य मौजूद था। फिर जब उस अनामी सिन्ध से मौज उठी, उस ने अगम लोक रचा और फिर वहाँ से ब-दस्तूर धार रवाँ हुई और अलख लोक और फिर सत्त लोक रचा गया। इस के

नीचे ग़ुबार भारी था। इस में जो चैतन्य था, उस की जब दौड़ ऊपर को हुई और उस पर से ख़ोल झाड़े गये, चूँकि सत्तलोक में ठहरने के वह क़ाबिल न था, इसलिये नीचे उतारा गया, उसी का नाम निरंजन हुआ। वह आप रचना नहीं कर सकता था। इसलिये ऊपर से दूसरी धार जो सुरतों का बीज लिये आई उतारी गई, फिर दोनों ने मिल कर रचना करी। उस निरंजन से जो लहर आती है और उसमें थोड़ी चैतन्य की धार भी होती है, क्योंकि बग़ैर उस के कोई कार्रवाई नहीं हो सकती, वह काल का अवतार है और जिन जीवों का रुख़ बहुत करके बाहरमुख है और तमोगुन और विकारी अंग उन में ज़्यादा है, वह काल की अंस कहलाते हैं। अब अगर यह किसी तरह संत सतगुरु के सनमुख आवें तो उनकी विशेष चैतन्य धार इन की चैतन्य धार को, जो बहुत ख़फ़ीफ़ है, अपने में लपेट कर ले जा सकती है और उद्धार उन का हो सकता है, नहीं तो सिर्फ़ एक दर्जे चढ़ाई होती है, जैसे प्रलय, महा प्रलय में। और काल का अवतार भी वहाँ तक ही पहुँचा सकता है, जहाँ तक उस की रसाई है। काल के जीव संतों के सनमुख नहीं आते हैं और यही उन की पहिचान है। इसलिये जो जीव राधास्वामी मत में शामिल हुआ, उस को अपने उद्धार में किसी तरह शक नहीं करना चाहिये क्योंकि जिन पर दृष्टि संतों की पड़ी, वही पार हुए, बल्कि हुज़ूर महाराज ने तो फ़रमाया था कि जहाँ संत विराजते हैं, उन के आस पास के बे-शुमार जीवों का उद्धार और फ़ायदा होता है और इसी तरह बचन में लिखा है कि जिसने कपड़ा पहिनाया तो उस के बनाने में जो जो लगे हैं, सब का उद्धार होगा, बल्कि त्रिलोकी का भी यानी तीन तीन विभाग का जो एक एक लोक है, सुन्न यानी दसवें द्वार तक, एक एक दर्जे का

उद्धार होगा और दयाल की अंश भी बाज़ सत्तलोक में और बाज़ उस के समीप दीप बना कर, वहाँ रक्खे जावेंगे और बाज़ की सत्तलोक से दूरबीन यानी ऊपर की धार लेकर ऊपर चढ़ाई होगी और यह इब्तिदाई फ़र्क़ के सबब से होगा। मगर जब राधास्वामी दयाल ख़ुद कुल मालिक मिले, वह तो धुर तक ही पहुँचावेंगे और धुर पहुँचने का ही इरादा सब को रखना चाहिये। मन जो काल का अंश है, सब में बैठा है। अव्वल यह मारा जावेगा तब दयाल की अंश जो सुरत है, वह निर्मल होकर ऊपर चढ़ाई जावेगी। काल की अंस सब में मौजूद है। जिनमें इस की विशेषता है, वह काल की अंस कहलाते हैं और उन की रहनी और सुभाव और सूरत में भी किसी क़दर फ़र्क़ होगा। मगर जो जीव, चाहे वह दयाल की अंश हों या काल की, जो संतों से उन का मेला हो जावे तो उन के उद्धार होने में किसी तरह का शक नहीं है।

सवाल ६—दयाल देश में दर्जे किस तरह हुए, क्योंकि वहाँ चैतन्य ही चैतन्य है? और अनामी पुरुष का ज़िक्र जो भजन के परचे में नहीं है, क्या सबब है?

जवाब—जैसे पानी और भाप और भाप की भी सूक्ष्म हालत यानी गैस और बरफ़ और ओला सब एक ही चीज़ हैं, मगर दर्जे हो गये, इसी तरह दयाल देश में भी दरजे समझने चाहिये। और अनामी पुरुष का ज़िक्र तो बड़ी पोथी सार बचन में मौजूद है।

मैं तो चकोर चन्द राधास्वामी। नहिं भावे सतनाम अनामी।।

और रचना का हाल जिस क़दर प्रेम पत्र में है उतना ही खोलने की मौज थी, आयन्दा मौज होगी तो और खोला जावेगा।

सवाल ७—(क) वक्त के गुरू की क्या ज़रूरत है?

(ख) अब जो सतगुरु प्रकट नहीं हैं, फिर कौन मदद करता है?

जवाब—(क) लुक़मान हकीम बहुत ही होशियार था, मगर अब तुम्हारी क्या मदद कर सकता है? वक़्त का हकीम होना चाहिये। इसी तरह वक़्त के गुरू की ज़रूरत है। जिस का अन्तर में शब्द नहीं खुला है और रूप नहीं प्रकट हुआ है, उस को गुरू की ज़रूरत है।

(ख) इस मंडल में राधास्वामी दयाल निज रूप से मौजूद हैं। इसलिये सुरत मन सिमटते और खिंचते हैं। यह सबूत मालिक के मौजूद होने का है। बग़ैर समरथ के और किसी की ताक़त सुरत मन समेटने और खींचने की नहीं है। पेश्तर से भी अब विशेष दया और मदद मिलती है। सतगुरु के वक़्त में भी अन्तर में निज रूप ही मदद करता था। फिर जब मौज होगी, तब देह स्वरूप से भी प्रकट होंगे।

सवाल ८—ऐसा सुना है कि सतगुरु जब गुप्त होते हैं तब अपना जा-नशीन मुक़र्रर कर जाते हैं। और जब तक प्रकट कार्रवाई की मौज नहीं है, तब तक गुप्त रहते हैं। तो गुप्त संत की पहिचान क्या है और वह कब प्रकट होंगे?

जवाब—गुप्त होते वक़्त किसी में बीजा डाल गये होंगे। न मालूम कब वह तैयार होगा? अनन्त तिरलोकियाँ हैं। शायद अब भी किसी दूसरी पृथ्वी पर मौजूद होंगे और यहाँ से विशेष सतसंग होता होगा और वहाँ से इस पृथ्वी की भी सँभाल करते होंगे, जैसे हु.ज़ूर साहब के वक़्त में और पृथ्वियों की सम्हाल होती थी। गुप्त संत की

पहिचान की हम को ख़बर नहीं है। साध की महिमा में कबीर साहब का क़ौल है—

गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी सों नेह।
कहे कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह।।

निरबैरी निःकामता, स्वामी सेती नेह।
विषयन से न्यारा रहे, साधन का मत येह।।

सतगुरु कब प्रकट होंगे, यह कह नहीं सकते हैं। शायद दो सौ बरस के बाद प्रकट होवें तो इस में कोई ताज्जुब नहीं है। संतों के बरस और वक़्त भी न्यारे होते हैं।

सवाल ९—एक गुरू छोड़ के दूसरा गुरू करना यह गोया दूसरा पति करना है, तो फिर जिन संत सतगुरु से उपदेश लिया है, उन के गुप्त होने पर उन के जा-नशीन को गुरू धारन करना कैसे ठीक हो सकता है?

जवाब—दूसरा है कहाँ? वही तो एक गुरू है। निज रूप पर निगाह करनी चाहिये। देह रूप पर जब तक नज़र अटकी हुई है, तब तक दो नज़राई पड़ते हैं, नहीं तो एक ही हैं। अगर किसी का बाप हिन्दुस्तानी है और अंगरेज़ी पोशाक पहिन ले तो क्या वह दूसरा हो गया? है तो उसी का बाप, सिर्फ़ ग़िलाफ़ का फ़र्क़ है। या जैसे समुन्दर का पानी पहिले एक दरिया में आता था, अब दूसरे में आता है, पर समुन्दर तो वही है, सिर्फ़ द्वारे का फ़र्क़ है। असल में जो निज रूप है, वही गुरू है और जब तक वक़्त के गुरू की भक्ति नहीं करेगा, काम नहीं होगा।

मारे डर के टेक न छोड़ें। वक़्त गुरू में मन नहिं जोड़ें।

जो अनुरागी विरही भाई। भक्ति गुरू की उन प्रति गाई।।
वक़्त गुरू जब लग नहिं मिलई। अनुरागी का काज न सरई।।

सवाल १०—पूरे गुरू जो अपने को छिपा के बैठें तो क्या किया जावे?

जवाब—उन को ढूँढ़ना चाहिये और जब वह मिल जावें, तब उन को पकड़ लेना चाहिये। "जोइन्दा याविन्दा"। बे समझे बूझे किसी में भाव लाना, यह ना-मुनासिब है।

सवाल ११—अपने इख़्तियार में तो कुछ नहीं है, दया जब हो, तब सब कुछ बन सकता है।

जवाब—बेशक इस के हाथ कुछ नहीं है। रत्ती भर नहीं कर सकता है। सब दया से होता है।

जीव निबल क्या करे बिचारा। जब लग राधास्वामी करें न सहाम।।

अगर भाग है तो गुरू भी आप से आप इस को मिल जाते हैं।

भाग जगा मेरा आदि का, मिले सतगुरु आई।
राधास्वामी धाम का, मोहिं भेद जनाई।।

पिरथम दया करी मो पै भारी। अब क्यों हुए कठोर दयाल।।

असल में कठोरता नहीं है। यह हालत भी दया की है। मगर यह समझता है कि पहिले दया थी, अब नहीं है।

सवाल १२—कहते हैं कि सतगुरु सूक्ष्म स्वरूप से मौजूद हैं, तो जब स्थूल स्वरूप में पृथ्वी पर होंगे, तब तो सूक्ष्म में भी मौजूद होंगे?

जवाब—हाँ ठीक है। कहीं तिब्बत में या दूसरी पृथ्वी पर होंगे! जब हुज़ूर साहब और स्वामीजी महाराज इस

पृथ्वी पर थे, तब भी तो और पृथ्वियों की सूक्ष्म शरीर से सँभाल होती थी, वैसे ही अब भी देह स्वरूप से शायद किसी दूसरी पृथ्वी पर होंगे और सूक्ष्म स्वरूप से इस पृथ्वी की सँभाल कर रहे होंगे। फिर जब मौज होगी, तब नर स्वरूप धारण करके, इस पृथ्वी पर तशरीफ़ लावेंगे और दरशन देंगे और सब को निहाल करेंगे।

नर रूप दिखावें जब ही। मन खैंच चढ़ावें तब ही।।
दे मदद बढ़ावें आगे। मन जुग जुग सोया जागे।।

सवाल १३—सतगुरु सूक्ष्म स्वरूप से और मालिक शब्द स्वरूप से घट घट में किस तरह मौजूद हैं?

जवाब—सतगुरु के सब पट खुले हुए हैं। इसलिए हर एक स्थान (Plane) पर अपने निज रूप यानी सूक्ष्म रूप से वह मौजूद हैं। जिस अभ्यासी का जिस स्थान का द्वारा खुलेगा, उस को वहाँ उन के दरशन हो जावेंगे और मालिक शब्द स्वरूप से हर एक स्थान पर मौजूद है यानी जो सत्त धार या चैतन्य धार जिस में कि राधास्वामी धुन हो रही है और जो कि मुक़ामी शब्दों के अन्तरगत है, वह हर एक मंडल के अन्तर के अन्तर में मौजूद है, जिस का जो द्वारा खुलेगा, वहाँ जो वह अन्तर के अन्तर पैठेगा तो उस का धुन से मेल हो जावेगा।

सवाल १४—जैसे स्वामी, पिता; और राधा, माता; 'राधास्वामी' के अवतार हुये, वैसे ही फिर भी राधास्वामी माता पिता अवतार धरेंगे कि नहीं?

जवाब—संत सतगुरु 'राधा' यानी माता स्वरूप हैं और निज रूप उनका 'स्वामी' यानी पिता स्वरूप है। पिता के पास माता पहुँचाती है, इसी तरह संत सतगुरु मालिक के चरनों में पहुँचावेंगे। और अन्तर में इनके स्वरूप 'धार' और 'भंडार' हैं और यह जब तक कि इस

लोक का उद्धार नहीं कर लेंगे, अवतार धारन करते रहेंगे।

हे राधा तुम गति अति भारी।
हे स्वामी तुम धाम अपारी।।
राधास्वामी दोउ मोहिं गोद बिठारी।।

सवाल १५—साध और संत सतगुरु एक ही वक़्त में मौजूद हो सकते हैं या नहीं?

जवाब—एक ही वक़्त में मौजूद हो सकते हैं। अलबत्ता उस वक़्त में सतगुरु प्रकट कार्रवाई करेंगे और साध गुप्त रहेंगे।

सवाल १६—सतगुरु किस को कहते हैं?

जवाब—सत्तपुरुष से धार आकर जिस नर शरीर में कार्रवाई करे और उस के और सत्तपुरुष के बीच में कोई परदा हायल न होवे, उस को सतगुरु कहते हैं या यह कि मालिक के नूर की धार जो अँधेरे में प्रकाश करे, उस को सतगुरु कहते हैं। इसलिये गुरु नाम मालिक का है। और किसी को गुरु पदवी धारन करने का इख़्तियार नहीं है।

सवाल १७—सतगुरु की क्या पहिचान है?

जवाब—जिस के संग करने से सुरत मन सिमटें और दुनिया की तरफ़ से नफ़रत और मालिक के चरनों में रग़बत आती जावे और परमार्थी घाट होता जावे और प्रेम पैदा होने लगे और जो आप भी शब्द में रत हैं और इस को भी उसी में लगावें, वही सतगुरु हैं। मगर शुरू में सतगुरु भाव नहीं लाना चाहिये। अपने से बड़ा और परमार्थ में मददगार और गहरा अभ्यासी उनको समझना चाहिये। फिर जिस क़दर तरक़्क़ी होती जायगी, उसी

मुवाफ़िक़ भाव भी बढ़ता जायगा और एक दिन पूरा भाव सतगुरु का आ जावेगा। शुरू में सतगुरु भाव लाना यह सिर्फ़ समझौती है, असली नहीं है। और बाहरी पहिचान सतगुरु की यह है कि चरनामृत और परशादी आम तौर पर देते हैं, आरती कराते हैं और बचन सुनाते हैं और उनके बचन और दरशन और चरनामृत परशादी में असर होता है यानी थोड़ा बहुत सुरत मन का सिमटाव होता है और जो झूठे हैं, उनके दरशन बचन वग़ैरा में इस क़िस्म का असर नहीं होता है।

सवाल १८—कहीं कहीं ऐसा भी देखने में आया है, लोगों को ठगने के लिये बाज़े झूठे अपने को संत और सतगुरु कहते हैं और लोग उनको मानने लगते हैं।

जवाब—जो कि भोले भाले हैं, सिर्फ़ उन को वह ठग सकते हैं। मगर जो कि सच्चे भक्त जन और अभ्यासी हैं, उन को हरगिज़ नहीं ठग सकते, क्योंकि उनकी रूह को जब तक रूहानी ख़ुराक नहीं मिलती, तब तक शांति नहीं आती और उनको जो ख़ास तजरुबा हासिल है और परचे मिले हैं, उनका भेद झूठे गुरू के पास नहीं है, इसलिये उन की बातें उन पर असर नहीं करेंगी और वह उन को नहीं ठग सकते। और भी, झूठ बहुत अरसे नहीं चल सकता है। जल्द ज़ाहिर हो जाता है।

सवाल १९—जैसे और मत के लोग वक़्त के गुरू न होने से टेकी हो गये हैं, वैसे ही राधास्वामी मत वाले भी सतगुरु के गुप्त होने के बाद टेकी हो जायेंगे?

जवाब—राधास्वामी दयाल की यह मौज नहीं है कि जिन्होंने उनकी सरन ली है, वह और मतों के जीवों की तरह टेकी हो जावें। अगले महात्मा सिर्फ़ एक दो स्थान का भेद बतलाते थे और गुरू के गुप्त होने के बाद आगे

का पता उन को न मिलने से वह टेकी रह गये। राधास्वामी दयाल ने शुरू से ही राधास्वामी धाम का इष्ट बँधवाया और सब भेद मंज़िलों का खोल कर सुनाया ताकि सतगुरु के गुप्त होने के बाद कहीं नीचे के स्थान पर ठहर कर टेकी न हो जावें और सतगुरु वक़्त की महिमा की और वक़्तन फ़वक़्तन सतगुरु रूप धारन करके सम्हालते हैं और झूठे और सच्चे गुरू की पहचान ख़ूब खोल कर गाई है। इस वास्ते राधास्वामी मत वाले टेकी नहीं रह सकते और वह पूरे और सच्चे गुरू का खोज हमेशा करते रहेंगे। अलावा इस के स्वामीजी महाराज का बचन है कि राज कुल में औतार धारन करेंगे और आम तौर पर राधास्वामी मत जारी किया जायगा। कबीर पंथी और नानक पंथी अब टेकी हो गये हैं, क्योंकि उन में कोई भी अभ्यासी नहीं रहा है। जितने कि तारागण नज़र आते हैं, वह एक एक सूरज हैं और उन में रचना है और ऐसी पृथ्वियाँ अनन्त हैं। फ़िलहाल सतगुरु अगर इस पृथ्वी से गुप्त हो गए हैं, शायद किसी दूसरी पृथ्वी पर प्रकट होंगे, इसमें कोई शक नहीं है। और उनकी दया की धार हर वक़्त जारी है, पर उसकी परख नहीं है। जब दया से प्रेम प्रकट होगा और सुरत मन सिमटने लगेंगे, तब पहिचान आवेगी। कहने का मुद्दा यह है कि हमेशा अभ्यासियों के मौजूद होने और सतगुरु के प्रकट होने से राधास्वामी मत हरगिज़ टेकी नहीं होगा।

सवाल २०—एक सतगुरु के चोला छोड़ने के बाद दूसरे में धार कैसे आ समाती है?

जवाब—सतगुरु की धार तीसरे तिल के नीचे नहीं आती है, मगर चूँकि सब जीवों को फ़ैज़ पहुँचाना है और

सब का उद्धार करना मंज़ूर है, इसलिये गुरुमुख को गुदा चक्र तक उतारते हैं। जब सतगुरु चोला छोड़ते हैं, तब जो गुरुमुख है, उस की सुरत को तीसरे तिल में सर्वांग करके पहुँचा देते हैं, उस वक़्त सब पट उस के खुल जाते हैं, तब उस गुरुमुख और सतगुरु में कोई फ़र्क़ बाक़ी नहीं रहता है और चूँकि गुरुमुख से आम फ़ैज़ जीवों को पहुँचाना मंज़ूर है, इस वास्ते उसके यहाँ कुछ अरसे ठहराने के लिये बंधनों का ज़्यादा बोझ उस पर डाला जाता है, जैसे ग़ुब्बारे को डोरियों से नीचे बाँध रखते हैं कि कहीं उड़ न जावे।

सवाल २१—सतगुरु जब गुप्त होवें तब फिर किस का ध्यान करना चाहिये?

जवाब—वक़्त के सतगुरु का ध्यान करना चाहिये, क्योंकि वह कारकुन रूप हैं। सबब यह कि पहिले सतगुरु के रूप का अक्स जो इस मण्डल में पड़ा था, वह अब कारकुन इस मण्डल में नहीं है। जब सतगुरु वक़्त प्रकट होते हैं, तब वह अक्स आप हट जाता है और चैतन्य मण्डल में कोई फ़र्क, रूप में, नहीं रहता और सतगुरु प्रत्यक्ष के रूप में सत्तधार का दरशन होता है। मगर इस में एक बात समझ लेना चाहिये कि कुछ फ़ायदा न होगा, अगर कोई किसी सतसंगी को पकड़ के उसका ध्यान करेगा। चाहे उसमें जो उसकी भावना है, इसलिये कुछ शांति आजावे, पर इससे ऐसा नहीं समझना चाहिये कि वह पूरा गुरू है। ऐसे दो एक झूठे गुरू अब भी मौजूद हैं कि जिन को कितनों ने पूरा गुरू समझ कर धारन किया है। वे कहते हैं कि हमारी तरक़्क़ी होती है और स्वरूप दरसता है। मगर हक़ीक़त में उनको असली तरक़्क़ी की ख़बर नहीं है और वह नहीं जानते हैं कि

सतगुरु का स्वरूप प्रकट होना सहज नहीं है और जब प्रकट होता है, तब क्या सूरत मन और सुरत की होती है। उनकी भावना का भी क्या ठिकाना है? असल में उनके कर्म ही ऐसे हैं, तब झूठा गुरू मिला है, क्योंकि ऐसा गुरू उनके और सच्चे मालिक के बीच में गोया पर्दा है। दुनिया के लोग भी तो ख़ुदा या ईश्वर को सच्चा मालिक समझ कर बैठे हैं। बाइस यह है कि उन के कर्म ऐसे ओछे हैं कि अभी वह पूरे गुरू से मिलने के क़ाबिल नहीं हैं। जैसे एक भेड़ के पीछे और कुल भेड़ जाती हैं, वही हाल लोगों का हो रहा है। और सतगुरु जब गुप्त होते हैं, तब भी वह धार मौजूद है यानी उलट नहीं गई है, बल्कि सिमटी हुई है। अगर पिंड के ऊपर से उलट जावे तो कार्रवाई बन्द हो जावे। सिमटने से मतलब यह है कि जैसे ज्वार के वक़्त लहर जोश से आती है, वैसे नहीं आती, जैसे हुगली नदी ज्वार के वक़्त बहती है। वैसे तो नदी बहुत हैं, मगर जिस का रुख़ समुन्दर से मिला हुआ है, उसकी महिमा ज़्यादा है और उसमें भी जिस में ज्वार भाटा होता है, उस की महिमा विशेष है। इसी तरह जिस रूप में कि धार आकर कार्रवाई करती है, उस की महिमा भारी है। धार तो एक ही है। पहिले गोया हुगली में आती थी, अब दूसरी नदी में आती है। मगर समुद्र एक ही है। वैसे ही भंडार और धार एक ही है। सिर्फ़ द्वारे यानी देही का फ़र्क़ है।

सवाल २२—कहते हैं कि बग़ैर गुरुमुख के सतगुरु की कार्रवाई जैसी कि चाहिये, वैसी प्रकट नहीं होती और पूरे तौर से दया नाज़िल नहीं होती, यह ठीक है या नहीं?

जवाब—पहली नज़ीर देखो कि कबीर साहब के धर्मदास गुरुमुख थे। चूड़ामन उन के बेटे थे। उन के

पीछे कोई गुरुमुख नहीं हुआ, तब कार्रवाई बन्द हो गई। गुरु नानक साहब के भी इसी तरह जब कोई गुरुमुख न रहा, तब कार्रवाई गुम हो गई। दादू साहब के गुरुमुख सुन्दरदास थे। उन की और जगजीवन साहब की भी गद्दी इसी तरह गुम हो गई। लेकिन मुताबिक़ हुक्म राधास्वामी दयाल के जो बराबर गुरुमुख होते आवेंगे, तो फिर स्वतः संत कैसे आवेंगे? जब स्वामीजी महाराज और हुज़ूर महाराज एक दफ़ा बाप और बेटे होकर शाहंशाही ख़ानदान में आवेंगे तो स्वामीजी महाराज स्वतः संत होकर आवेंगे। इसलिये किसी वक़्त गुरुमुख का आना भी बन्द हो जावेगा, पर दया बराबर जारी रहेगी।

सवाल २३—स्वतः संत और गुरुमुख में क्या भेद है?

जवाब—स्वतः संत तीसरे तिल के नीचे नहीं उतरते हैं और वहाँ बैठ कर कार्रवाई करते हैं, जैसे ट्रांस यानी बेहोशी की हालत में ऊँचे घाट पर बैठ कर स्थूल शरीर से कार्रवाई की जाती है। और जो गुरुमुख है, उस की सुरत नीचे गुदा चक्र तक उतारी जाती है यानी सत्त देश का बीजा यहाँ पिण्ड में इस क़दर नीचे तक उतारा जाता है और इसी से सारी रचना पवित्र की जाती है। यही वजह है कि गुरुमुख की महिमा स्वतः संत से भी ज़्यादा है, क्योंकि उसका फ़ैज़ नीचे तक फैलता है।

गुरुमुख की गति सबसे भारी। गुरुमुख कोटिन जीव उबारी।
कहाँ लग महिमा गुरुमुख गाऊँ। कोई न जाने किस समझाऊँ।।

स्वतः संत वह हैं, जो किसी के चेले नहीं हुए हैं और जिन के पट सब खुले हुए हैं और अपने आप कार्रवाई कर सकते हैं और उनके जो निज अंश यानी गुरुमुख हैं, उन को पिण्ड से निकाल कर तीसरे तिल में पहुँचाते हैं। फिर स्वतः संत में और उन में कोई फ़र्क़ नहीं रहता।

सवाल २४—बग़ैर मदद सतगुरु के चढ़ाई हो सकती है या नहीं?

जवाब—प्रेम पत्र जिल्द ३, बचन ५, दफ़ा ८९, सफा १३० में और भी बचन २, दफ़ा ६, सफ़ा १८.१९ में साफ़ लिखा है कि पिण्ड में सफ़ाई और चढ़ाई बग़ैर मदद और ध्यान गुरु स्वरूप के हो सकती है, लेकिन पिंड के पार चढ़ना बग़ैर मदद और दया संत सतगुरु के मुमकिन नहीं है। गृहस्थ में जो संत होते हैं, उन से जीवों का उद्धार होता है जैसे स्वामीजी महाराज हुज़ूर महाराज कबीर साहब वग़ैरा। तुलसी साहब गृहस्थी नहीं थे। तब उन की कार्रवाई बंद हो गई यानी उन्होंने जीवों के उद्धार की कार्रवाई जैसे चाहिये, जारी नहीं रक्खी। स्वामीजी महाराज के कोई लड़का नहीं था, इस में मौज थी। जीवों का ऐसा हाल है कि टेकी हो जाते हैं। इसलिये कोई लड़का नहीं हुआ। जब संतों की कार-आमद चीज़ का इस क़दर अदब है तो उन का पुत्र, जो कि निज अंस और परशादी है, उस की किस क़दर न ताज़ीम करना चाहिये, मगर लोगों की ऐसी हालत है कि या तो उस को संत करके मानेंगे या उससे झगड़ा करने को तैयार हो जावेंगे, यह ना-मुनासिब है।

सवाल २५—बग़ैर गुरुमुख के रंग नहीं चढ़ता और जिस क़दर दया होनी चाहिये, वैसी नहीं होती?

जवाब—जब सच्चा ख़्वाहिशमन्द आता है, तब रंग भी चढ़ता है और कार्रवाई भी प्रकट होती है। इसलिये जब सच्चा ख़्वाहिशमन्द आवेगा, तब देखा जायगा। जैसे दुकान पर गुमाश्ते और नौकर काम चलाते हैं और जब कोई बड़ा ख़रीदार आता है, तब दुकानदार आप बाहर सन्दूक़ की कुंजी लेकर आता है और सौदा देता है, वैसे

ही जहाँ कहीं कि सतसंग है, सब दुकानें याने शाख़ें हैं जब सच्चा ख़रीदार आवेगा, तब दुकानदार भी आकर प्रकट होगा।

सवाल २६—सतगुरु क्यों नहीं प्रकट होते हैं?

जवाब—मन को मारो, तन को जारो, इन्द्री रोको, गुरु चरन में प्रीति करो, पिंड के पार पहुँचो, तो गुरू भी प्रकट होंगे।

सवाल २७—अगर इस पृथ्वी पर या कहीं और पृथ्वी पर भी सतगुरु मौजूद हों, तो जब गुरुमुख आवेगा तब प्रकट कार्रवाई होगी?

जवाब—ऐसा नहीं है। बग़ैर गुरुमुख के भी कार्रवाई होती है। चरनामृत और परशादी तो आगे ही जारी की जाती है, जैसे हुज़ूर साहब के प्रकट होने से पहले ही अन्दर गुप्त तौर पर परशादी और चरनामृत मिलता था, मगर पूरे तौर से कार्रवाई जैसी कि चाहिये वैसी तब प्रकट होती है, जब कि गुरुमुख आता है।

सवाल २८—स्वामीजी महाराज और हुज़ूर महाराज में धार एक ही थी तो जब दोनों मौजूद थे, तब इन में क्या फ़र्क़ था?

जवाब—जैसे समुद्र एक होता है, उस में से लहरें अनन्त उठती हैं, तो जल एक ही है, इन में कोई फ़र्क़ नहीं है, वैसे ही भंडार एक ही है और जो धारें निकलती हैं, उन में भी कोई फ़र्क़ नहीं है। अब इस से कोई मतलब नहीं है कि कौन सा जल किस लहर में था, ज़ात तो एक ही है। या जैसे मुख से आज बोलते हो, कल बोल न सको तो रूह एक ही है, सिर्फ़ बोलने की कल का फ़र्क़ हो गया, या जैसे वृत्ति आज एक तरफ़ है, कल

दूसरी तरफ़। यहाँ बोलने वाला एक है, सिर्फ़ वृत्ति का फ़र्क़ होता है। तो ख़याल बोलने वाले पर लाना चाहिये, न कि वृत्ति पर।

सवाल २९—बग़ैर गुरुमुख के क्या कार्रवाई नहीं हो सकती है?

जवाब—क्यों नहीं हो सकती है? क्या स्वामीजी महाराज फिर नहीं आवेंगे? अगर ऐसा हो तो फिर स्वतः संत का आना बन्द हो जायगा। शायद अब भी कोई बच्चा स्वतः संत हो। जब मौज होगी, तब प्रकट होगा। स्वतः संत तीसरे तिल के नीचे नहीं आते और वहाँ बैठ कर कार्रवाई करते हैं और अपनी निज अंश को गुदा चक्र तक उतार देते हैं। उसको गुरुमुख कहते हैं। गुरुमुख से सारी रचना को फ़ैज़ पहुँचता है। स्वतः संत उस को निकालने के लिये आते हैं और उस की निगरानी करते हैं और जब तीसरे तिल में गुरुमुख की रसाई होती है, तब वह स्वतः संत से मिल कर एक हो जाता है यानी दोनों का एक रूप हो जाता है या ऐसा समझ लो कि सुरत गुरुमुख है, शब्द गुरू है और असल में दोनों एक ही हैं यानी जहाँ धार ने ठेका लिया, वहाँ उसको सुरत कहते हैं और जो कार्रवाई करने वाली धार है, उस को शब्द कहते हैं।

सवाल ३०—स्वामीजी महाराज के वक़्त में जब एक अंस थी, तब उसी वक़्त दूसरा गुरुमुख भी था, गोया तीन धारें एक ही वक़्त मौजूद थीं, सो यह कैसे हो सकता है?

जवाब—इस में क्या है? दो अंस क्यों, चाहे पचास हों, इस में कोई बात नहीं है। एक बाप के पाँच सात लड़के नहीं होते हैं?

सवाल ३१—जो सुरतें दयाल देश में पहुँचती हैं, उनमें और सतगुरु में क्या फ़र्क़ होता है?

जवाब—जो कि पहुँचाई जाती हैं, वह हंस होती हैं। और जो संत हैं, वह सत्तपुरुष का अवतार हैं। संत गोया बादशाह हैं और हंस रैयत हैं।

सवाल ३२—जब सतगुरु मौजूद होते हैं, तब साध गुरु प्रकट कार्रवाई कर सकते हैं या नहीं?

जवाब—नहीं। सतगुरु की मौजूदगी में साध गुरू कार्रवाई नहीं करता है।

सवाल ३३—बूढ़ा गुरुमुख हो सकता है या नहीं? वह तो गुरू से पहिले ही मर जायगा।

जवाब—क्यों नहीं हो सकता है? सफ़ेद डाढ़ी पर नज़र नहीं करनी चाहिये। गुरुमुख जब बच्चा है, तब भी परमार्थ का ख़याल उस को होता है। मगर माया का परदा उस पर डाल देते हैं बल्कि और जीवों से भी ज़्यादा उस को माया में फँसाते हैं और जब बड़ा होता है, तब गुरू के सनमुख आने से ही उस के सुरत मन सिमटते हैं और सब भेद उस पर आप से आप खुल जाता है और जो गुरू नहीं भी मिलता है तो भी जब बड़ा होता है आप ही सुरत का खिंचाव होता है और अन्तर में चढ़ाई होती है।

सवाल ३४—बग़ैर गुरुमुख के गुरू कैसे हो सकता है?

जवाब—यह ठीक है। बग़ैर बच्चे के माँ बाप हो नहीं सकते हैं। अगर बच्चा ही नहीं है, तो वह कैसे माँ बाप हो सकेगा।

सवाल ३५—स्वामीजी महाराज ने एक बार फ़रमाया था कि न मालूम मैं गुरू हूँ या राय सालिगराम साहब (हुज़ूर महाराज) मेरे गुरू हैं। इसका क्या मतलब है?

जवाब—धार एक ही है। इस में फ़र्क़ नहीं है। अंश पहिले नीचे उतारी जाती है। वह जब तीसरे तिल में पहुँचती है, तब फिर उस में और गुरू में कोई भेद नहीं रहता। ऐसा गुरू और चेला कोई बिरला होता है।

सुरतवन्त अनुरागी सच्चा ऐसा चेला नाम कहा।
गुरु भी दुर्लभ चेला दुर्लभ, कहीं मौज से मेल मिला।।

सवाल ३६—आज कल चन्द सतसंगी ख़सूसन पंजाब में बाद गुप्त होने हुज़ूर महाराज के, गुरू बन बैठे हैं और बे धड़क प्रसादी देते हैं और कहते हैं कि फ़लाँ मुक़ाम हम को खुल गया है और हम में हुज़ूर प्रकट हुए हैं। यह क्या मामला है?

जवाब—यह भी मौज से ही है और इस में भी जीवों की गढ़त है। बड़े ग़ुबार लोगों के मनों में भरे थे। वह झड़ रहे हैं। हुज़ूर महाराज का चुपचाप गुप्त होना, बड़ी मसलहत से था। जिन लोगों से कि हुज़ूर महाराज के वक़्त में कुछ अभ्यास नहीं बनता था और सिर्फ़ प्रसादी और चरनामृत वग़ैरा को ही परमार्थ समझते थे, अब वह किसी न किसी को पकड़ कर गुड्‌डा बना कर बिठाते हैं और उस से प्रसादी लेते हैं। मगर जो सच्चे परमार्थी हैं, उन को भी अगरचे चाह इस क़िस्म की है कि संत सतगुरु फिर प्रकट हों और सब कार्रवाई ब-दस्तूर जारी हो जावे, मगर वह जानते हैं कि किसी के बनाने या कहने से संत नहीं बन सकते, जब उनकी मौज होगी, आप प्रकट हो जावेंगे। यह चाह उनकी ना-मुनासिब नहीं है। मगर समझना चाहिये कि जो मौज ऐसी जल्दी प्रकट

होने की होती तो गुप्त ही क्यों होते? जब उन्होंने देखा कि लोग बाहरी नाच कूद में जो कि आसान बात है, बहुत लग रहे हैं और अन्तर अभ्यास में ढीलम ढाल हैं, तो दया करके ऐसी मौज फ़रमाई, ताकि तड़प लोगों के दिलों में दर्शनों की हो और अन्तर अभ्यास दुरुस्ती से बन आवे, सो नादान जीव इस बात को नहीं समझते हैं, आप गुरु बन बैठते हैं, मगर कुछ हर्ज नहीं है, वह भी दुरुस्त किये जावेंगे और झकोले खाकर सतसंग में लाये जावेंगे।

सवाल ३७—मालिक की मौज से जो तरंग पैदा हो और मन की तरंग में, किस तरह तमीज़ हो सकती है?

जवाब—जो सत्त की धार से तरंग पैदा हो, वह मौज मालिक की समझना चाहिये और जो तरंग कि भोग बिलास की काल पुरुष से पैदा हो, वह मन की तरंग है। जो मौज से तरंग होती है, उस में हमेशा परमार्थी फ़ायदा होता है और मन की तरंग हमेशा संसार की तरफ़ झुकाती है। अब अगर सत चेतन की धार से मेला हो तो पहिचान हो सकती है। मगर चूँकि वह धार बहुत अन्तर में पोशीदा है और वह भी मन के मुक़ाम पर हो कर आती है और जीव की बैठक बहुत नीची है, इसलिये पहिचान मुश्किल है। अलबत्ते कुछ निशानियों से पहिचान हो सकती है। अव्वल तो कार्रवाई का नतीजा देखना चाहिये, यानी अगर किसी काम का नतीजा ऐसा हो कि उस में तरक़्क़ी परमार्थ की हो तो वह तरंग मौज की समझना चाहिये और जिस तरंग से संसारी भोग बिलास या मान बड़ाई की चाह या और कोई नतीजा ख़िलाफ़ परमार्थ के ज़ाहिर हो, वह मन की तरंग है। दोयम अगर किसी काम के असबाब ख़ुद-ब-ख़ुद इकट्ठे हो जावें और फ़ौरन

हिलोर थोड़ी उठ कर सहज सुभाव उस काम को किया जाये, तो वह मौज से है, ब-शर्ते कि वह काम ना-जाइज़ और ख़िलाफ़ परमार्थ के नहीं है। लेकिन बाज़ वक़्त ना-जाइज़ तरंग से भी कुछ परमार्थी फ़ायदा निकलता है, जैसे हुज़ूर महाराज एक चेले का ज़िक्र फ़रमाते थे कि उस के गुरू पूरे महात्मा थे, मगर उस चेले में काम अंग विशेष था। उन्होंने एक रोज़ कुछ रुपया देकर उसको कहीं रवाने किया। हरचन्द उस ने उज़र किया और कहा कि मुझ में यह अंग विशेष है। मगर महात्माजी ने कहा कि कुछ परवाह नहीं, गुरू सँभालेंगे। आख़िरकार उस को एक वेश्या मिली। चेले ने अपने मन को बहुत कुछ रोका, मगर तरंग ऐसी ज़बर थी कि वह उस के घर गया और रुपया दिया, मगर ऐन ख़राबी के वक़्त गुरू महाराज ने उस को दर्शन दिये और वह उन के पाँव पर गिरा और दोनों महात्मा के सामने आये और दोनों का परमार्थी लाभ भारी हुआ। मगर यह ख़ास तौर पर है। आम तौर पर जिस तरंग से परमार्थी लाभ हो, वह मौज से है। नहीं तो मन की तरंग है। और जो जतन उस से बचने के लिये संतों ने बताये हैं उनके मुआफ़िक़ अमल करके अपना बचाव करना मुनासिब है। सब काम संतों की सरन लेकर और दया के आसरे करना चाहिये ताकि उस में बन्धन न होने पावे। जानना चाहिये कि वैसे तो सब जीव सरन में हैं, क्योंकि बग़ैर शामिल होने चैतन्य धार के कोई कार्रवाई नहीं हो सकती है, मगर असल सरन में आना यह है कि चैतन्य धार से मेला हो और उस की ओट में आ जावे।

सवाल ३८—यहाँ रचना जब हुई, जब कि आद्या सुरतों का बीजा लिये हुए सत्तलोक से उतारी गई, तो यहाँ जो सुरतें हैं, वह सत्तलोक से आई हैं, वह

राधास्वामी धाम में कैसे पहुँचाई जा सकती हैं, जिस देश से आई हैं, वहाँ तक ही संत पहुँचा सकते हैं?

जवाब—दूरबीन देकर हुज़ूर राधास्वामी दयाल जो समर्थ हैं, उन को राधास्वामी धाम में पहुँचावेंगे।

सवाल ३९—सत्तलोक में संत जब कि जल मछली की तरह रहते हैं तो बे शुमार संत होंगे?

जवाब—बेशक अनन्त हैं और वह सब सत्तपुरुष के अंग हैं।

सवाल ४०—कबीर साहब और धरमदास दोनों संत थे। फिर धरमदास पर क्यों माया का परदा छाया रहा?

जवाब—मौज से चन्द रोज़ के वास्ते दिखाना था कि माया का कैसा ज़बर हिसाब है, जैसे सूरज की रोशनी भी बहुत से परदे डालने से किसी क़दर मंदी पड़ जाती है। और हुज़ूर साहब ने फ़रमाया है कि वक़्त मुक़र्रर पर संत प्रकट होते हैं। उन का निज आपा हमेशा रोशन और चैतन्य रहता है, नीचे उतर कर जीवों की तरह बरतते हैं। मगर और जीवों की धार में और उन की धार में बड़ा फ़र्क़ है और रोशनी उन की बराबर जारी रहती है, जैसे सूरज जब छिप जाता है, तो भी देर तक उस की रोशनी का असर क़ायम रहता है।

सवाल ४१—जीव और सुरत में क्या फ़र्क़ है?

जवाब—सुरत, मन के घाट पर उतर कर जीव कहलाती है।

सवाल ४२—सेवा बानी की अख़ीर कड़ी में, "जो गावे यह सेवा बानी", गाने से क्या मतलब है?

जवाब—हर तरह की सेवा प्रेम और उमंग से जो कोई करके अपनी अन्दर की ख़ुशी का, जो सेवा करने से हासिल होती है, दूसरों पर इज़हार करे, इसका नाम गाना है, जैसे कहा है—

राधास्वामी नाम, जो गावे सोई तरे।
कल कलेश सब नाश, सुख पावे सब दुख हरे।।

तो गाने से मतलब यही है कि इस तरह राधास्वामी नाम को प्यार और शौक़ के साथ सुमिरे कि वह अन्तर में दरस जावे तो ज़रूर उसके कल कलेश सब नाश हो जावेंगे, जैसे कोई शायर कि उसके अन्दर कोई मज़मून दरस जाता है, गाकर दूसरों को सुनाता है।

सवाल ४३—ऐसा कहा है कि सतगुरु के सनमुख जो कोई जाता है तो वह उसकी समझ के माफ़िक़ जवाब देते हैं, इस का क्या सबब है?

जवाब—सतगुरु षटमुखी आइना हैं यानी उन के पिंड के चक्र साफ़ हैं, उन में कोई मलीनता नहीं है। जिस तरह आईने में जैसा रूप निकट आता है, वैसा नज़राई पड़ता है, वैसे ही सतगुरु के सनमुख जो कोई जैसी भावना लेकर जाता है, वैसा ही उसको नज़राई पड़ता है।

जा की रही भावना जैसी। हरि मूरत देखी तिन तैसी।।

जैसे Thought-reading (अन्तरयामता) या मेसमेरिज़म Mesmerism में दूसरे के अन्तर की कैफ़ियत मालूम कर लेते हैं, वैसे ही सतगुरु के सनमुख जो कोई जाता है, तो उसका अक्स सतगुरु रूपी आईने पर पड़ता है। आईना किसको कहते हैं? जिसमें किसी चीज़ का अक्स पड़े। इन्द्रियाँ गोया आईना हैं। उनमें भी ख़ास करके आँख कान और जिह्वा इन्द्रिय आईने के तौर पर

कार्रवाई करती हैं। मगर जो आँख का आईना है, वह सिर्फ़ देखने का काम करता है और कान का सिर्फ़ सुनने का और ज़बान का सिर्फ़ बोलने या चखने का। कहने का मुद्दा यह है कि सतगुरु के सनमुख जो कोई आता है तो उसकी छाया उलट कर उन पर पड़ती है। इसलिये उस की समझ व ख़्वाहिश के माफ़िक़ वह जवाब देते हैं। हु.ज़ूर साहब के पास अगर कोई आकर इधर उधर की बातें झूठी सच्ची बनाता था तो आप भी उस से बिलकुल रल मिल जाते थे यानी उसी के माफ़िक़ बोलते थे, मगर कुछ झूठ नहीं बोलते थे, उसी का परछाँवा था।

सवाल ४४—बारहमासे में जो विभाग किये हैं, वे किस उसूल पर रक्खे हैं?

जवाब—परमार्थी की भक्ति की चाल के अनुसार दरजे रक्खे हैं। स्वामीजी महाराज के बारह मासे में जीवों की हालत दुख सुख की बचपन से बुढ़ापे तक का बयान है और स्थानों का भेद और चढ़ाई का ज़िक्र है। अलावा इस के चितावनी जीवों को कि कर्म धर्म से उद्धार नहीं होगा, आशक्ति जीवों की मन इन्द्रियों के भोगों में और प्रकट होना सत्तपुरुष दयाल का और उपदेश करना सुरत शब्द मार्ग का और सतगुरु भक्ति और सतसंग की महिमा का और भेद काल मत और दयाल मत का ज़िक्र है। और हु.ज़ूर महाराज के बारहमासे में विरह और अनुराग, सतसंग, अभ्यास और चढ़ाई वग़ैरा का ज़िक्र है।

सवाल ४५—जब निज नाम और निज स्वरूप का भेद बताया गया है, तब दूसरे शब्दों मसलन घंटे और ओं वग़ैरा को सुनने और पकड़ने की क्या ज़रूरत है?

जवाब—यह शब्द बाहरी ख़ोल के हैं। पहिले जब बाहर का शब्द सुनेगा, तब तो अन्तर में धसेगा और असली नाम और रूप से मेला होगा। और रूप का हमेशा इस के संग रहना निहायत ही ज़रूरी है। नाम में भी कशिश है। मगर रूप में उससे विशेष कशिश है और इस को खैंच कर शब्द में लगाता है और संसार रूपी सागर से खेय कर पार उतारता है। और जैसे बाहर सतगुरु बाहरी बन्धनों और वासनाओं से चित्त को हटा कर अपनी तरफ़ खैंचते हैं, वैसे ही अन्तर में जो रचना है, उस से हटा कर रूप अपनी तरफ़ खैंचता और सूक्ष्म माया से बचाता है। रूप का दर्शन हमेशा नहीं होता है। दया से जब पंकज यानी कँवल खिलता है, तब रूप दरसता है, नहीं तो नाम रूपी खड़ग यानी शमशेर से काल कर्म का सिर काटा जाता है।

नाम खड़ग ले जूझत मन से, काल का सीस कटा री

गुरु रूप का दरशन त्रिकुटी में होता है।

गुरु मूरत अजब दिखाई। शोभा कुछ कही न जाई।।
नर रूप दिखावें जब ही। मन खैंच चढ़ावें तब ही।।
दे मदद बढ़ावें आगे। मन जुग जुग सोया जागे।।
चढ़ बंक चले त्रिकुटी में। फिर सुन्न तके सरवर में।।
जहाँ शोभा हंसन भारी। वह भूमि लगे अति प्यारी।।
धुन किंगरी बजे करारी। सुन सूरत हुई मतवारी।।
फिर लगी महासुन तारी। जहँ दीप अचिन्त सम्हारी।।

दसवें द्वार में जब पहुँचेगा, तब इस की साध गति होगी। तब बग़ैर गुरू के इस की चढ़ाई हो सकती है। मगर महासुन्न में गुरू की फिर ज़रूरत होती है। वहाँ अन्ध घोर में शब्द भी गुम हो जाता है। जैसे मकड़ी अपने ही में से आप तार निकाल के चढ़ती है, वैसे ही सुरत भी अपनी धार को पकड़ के चलती है, और अपने में से शब्द

प्रकट करती है। सुरत शब्द अभ्यास भी दसवें द्वार से शुरू होता है। वहाँ सुरत का निज रूप है। और त्रिकुटी तक जो कार्रवाई की जाती है, वह कर्म में दाख़िल है। बाद इसके भक्ति यानी उपासना शुरू होती है।

सवाल ४६—संत जीवों के कर्म अपने ऊपर किस तरह लेते हैं?

जवाब—जैसे दो शख़्स हैं कि उनकी आपस में मुहब्बत है। एक बीमार होता है तो दूसरा जब उसके सनमुख बैठता है, तब आपस में उनकी धारें रवाँ होती हैं यानी बीमार को अपना दोस्त देख कर तसल्ली आती है और दूसरे को अपना दोस्त बीमार देख कर दुख होता है, वैसे ही सतगुरु का ध्यान करने से जीवों की जो बीमारी है, वह सतगुरु किसी क़दर ग्रहण कर लेते हैं और सतगुरु की चैतन्यता जीवों में आती है। इस तरह सतगुरु जीव के कर्म बड़ी जल्दी और तेज़ी से काटते हैं यानी हवा की तरह उड़ा देते हैं और कोई इच्छा उसमें बाक़ी नहीं रहती है।

सुपने इच्छा ना उठे, गुरु आन तुम्हारी हो।

सवाल ४७—पुण्य और पाप में क्या फ़र्क़ है?

जवाब—चैतन्य देश में सुरत की चढ़ाई को पुण्य कहते हैं। माया देश में सुरत के तनज़्ज़ुल को पाप कहते हैं।

सवाल ४८—दुख और सुख की तारीफ़ क्या है?

जवाब—रूह की धार का मन या माया के घाट से जहाँ कि वह रवाँ है, ज़बरदस्ती थोड़ा या बहुत हट जाना, इस के ज्ञान को दुख कहते हैं।

रूह की धार का मन या माया के घाट पर जहाँ कि वह मौजूद है, थोड़ा या बहुत सिमटाव होना, इस के ज्ञान को सुख कहते हैं।

Perception by a spirit entity of forcible ejectment of spiritual current, whether partial or total, from a mental or material plane which it is occupying, constitutes the sensation of pain.

Perception by a spirit entity of concentration of spiritual current whether partial or total, in a mental or material plane which it is occupying, constitutes the sensation of pleasure.

सवाल ४९—संकल्प विकल्प और अनुभव में क्या फ़र्क़ है?

जवाब—माया के तन में ग़िलाफ़ या अन्धकार से जो फुरना होती है, उसको संकल्प विकल्प कहते हैं। चैतन्य के प्रकाश से जो ज्ञान होता है उसको अनुभव कहते हैं।

सवाल ५०—कोई कहते हैं कि वेद ब्रह्मा का बचन नहीं है। और लोगों ने लिख लिया है। क्या यह सही है?

जवाब—नहीं, वेद और किसी का लिखा हुआ नहीं है। ब्रह्मा के चार मुख हैं। उन चारों में से जो धुन निकलीं, उन का इज़हार चारों वेद हैं। किसी में दवाओं का ज़िक्र है, किसी में रोज़गार और गृहस्थ आश्रम का बयान है, यानी बहुत करके प्रवृत्ति और थोड़ी सी निवृत्ति की चर्चा है। ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों निरंजन के बेटे हैं और चौथी जोति प्रधान हुई, वह उनकी माँ है। चारों ने मिल के तीन लोक की रचना की और आप निरंजन न्यारे हो गये। सत्तपुरुष का भेद थोड़ा सा जो निरंजन को मालूम था, वह उस ने छिपा रक्खा और अपने बेटों को

भी नहीं बताया क्योंकि उन से रचना करने का काम लेना था। जैसे इस सूरज का थोड़ा सा हाल लोगों को मालूम है, वैसे ही सत्तपुरुष का ज़रा सा हाल निरंजन को मालूम था, उस को गुप्त रक्खा और न्यारे होके आप सत्तपुरुष के ध्यान में मसरूफ़ हुआ और जब जब ज़रूरत हुई, तब अवतार धारन करके इस लोक में आया। कृष्ण का अवतार सोलह कला का सम्पूर्ण था। राम का अवतार बारह कला धारी था और परसराम का आठ कला धारी था। निरंजन को नारायण भी कहते हैं।

जोत निरंजन दोउ कला, मिल कर उतपति कीन।।
पाँच तत्त और चार खान, रच लीने गुन तीन।।
गुन तीनों मिल जक्त का, किया बहुत विस्तार।।
ऋषी मुनी नर देव अदेव, रच बाढ़यो हंकार।।

ब्रह्मा विष्णु महेश, और चौथी जोती मिली।
भर्म जाल की फाँस, जीव न पावें निज गली।।

आप निरंजन हुये नियारे। भार सृष्टि सब इन पर डारे।।
दीप रचा इक अपना न्यारा। ता में कीन्हा बहु विस्तारा।।
पालंग आठ दीप परमाना। जोग आरम्भ कीन विधि नाना।।
स्वाँस खैंच निज सुन्न चढ़ाये। धुन प्रकटी और वेद उपाये।।
वेद मिले ब्रह्मा को आये। देख वेद ब्रह्मा हरखाये।।
मुख चारों से धुन उच्चारी। ताते वेद भये पुनि चारी।।
ऋषि मुनि मिल फिर किया पसारा। कर्म धर्म और भर्म सम्हारा।।
सिमरित शास्तर बहु विधि रचे। कर्म धर्म में सब मिल पचे।।
खोज निरंजन किनहुँ न पाया। वेदहु नेत नेत गोहराया।।

सवाल ५१—मुहम्मद ने चाँद के दो टुकड़े कैसे किये?

जवाब—चाँद से मतलब इस चंद्रमा से नहीं है। यह तो उपग्रह है। छठे चक्र का चन्द्रमा जो कि दसवें द्वार से मुताबिक़त रखता है यानी उस की छाया है, उस से

मतलब है। मुहम्मद ने इसके दो टुकड़े किये यानी उस स्थान को चीर कर पैठे। बानी में भी कहा है।

पाँच रंग निरखे तत सारा। चमक बीजली चन्द्र निहारा।।
फोड़ा तिल का द्वारा हो।

मुहम्मद की रसाई सहसदल कँवल के नीचे तक थी। उन को दूर ही से घन्टे की आवाज़ सुनाई दी और जोत का दर्शन परदे में हुआ और बुराक़ यानी बिजली की धार पर सवार होकर मेराज हुआ।

सवाल ५२—प्राणों का अभ्यास किस तरह करते हैं?

जवाब—प्राणायाम की कई एक क्रिया हैं, मसलन पूरक कुंभक रेचक यानी प्राणों को खैंचना, ठहराना और उतारना। इस अभ्यास में स्वाँसों के रोकने का ख़ास जतन करते हैं। मगर आज कल दुरुस्ती से किसी से नहीं बनता है। पागल हो जाते हैं या चोला छूट जाता है, क्योंकि इस के संजम बड़े ख़तरनाक़ हैं। प्राण जड़ हैं। सुरत की ताक़त से चैतन्य हो रहे हैं। छठे चक्र के नीचे ही प्राणों की धार रह जाती है और प्रणव तक उस की हद है। प्राणायाम ऐसा है, जैसे किसी को लाठी मार के बेहोश करना। इससे तो क्लोरोफ़ार्म सूँघने से जल्दी और विशेष सुगमता से बेहोशी आती है।

सवाल ५३—गुरू की परख पहिचान किस तरह हो सकती है?

जवाब—जिस का संस्कार है, बाहर दर्शन करते ही उस के सुरत मन का सिमटाव और खिंचाव होता है और अन्तर में दर्शन मिलता है। दूसरों के लिये समझौती है यानी सतसंग और बचन बानी सुनने से परख पहिचान होती है और तीसरे जो कि भोले भाले हैं, दया से अन्तर

में उन को परचे और दर्शन मिलने से परख पहिचान मिलती है।

सवाल ५४—चित्त तो यही चाहता है कि जल्दी से काम हो जावे?

जवाब—चार जनम में काम बनता है। यह कोई देर नहीं है। अगले ज़माने में लोग कितनी काष्ठा उठाते थे? कई जुग तपस्या करते थे, तब किसी बिरले की जोगी गति होती थी और आज कल ऐसी दया है कि घर बैठे हुए जो कोई चित्त से तन मन धन की न्यौछावर करे तो काम उस का फ़िलफ़ौर बनता है।

सवाल ५५—बीमारी से भक्ति में क्या हर्ज नहीं होता?

जवाब—बीमारी में भक्त जन के सुरत मन और ज़्यादा सिमटते और चढ़ते हैं, इस में दया है, हर्ज नहीं है।

सवाल ५६—किस हालत में झूठ बोलना जायज़ है?

जवाब—"दरोग़ मसलहत आमेज़ बेह अज़ रास्ती फ़ितना-अंगेज़"। मसलन किसी के घर में चोर घुसने वाले हैं या कोई किसी को मारने का इरादा करता है तो उनको झूठ बोल कर बहका देना, यह कोई गुनाह नहीं है बल्कि सच से बेहतर है, यानी जिस में किसी दूसरे का हर्ज नुक़सान न हो और अपनी नीयत साफ़ है तो वह झूठ नहीं है। अगर कोई फ़िज़ूल बकता रहे कि मेरे बाप दादा ऐसे थे वैसे थे और कहे कि इसमें किसी का हर्ज नहीं है, इसलिये झूठ नहीं है तो यह नादानी है और ऐसा शख़्स ज़रूर धोखा खायगा।

सवाल ५७—चार जनम किस तरह रक्खे गये हैं?

जवाब—एक एक जनम में तीन तीन चक्र तै होते हैं। गुदा इन्द्री नाभि पहला जनम समझना चाहिये। यहाँ अभी यह नर पशु है। हिरदय चक्र में नर होता है। हिरदय कंठ छठा चक्र दूसरा जनम है। यहाँ देव गति होती है। सहसदलकँवल त्रिकुटी सुन्न में तीसरा जनम होता है। यहाँ हंस गति हासिल होती है। महासुन्न भँवरगुफा सत्तलोक में पहुँच कर चौथा जनम होता है। यहाँ परम हंस गति को प्राप्त होता है। जोकि संस्कारी हैं, वह एक ही जनम में दो जनम की कार्रवाई कर लेते हैं। फिर दूसरे जनम में इनका तीसरा जनम शुरू होता है। बहुतेरे ऐसे मौजूद हैं। मरने के बाद तो सतसंगी सहसदलकँवल और उसके ऊपर पहुँचाये जाते हैं। वहाँ भक्ति कराके फिर यहाँ लाये जाते हैं। फिर अभ्यास करके जब चढ़ाई करते हैं, तब उनका वह स्थान पक्का होता है। अगर कोई उपदेश लेके छोड़ देता है और अभी भक्ति नहीं की है या किसी ने सिर्फ़ दर्शन किया है तो उस पर अभी गोया बीजा पड़ा है, दूसरे जनम में उसका पहिला जनम शुरू होगा।

सवाल ५८—क़ौमी कर्म किस को कहते हैं?

जवाब—किसी गाँव या शहर के लोगों के नाक़िस कर्मों का जब एक ही वक़्त में आकाश मंडल में मजमूआ होता है, तब उनका का सूक्ष्म असर मरी, अकाल या और कोई मुसीबत का रूप लेकर नाज़िल होता है। इसको क़ौमी (National) कर्म कहते हैं। जो और देश के लोग वहाँ आकर मरते हैं, उन का भी ज़रूर कोई न कोई सम्बन्ध है, तब वहाँ जाकर उनके हिसाब में शामिल हुए।

सवाल ५९—लोग कहते हैं कि सतसंग में कोई जादू है। जो कोई जाता है वह फँस जाता है। ऐसे ही और अनेक तरह की निन्दा करते हैं?

जवाब—जो सचाई है, वही जादू है यानी जिसको कि मालूम होता है कि सच्चा भेद क्या है, वह फ़ौरन लग जाता है और जिनको ख़बर नहीं है, वे समझते हैं कि जादू है। जो कि निन्दक हैं, उन पर बड़ी दया राधास्वामी दयाल की है। वे गोया हर वक़्त सुमिरन करते हैं। उनके चित्त में ऐसा विरोध होता है कि नाम सुनते ही अन्तर में उनके जलन पैदा होती है, गोया माया जलती है। दूसरे जनम में ऐसे जीव बड़े विरही होते हैं।

सवाल ६०—अगर किसी की ऐसी मुलाज़िमत है कि कचहरी में उससे किसी को सज़ा देने के लिये राय पूछी जावे और वह ऐसी राय दे जिससे उसको सज़ा मिले तो यह गुनाह है या क्या?

जवाब—अगर तुम्हारी समझ में ऐसा ही आता है तो उसके कहने में कोई दोष नहीं है, क्योंकि अगर कोई बदमाश है, जिसके सबब से बहुत से लोगों को तकलीफ़ पहुँचती है, वह अगर सज़ायाब होवे तो कुछ हर्ज नहीं है। मतलब यह है कि जैसा जिसकी समझ में आवे, उसके कहने में कोई बुराई नहीं है। राय आप से तो कोइ नहीं देता है। जब पूछा जाता है, तब जो राय हो, देने में क्या दोष हो सकता है? कोई सतसंगी जज है तो उसको फ़ैसला करना पड़ता है। अगर वह मुजरिम को अपनी समझ अनुसार फाँसी भी दे दे तो कोई दोष नहीं है। पर जिस पर मालिक की दया है, उसको ऐसे झगड़ों में ही नहीं रखता है जिससे कि वृत्ति ख़राब होवे। हम जब हु.ज़ूर साहब के चरनों में नहीं आये थे, तब हमारे लिये

डिप्टी मजिस्ट्रेट होने का बिल्कुल बन्दोबस्त था, मौज ऐसी हुई कि बच गये। और भी दूसरी दफ़े जब हम हुज़ूर साहब के चरनों में आये थे, तब तजवीज़ हुई, वह भी मौज से टल गई। मतलब यह है कि जिस पर मालिक की दया है, उसको ऐसे कामों में नहीं फँसाता है।

जितने महकमे हैं, उन सब में दफ़्तर का काम अच्छा है। इसमें कोई तरद्दुद नहीं है। और पुलिस का काम बहुत ख़राब है। महकमा तालीम भी अच्छा है, मगर इसमें लड़कों का अफ़सर बनना पड़ता है और गुरुआई का अहंकार होता है।

सवाल ६१—तन की मोटाई परमार्थ में मुज़िर है या नहीं?

जवाब—यह बात नहीं है कि जिनका तन मोटा है उन का मन भी मोटा हो। बहुतेरे ऐसे हैं, जिनका तन बहुत दुबला है तो भी मन अपनी नटखटी नहीं छोड़ता है, पर जो निहायत मोटा तन है, वह अच्छा नहीं है।

सवाल ६२—काम (कर्म) की तारीफ़ क्या है?

जवाब—काम (कर्म) चैतन्य का ज़हूरा है।

सवाल ६३—सतसंग का कर्म क्या है?

जवाब—सतसंग में चित्त लगा कर बानी और बचन का श्रवन करना, मन इन्द्रियों के भोगों में न बरतना, सुमिरन ध्यान और भजन बिला नाग़ा करना और जब पूरे गुरू मिल जावें, तब तन मन धन से उनकी सेवा करना और मन की तरंगों को रोकना, यही सतसंग का कर्म है।

सवाल ६४—हमारा तो सतसंग में चित्त लगता ही नहीं है, इस का क्या इलाज करें?

जवाब—इधर उधर घूम घाम कर आओ, तब मन लगेगा। अगर सच्ची चाह होगी तो पछता कर फिर तेज़ी से लगेगा, क्योंकि मन का स्वभाव है कि जब तक तकलीफ़ उठा कर आप नहीं देख लेता है, तब तक किसी का कहना हरगिज़ नहीं मानता है। मालिक देखता है, अगर किसी के अभी कर्म ज़्यादा हैं तो उस को छोड़ देता है। जब मौज होती है, तब फिर सतसंग और अभ्यास कराके दुरुस्त करता है।

सवाल ६५—सतसंग में रहने पर भी हालत नहीं बदलती और मन सीधा नहीं चलता, इसका क्या इलाज करें?

जवाब—खाना आधा कम करो। छः महीने में देखो तो हालत बदलती है कि नहीं। पर ऐसा न होवे कि एक ही वक़्त नाक तक भर कर खाना और फिर कहना कि हम तो एक ही वक़्त खाना खाते हैं। जहाँ खाना सामने आया, बस बैल के माफ़िक़ लग गये, पूर्ण वृत्ति खाने में आ गई, खाने का रूप हो गये और फिर पशुओं के माफ़िक़ सो गये। ऐसे तो साँप भी एक ही वक़्त खाकर पड़ा रहता है। और बहुतेरे संसारी लोग हैं, मसलन ब्राह्मन, कि एक ही वक़्त डेढ़ सेर आटा खाकर और दो लोटे पानी के चढ़ा कर पड़े रहते हैं। अगर इसी तरह कोई एक वक़्त खाना खायगा तो कुछ फ़ायदा नहीं होगा। इतना तो है कि खाना कम खाने से क्रोध कुछ बढ़ेगा, पर दूसरे विकारी अंग सब ढीले हो जायेंगे और स्थूल अंग सब झड़ जायँगे। अगर ज़्यादा शौक़ीन परमार्थ का है तो खाने की मौताद आधी करनी चाहिये।

स्वामी जी महाराज का बचन है कि जो शब्द का रस चाहे तो मुनासिब है कि एक वक़्त खाना खावे और जो हर रोज़ दो या तीन बार खाना खायगा, उस को शब्द का रस हरगिज़ नहीं आवेगा। हुज़ूर साहब को देखा था, कई रोज़ बिलकुल खाना छोड़ देते थे और बहुत ही कम खाते थे। जो कि संस्कारी है, उसको तो सिर्फ़ इशारा काफ़ी है और जो बैल है, उस को बहुतेरा समझाओ, कुछ भी असर नहीं होता है। खाना जो खाते हैं, उस के सूक्ष्म अंग से मन का मसाला बनता है। अगर खाना कम किया जायगा, तो विकारी अंग ज़रूर दुबले पड़ जायँगे।

सवाल ६६—यों तो खाना नहीं घटता, दया होवे तो कोई बीमारी हो जावे?

जवाब—बीमारी से खाना छोड़ना, इस से यह बेहतर होगा कि आप से आप कम हो जावे। अगर खाना कम खावे तो बीमारी भी कम होवे। कोई न कोई संस्कार ज़रूर है, जिससे यह जीव सतसंग में आता है। अगर पड़ा रहेगा तो आहिस्ता आहिस्ता एक रोज़ ज़रूर सफ़ाई हो जायगी। बाहर के पत्थर से फिर भी पानी में का पत्थर बेहतर है क्योंकि थोड़ी बहुत शीतलता उस के अन्दर ज़रूर रहती है।

पड़ा रहा सन्त के द्वारे, बनत बनत बन जाय।। टेक ।।
तन मन धन सब अरपन करके, धके धनी के खाय।। १।।
स्वान बिर्त आवे सोइ खावे, रहे चरन लौलाय।। २।।
मुरदा होय टरे नहिं टारे, लाख कहो समझाय।। ३।।
पलटूदास काम बन जावे, इतने पर ठहराय।। ४।।

सवाल ६७—क़र्ज़ जो लिया जाता है, उस के बक़ाया को क्या दूसरे जनम में भी देना पड़ता है?

जवाब—चार जनम तक अदा करना पड़ता है। अगर सीधे तौर पर इस जनम में न दिया तो आइन्दा किसी जनम में देनदार, साहूकार बनता है और लेनदार, गुमाश्ता होता है और गुमाश्ता उस का माल हज़म कर लेता है। ग़र्ज़ कि लेनदार कभी न कभी किसी सूरत से लेकर छोड़ता है और इस तरह देनदार का कर्म बोझ हलका होता है।

सवाल ६८—स्वामीजी महाराज के जीवन चरित्र में लिखा हुआ है कि मेरा मत तो सत्तनाम और अनामी का था और राधास्वामी मत हुज़ूर साहब का चलाया हुआ है, इस को भी चलने देना, इसका क्या मतलब है?

जवाब—जैसे कि संत जो कहा करते हैं कि हम संत नहीं हैं, उन का फ़रमाना ठीक है, क्योंकि संत कभी झूठ नहीं बोलते हैं। इसका मतलब यह है कि संतों का निज रूप दयाल देश में है और हिरदय का मुक़ाम दसवाँ द्वार है, जैसे कि जीवों का सुरत रूप छठे चक्र में है और हिरदय कौड़ी का मुक़ाम है। और स्वामीजी महाराज परम संत कुल मालिक राधास्वामी दयाल के अवतार थे, उन के हिरदय का स्थान सत्तनाम अनामी था और निज रूप उन का धुर पद राधास्वामी में। यहाँ जो बोलता है, वह हृदय के स्थान पर बैठ कर बोलता है जो कि मुक़ाम मन का है। पस जो जीव कहे कि मैं सुरत नहीं हूँ, ठीक है। इसी तरह संतों का कहना कि हम संत नहीं हैं, बजा और दुरुस्त है। ऐसे ही जो कुछ कि स्वामीजी महाराज ने फ़रमाया था, दुरुस्त और सही था।

सवाल ६९—सतगुरु सत्तपुरुष के औतार हैं और उन की धार दयाल देश से आकर स्थूल शरीर में कार्रवाई करती है यानी जो जो संत कि आते हैं, उन सब

की धार एक ही होती है, लेकिन बाहरी रूप उनके जुदा जुदा नज़र आते हैं। इसकी क्या वजह है? जब कि सत्त धार ही रूप धारन करती है तो बाहर का स्वरूप एकसा सब का क्यों नहीं होता है?

जवाब—सतगुरु जिस मंडल में कि रूप धारन करते हैं, वह रूप उसी मंडल के मसाले का होता है, ऐसे ही जब इस देश में अवतार लेते हैं, तब रूप उनका माँ बाप और जिस कुटुम्ब में कि अवतार होता है, उस के और भी रिश्तेदारों और फ़िरक़े और उस वक़्त की रचना के मसाले और हालत के अनुसार होता है, पर उनके माँ बाप के स्थूल शरीर में चैतन्यता विशेष होती है और वह ज़्यादा साफ़ और पवित्र होते हैं। सतगुरु की देह अलबत्ता यहाँ के मसाले की होती है और उस पर रिश्तेदारों वग़ैरा का असर होता है, पर सुरत पर किसी का असर नहीं होता है। अब देखिये खत्रियों का रंग गोरा होता है और कायस्थों का कनक रंग। तो मालूम हुआ कि जाति का भी स्थूल शरीर पर असर होता है। बाहर में संतों का सिर्फ़ चेहरा किसी क़दर एक सा होता है और उस में भी ख़ास करके आँख और पेशानी। अगर ग़ौर करके हुज़ूर महाराज और स्वामीजी महाराज की तसवीर देखो तो आँख और पेशानी में कोई फ़र्क़ नज़र नहीं आता।

साध का निरखो आँख और माथा।
सत का नूर रहे जिस साथा।।
यह चिन्ह देख करें पहिचान।
गुरु पद का जिन हिरदे ज्ञान।।

और मग़्ज़ संतों का एक सा होता है। ग़र्ज़ कि ब्रह्मांड तक अलबत्ता थोड़ा फ़र्क़ है, पर सत्तलोक में रत्ती भर भी फ़र्क़ नहीं है। त्रिकुटी में गुरू का रूप पूरा और

साफ़ तौर पर नज़राई पड़ता है। कहने का मुद्दा यह है कि अन्तरी स्वरूप सब संत सतगुरुओं का एक ही है। बाहरी स्वरूप जिस कुटुम्ब में कि पैदा होते हैं, उस की हालत के ब-मूजिब होता है।

सवाल ७०—संतों की सत्ता या हस्ती (entity) और व्यक्ति या अहदियत (Individuality) में क्या फ़र्क़ है?

जवाब—ज़ात में फ़र्क़ नहीं है। पर द्वारों के जुदा २ होने से उन की व्यक्ति क़ायम होती है यानी जिस द्वारे से जो संत सुरत आती है, वही उस की व्यक्ति है, जैसे समुद्र में से पचास नदी निकल कर अलग २ बह रही हैं, तो जल में कोई फ़र्क़ नहीं है, द्वारों के होने से उन में फ़र्क़ नज़राई पड़ता है। द्वारे के बाहर संत गोया जल में मछली रूप जुदा जुदा सूरतों में दिखलाई देते हैं पर द्वारे के अन्दर जल में जल रूप हैं।

सवाल ७१—प्रलय किस को कहते हैं?

जवाब—जब माया मुंजमिद हालत से परमाणु हालत में तबदील हो जावे तो उसका नाम प्रलय है।

सवाल ७२—जो बच्चा कि पैदा होते ही मर जाता है, उस की सुरत को नर देही यानी इस जनम का क्या फ़ायदा हुआ?

जवाब—उस जीव के प्रारब्ध कर्म में इतनी ही देर नर देही मिलना था। इस में उस जीव का फ़ायदा और कम-बख़्ती दोनों हो सकता है। अगर किसी ऊँचे स्थान की सुरत है और किसी ख़ास प्रारब्ध कर्म की वजह से उस को इतनी देर के लिये नर देह मिलना ज़रूर था तो वह इस के बाद अपने ऊँचे स्थान पर चली जाती है।

इस में उसका फ़ायदा हुआ। और अगर कोई नापाक सुरत है तो इतनी देर नर देह पाकर फिर किसी नीची जोन में चली जाती है। इस में गोया उस की कम-बख़्ती है। असल में तो जीव अपने प्रारब्ध कर्म के फल की वजह से जन्म लेता है। लेकिन कुछ माँ बाप का भी लेन देन होता है, मगर बहुत कम।

सवाल ७३—जो जीव कि अभ्यास करके ऊँचे लोक तक पहुँच गये, फिर उन को नर देही में लाने की क्या ज़रूरत है? क्या वहाँ से चढ़ाई नहीं हो सकती है?

जवाब—ऊँचे लोकों में चढ़ाई का अभ्यास नहीं हो सकता क्योंकि अभ्यास उस शरीर से हो सकता है कि जिस में कुल रचना का नमूना ठीक तौर पर हो यानी तीनों दरजों के कुल चक्र कँवल और पदम मय अपनी ताक़त के यानी तरक़्क़ी करने की ताक़त के साथ मौजूद हों। यह बात ऊपर के लोकों के शरीरों में नहीं है। वहाँ कुछ चक्र ठीक हैं, और कुछ बराय नाम सिर्फ़ लाइन यानी निशान के तौर पर हैं और उन में तरक़्क़ी की ताक़त नहीं है, इसलिये वहाँ चढ़ाई का अभ्यास नहीं हो सकता। जिस तरह कि इस रचना में सिवाय मनुष्य के और जीवों जैसे जानवर वग़ैरा में हालाँकि दिमाग़ मौजूद है, लेकिन उनमें सोच व विचार नहीं है और इसलिये वह अभ्यास के ना-क़ाबिल हैं। मनुष्य मन के स्थान पर जो कि हिरदे चक्र है, उसमें बैठने वाला है, सिर्फ़ वही अभ्यास कर सकता है, क्योंकि उसमें कुल रचना का सिलसिलेवार नमूना ठीक तौर पर मौजूद है। इसी वास्ते कहा है कि ख़ुदा ने आदमी को अपनी ही सूरत पर बनाया है। इस पृथ्वी की चोटी हिरदे चक्र तक है और इसलिये उसमें या और पृथ्वियों में जो इसके मुक़ाबिले

में हैं, जो मनुष्य हैं, उनमें छः चक्र नीचे के सिलसिलेवार मौजूद हैं और फिर ऊपर के चक्र भी जिनके यह षटचक्र अक्स हैं, सिलसिलेवार मौजूद हैं। अब अगर किसी लोक में जीव की जो कंठ चक्र में हो, मिसाल ली जावे तो उसके शरीर में कंठ चक्र से तीन नीचे के स्थान यानी हिरदय और नाभि और इन्द्री चक्र तो ठीक होंगे मगर चौथा यानी गुदा चक्र बिलकुल बराय नाम लकीर के मुवाफ़िक़ होगा, पूरा चक्र न होगा, इसी वास्ते उसका बिम्ब यानी वह स्थान कि जिसका गुदा चक्र प्रतिबिम्ब है, ठीक न होगा। इसलिये कुल रचना का नमूना ऐसे शरीर में ठीक तौर पर नहीं हो सकता और इसी वास्ते उस शरीर में चढ़ाई का अभ्यास नहीं हो सकता, क्योंकि जब पेंदा ग़ायब है तो उस पर इमारत कैसे दुरुस्त बन सकती है और इस मिसाल के ही मुवाफ़िक़ ऊपर के लोकों का हाल समझना चाहिये। चढ़ाई के अभ्यास के लिये ज़रूर नर देह में आना पड़ेगा और इस बात से तसदीक़ मुसलमानों के इस क़ौल की कि फ़रिश्तों के गुदा चक्र नहीं होता, होती है और मनुष्य कि उसमें षट चक्र ठीक तौर पर मौजूद हैं, गो उस के कोई अंग भी भंग हों यानी लंगड़ा लूला या अन्धा हो, अभ्यास करने के क़ाबिल है। अगर कोई चक्र न होगा तो वह इस देह में ठहर नहीं सकता और जैसे जब तक डोरी नीचे बाँधी न जावे, पतंग उड़ नहीं सकती, इसी तरह अभ्यास के लिये पेंदा यानी तलेहटी की ज़रूरत है। यहाँ जो अभ्यास कराया जाता है, तो एक डोरी नीचे लगी रहती है, ताकि उसके ज़रिये से उतर आवे और फिर चढ़ जावे और इसलिये सिवाय इस देश के और कहीं षट चक्र में या ऊपर के देश में अभ्यास बनना मुमकिन नहीं। अलबत्ता वहाँ समझ बूझ, माया सूक्ष्म होने से, ज़्यादा है। सो संत

बचन सुनाते और प्रीति प्रतीति दृढ़ कराते रहते हैं। अभ्यास के लिये फिर यहाँ ही लाना होता है।

सवाल ७४—भजन में गुनावन ज़्यादा उठती हैं, इस का क्या सबब है?

जवाब—संचित कर्म के जो नक़्श अन्तर में पड़े हुए हैं, शब्द धार के प्रकट होने से वह जाग उठते हैं और गुनावन रूप होकर ख़ारिज किये जाते हैं।

अगर भजन में मन न लगे तो नेम के मुवाफ़िक़ थोड़ी देर भजन करके सुमिरन ध्यान ज़्यादा करना चाहिये। ग़र्ज़ कि जिस काम में मन ज़्यादा लगे, उस को ज़्यादा और दूसरे को नेम के मुवाफ़िक़ करे। ध्यान में प्रेम की धार जागती है और वह उन नक़्शों को ढक देती है। मतलब यह है कि जिस में मन और सुरत का सिमटाव हो, वही काम ज़्यादा करे।

सवाल ७५—मालिक तो अरूप और सर्व व्यापक है। उस के ध्यान करने में यह दिक़्क़त पेश आती है कि ध्यान बग़ैर किसी स्वरूप के नहीं हो सकता, तो जब मालिक को अरूप कहा है, तो कैसे ध्यान किया जा सकता है, क्योंकि सर्व व्यापक किस तरह एक सूरत में मुक़इयद हो सकता है?

जवाब—जीवों के अन्दर ऊपर के मुक़ामात के सब पट बन्द हैं। सिर्फ़ एक ख़फ़ीफ़ धार ऊपर से टपकती है, जैसे नदी का पानी बन्द से छन कर ज़रा ज़रा निकले। अब जो कोई कि अभ्यास करके उन पटों को खोले या दिमाग़ की सोती हुई ताक़तों को जगावे और उस की रसाई अन्तर में निर्मल चैतन्य के भंडार तक हो जावे या उस भंडार से ही कोई लहर उमड़ कर इस

लोक में आवे, जो स्वतः संत कहलाते हैं और उनके अन्तर में सब पट खुले होते हैं, इन दोनों को मालिक का अवतार समझना चाहिये। अब जानना चाहिये कि ध्यान के मानी सिलसिला क़ायम करने के हैं तो जो शब्द कि अन्तर में हो रहा है, उस का सुनना यह अरूपी ध्यान मालिक का है, क्योंकि वह शब्द भी अरूप है और उस के सुनने से सिलसिला मालिक के साथ क़ायम हो सकता है और जो अवतार मालिक ने संत सतगुरु रूप में धरा, उस रूप का ध्यान करना, यह मालिक का स्वरूपी ध्यान करना है। जैसे मेसमेरिज़्म में मामूल की कोई चीज़ मिस्ल नाख़ून बाल या इस्तैमाल की हुई चीज़ किसी शख़्स को छुआ दें तो वह उस शख़्स का हाल बता सकता है और उस के साथ सिलसिला क़ायम हो जाता है, इसी तरह सन्त सतगुरु के ध्यान के वसीले से कुल मालिक के साथ सिलसिला क़ायम हो जाता है। उन के जिस्म का मसाला भी निहायत सूक्ष्म और महा पवित्र है और जो चीज़ मसलन वस्त्र वग़ैरा उन के इस्तेमाल में आया हो, वह भी पवित्र है, क्योंकि उस का, उस चैतन्य धार ऊँचे मुक़ाम की से, जो सीधी निर्मल चैतन्य के भंडार से संत सतगुरु के अन्दर आ रही है, संजोग होता है। इस वास्ते ऐसी परशादी का मिलना बड़-भागता का बाइस है और इसीलिये संत सतगुरु की तसवीर के साथ निहायत ताज़ीम और अदब के साथ बर्ताव करना मुनासिब है और ऐसा बर्ताव अदब और प्यार का निशान है, न कि तसवीर से मुक्ति की आस रखना है। जैसे जब कि लार्ड राबर्ट्स ने किसी लड़ाई में फ़तह पाई तो कलकत्ते में उनकी तसवीर पर हज़ारों हार चढ़ाये गये, यह गोया अदब और प्यार का बर्ताव था, इसी तरह सतगुरु की तसवीर पर हार चढ़ाना मत्था

टेकना अदब और ताज़ीम और मोहब्बत का इज़हार है। सब जीव मिस्ल अन्धों के हैं, सो अन्धे यहाँ अपना रास्ता टटोल लेते हैं, पर अन्तर का मार्ग और भेद बिना संत सतगुरु के बतलाये कोई नहीं जान सकता है। इस वास्ते संत सतगुरु के सतसंग और उनके स्वरूप के ध्यान की महिमा भारी है। उन्हीं के ज़रिये से अरूपी स्वरूप मालिक से मेला होगा।

सवाल ७६—संतों ने जो चार जनम मुक्ति के लिये मुक़र्रर किये हैं, इस का कोई बाहरी प्रमाण भी है या महज़ संतों का बचन है, इस लिये यक़ीन करना चाहिये?

जवाब—बाहरी प्रमाण तो कोई नहीं है। अलबत्ता चार लोक जो बयान किये हैं तो एक एक जन्म में एक एक लोक का हिसाब है। जीवों की चढ़ाई का हाल संतों को ही मालूम रहेगा। जीवों को कुछ मालूम न होगा। अलबत्ता दूसरे जनम में ख़फ़ीफ़ सा और तीसरे जनम में ज़्यादातर मालूम होगा। अभी तो यह नर-पशु है। फिर नर होगा। यानी एक जनम में गुरु भक्ति पूरन करके सहसदल कँवल को प्राप्त होगा। फिर दूसरे जनम में अभ्यास करके नाम-पद यानी त्रिकुटी में पहुँचेगा। उस के बाद तीसरे जनम में मुक्ति पद यानी दसवाँ द्वार खुलेगा और चौथे जनम में निज धाम यानी सत्तलोक में रसाई होगी।

आदमियों की मौत छठे चक्र के आगे जो तीसरा तिल यानी श्याम द्वारा है, उस में गुज़र कर होती है और चौपायों और दीगर मख़लूक़ की मौत हिरदे चक्र को पार करने पर होती है। इनसान में तो सुरत की ताक़त अव्वल मन-आकाश में आती है और फिर मन-आकाश से इन्द्रियों में पहुँच कर बाहर की कार्रवाई करती है, गोया

छठे चक्र से जहाँ कि सुरत की बैठक जिस्म में है, वहाँ से बराबर ताक़त आ रही है। इस वास्ते इनसान छठे चक्र को पार करके मरता है। लेकिन जानवरों में मन-आकाश से ही काम होता है और वहाँ तक खिंचाव होने पर मौत हो जाती है यानी जानवर वह है जिस में हिरदे चक्र की चैतन्यता की ताक़त काम कर रही है।

तीन तीन चक्र के आगे एक एक मैदान बतौर हद्द फ़ासिल के है। चिदाकाश जो दरमियान सहसदल कँवल व छठे चक्र के वाक़ै है, उसमें ब्रह्मा विष्णु और महेश के स्थान उसी तरह हैं, जैसे महासुन्न में कुछ स्थान कहे गये हैं।

प्रलय या महा-प्रलय में जीवों के कर्म का ख़याल नहीं होता है। आदि कर्म रचना का ख़याल होता है।

सवाल ७७—अभ्यास के वक़्त जो गुनावन का चक्कर आता और कभी नींद का ग़लबा हो जाता है और सतसंग में भी नींद आ जाती है, इसका क्या बाइस है और कैसे दूर हो?

जवाब—इन सब बातों का असली सबब मलीनता है और यह सतसंग और अभ्यास की मदद से रफ़्ते-रफ़्ते दूर होगी और इस के लिए इलाज भी है, मसलन जब नींद आवे तो मुँह धोकर टहलना या सतसंग में अपने पास वाले से कह देना कि जब नींद आवे तो चुटकी भर ले और या जबान को दाँत से दबा कर काटना और गुनावन के लिये सुमिरन ज़ोर से करना या किसी शब्द की कड़ी का पाठ करना वग़ैरा २। मगर असली फ़ायदा जब ही होगा, जब मन की मलीनता दूर होगी, सो नेम के साथ अपना अभ्यास और सतसंग किये जाय और

जल्दबाज़ी न करे, बल्कि मौज पर इस काम को छोड़ दे, क्योंकि जो जल्दी करेगा, और ज़्यादा ज़ोर लगावेगा तो कुछ ऊपरी फ़ायदा थोड़ी देर के लिये होना मुमकिन है, मगर असली फ़ायदा न होगा, जैसे कि अगर मल पेट में .ख़ुश्क हो गया है तो पिचकारी वग़ैरा यानी पानी ज़ोर से छोड़ने से कुछ सफ़ाई और तसकीन हो सकती है, पर पूरी सफ़ाई जब होगी, जब मैल को फुलाने की दवा दी जावे और फिर साफ़ करने की। सतगुरु मौज से इसी तरह सफ़ाई करते हैं यानी इस को पहले कुछ अर्से तक मुलइयन दवा देंगे कि जिसमें अन्तर का मैल फूले और फिर एक दम सफ़ाई कर देंगे। संतों को सफ़ाई की जुगती ख़ूब आती है। मौज से सतसंग में भी दो चार ऐसे शख़्स रहते हैं जो दूसरों की गढ़त करते रहें और मन को भिंचा रक्खें और ऐसे शख़्स हमेशा सतसंग में रक्खे जावेंगे, क्योंकि जहाँ गुलाब का फूल होता है, उस की हिफ़ाज़त के लिये काँटे ज़रूर होते हैं और जहाँ शहद होता है, तो मक्खियाँ ज़रूर होती हैं। इस से परख भी साधों की होती है, क्योंकि जो गुलाब लेना चाहता है, वह काँटों की परवाह नहीं करेगा।

सवाल ७८—महात्माओं के बचन में आया है कि एकान्त में बड़ा फ़ायदा है बशर्ते कि सिवाय मालिक के दूसरे का ख़याल न आवे और जो बाहर से एकान्त हुआ और अन्तर में ख़याल उठते रहे तो वह शैतान और मन का संग है। तो भजन में जो गुनावन उठती है वह भी मन का और शैतान का संग हुआ या नहीं?

जवाब—थोड़ा बहुत तो मन का संग बेशक हुआ और उसकी हद भी बहुत दूर तक है, लेकिन संचित कर्म की वजह से गुनावन उठती है और वह कर्म अभ्यास के

वक़्त काटे जाते हैं। जो गुनावनों का साथ न दे और दुनियावी चाह भजन के वक़्त अपनी तरफ़ से न उठावे तो यह मन का मुक़ाबला और लड़ाई करना है, न कि संग करना। और जो भजन में बैठ कर दुनियावी चाह में मशग़ूल हो जावे, तो बेशक शैतान का संग है।

सवाल ७९—अगर किसी को सतगुरु का सतसंग हासिल नहीं है तो वह फिर क्या करे?

जवाब—जो कि सरन में आये हैं, उन सबको देर सबेर सतसंग अन्तर और बाहर एक रोज़ ज़रूर मिलेगा। अगर कोई कहे कि जब पचास साठ हज़ार सतसंगी होंगे तब उन को सतसंग कैसे हासिल होगा, तो उसका जवाब यह है कि जैसे सत्तलोक में अनन्त सुरतों को जब बिना करनी पहुँचाया जायगा, तब अनन्त दीप रचे जायेंगे और वहाँ उन सुरतों का क़याम होगा, पुरुष का दर्शन बिलास और अमी का अहार मिलता रहेगा, सिर्फ़ फ़ासले का फ़र्क़ होगा यानी दूरी या नज़दीकी होगी, वैसे ही यहाँ भी ऐसी कलें ईजाद की जायेंगी कि जहाँ जहाँ सतसंगी होंगे वहाँ वहाँ बटन दबाने से पूरे गुरू का दर्शन (वह कहीं विराजमान हों) मिलेगा और बचन बिलास सब सुनाई देंगे और देखने में आवेंगे, सिर्फ़ दूरी और नज़दीकी का फ़र्क़ होगा।

सवाल ८०—अगर कोई मुअज़्ज़िज़ सतसंगी किसी हाकिम या प्रेमी जन के पास दूसरे सतसंगी की शिकायत करे और उसने कोई क़सूर नहीं किया है तो भी उस पर इलज़ाम आवे तो उसके पिछले कर्म का फल समझना चाहिये या क्या?

जवाब—अगर क़सूर नहीं किया है और पकड़ा जावे तो समझना चाहिये कि पिछले कर्म-फल का भोग है।

सवाल ८१—माया कहाँ से प्रकट हुई?

जवाब—त्रिकुटी से।

सवाल ८२—दुनियादार जो मरते हैं, उनको शब्द सुनाई देता है कि नहीं?

जवाब—वह ऐसे कुटते पिटते जाते हैं कि शब्द नहीं सुनाई देता, और तीसरे तिल में तो हो कर जाते हैं और जोत का दरशन भी पाते हैं, मगर फुरना उठ कर तुरंत उन को नीचे गिरा देती है और सुरतें रास्ते में जो तलवार की धार के मुवाफ़िक़ है, कट कट कर गिरती हैं, मगर राधास्वामी मत वालों का यह हाल नहीं होता है, उन को शब्द साफ़ सुनाई देता है। जिसने राधास्वामी नाम बाहर से भी सुना है, उस का भी बचाव हो जाता है।

सवाल ८३—सुरत का जागना किस को कहते हैं?

जवाब—जिस क़दर जिस का परदा दूर हुआ है, उसी क़दर गोया उसकी सुरत जागी हुई है।

सवाल ८४—मुरदों के नाम पर जो खिलाया जावे तो उनकी रूह को कुछ फ़ायदा हो सकता है या नहीं?

जवाब—हाँ होता है। चुनांचे कई मुआमले ऐसे हुए कि मुर्दे के नाम पर जो खिलाया तो उस की रूह ने ख़्वाब में खिलाने वाले से अपनी ख़ुशी ज़ाहिर की और कहा कि अब मैं आराम से हूँ और तकलीफ़ जो पहिले थी, अब नहीं है। और जिनको कि खिलाया जाता है, जिस दरजे की उनकी रूहानियत है, उसी दरजे का फ़ायदा खिलाने वाले को होता है यानी जहाँ तक रसाई खाने वाले की रूह की है, वहाँ तक उस का असर

पहुँचता है और वहाँ के भंडार से वर्षा होती है। फिर जो कोई संतों को खिलावे और वह खाना उन की देह के पालन में काम आवे तो धुर की दया की वर्षा उस पर होवे। साधों के खिलाने का भी कमोबेश यही फ़ायदा है और जब कि खिलाने वाला दूसरे के निमित्त खिलाता है तो सिलसिला उस की रूह का ख़्वाह वह कहीं हो, क़ायम हो जाता है और उसको फ़ायदा पहुँचता है।

सवाल ८५—खटमल आदि कीड़ो के मारने में दोष है या नहीं?

जवाब—जहाँ तक हो सके, उन को दूर करे, मगर चूँकि आदमी का चोला सब से उत्तम है, जो इस को नुक़सान पहुँचता हो तो इन को मारने में कोई दोष नहीं है।

सवाल ८६—संतों ने जो हिन्दुस्तान में अवतार लिया तो और विलायतों के लोगों को क्या फ़ायदा हो सकता है?

जवाब—संतों के अवतार लेने से एक दरजे का फ़ायदा तो सिर्फ़ दूसरी विलायतों को नहीं, बल्कि तमाम लोकों में होगा और जो दूसरी विलायतों में अच्छी करनी वाला कोई होगा, उस का सिलसिला सतसंग से लग जावेगा।

** समाप्त **

राधास्वामी मत की

पुस्तकों का सूचीपत्र

पद्य (हिन्दी)

१) सार बचन छंद बंद, पहला भाग

२) सार बचन छंद बंद, दूसरा भाग

३) प्रेमबानी, पहला भाग

४) प्रेमबानी, दूसरा भाग

५) प्रेमबानी, तीसरा भाग

६) प्रेमबानी, चौथा भाग

७) संत संग्रह, पहला भाग

८) संत संग्रह, दूसरा भाग

९) प्रेम प्रकाश

१०) बिनती प्रार्थना

११) नियमावली

गद्य (हिन्दी)

१२) सार बचन बार्तिक

१३) आख़री बचन स्वामीजी महाराज

१४) प्रेमपत्र, पहला भाग

१५) प्रेमपत्र, दूसरा भाग

१६) प्रेमपत्र, तीसरा भाग

१७) प्रेमपत्र, चौथा भाग

१८) प्रेमपत्र, पाँचवाँ भाग

१९) प्रेमपत्र, छठा भाग

२०) जुगत प्रकाश
२१) सार उपदेश
२२) प्रेम उपदेश
२३) राधास्वामी मत संदेश
२४) राधास्वामी मत उपदेश
२५) निज उपदेश
२६) प्रश्नोत्तर सन्त मत
२७) छाँटे हुये बचन महात्माओं के
२८) गुरु उपदेश
२९) बचन महाराज साहब
३०) बचन बाबूजी महाराज, पहला भाग
३१) बचन बाबूजी महाराज, दूसरा भाग
३२) बचन बाबूजी महाराज, तीसरा भाग
३३) बचन बाबूजी महाराज, चौथा भाग
३४) जीवन चरित्र, स्वामीजी महाराज
३५) जीवन चरित्र, हुज़ूर महाराज
३६) जीवन चरित्र, बाबूजी महाराज
३७) शब्द कोश संत मत बानी
३८) लोक-परलोक हितकारी
३९) मौलाना रूम के दष्टान्त और
औलियाओं की कथाएँ
४०) समाध पुस्तिका

Books In English

४१) राधास्वामी मत प्रकाश

Radhasoami Mat Prakash

४२) डिस्कोर्सेज़ ऑन राधास्वामी फ़ेथ

Discourse On Radhasoami Faith

४३) फेलप्स साहब के नोट्स

Phelp’s Notes

४४) ए सोलेस टू सतसंगीज़

A Solace to Satsangis